CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य भामहकृत

काव्यालङ्कार

डॉ. रमण कुमार शर्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साहित्यशास्त्र के आरम्भिक आचार्य भामह
व्यालङ्कार एक ऐसा ग्रन्थ है जिसे भारतीय
का मानसरोवर कहा जाना चाहिए क्योंकि
द्भूत होकर काव्यशास्त्र की अनेक धारायें
जिन्होंने एक महती परम्परा की सृष्टि की।
चार्य विशेष के द्वारा रचित साहित्यिक समीक्षा
लब्ध ग्रन्थ है। का.अ. का समय ६०० संवत्
है। काल का दीर्घ व्यवधान होने के कारण
र्थाववोध की दृष्टि से कुछ जटिल हो गयी है,
ग्रन्थ दुरूह प्रतीत होता है। हिन्दी में मूल
भ्भाते हुए एक अनुवाद की अपेक्षा बहुत अधिक
हिन्दी जगत् को भामह की कृति से परिचित
ॉ० रमण कुमार शर्मा की यह कृति उसी अपेक्षा
।

क प्रमुख तीन भाग है। आरम्भ के भूमिका भाग
भामह की साहित्यशास्त्रीय मान्यताओं का गहन
किया गया है। द्वितीय मूल भाग में कारिकाओं
क हिन्दी अनुवाद दिया गया है। तृतीय भाग
का है जिसमें टिप्पणियों के माध्यम से मूल को
समें निहित समस्या का समुचित रूप से ऊहा-
गया है तथा आचार्य उद्भट द्वारा कृत का.अ.
त्र टीका भामहविवरण के उपलब्ध खण्डित
उपलब्ध कर दिया गया है। ग्रन्थ के इसी
यालङ्कार में प्रयुक्त शब्दों का एक पदानुक्रमकोश
या गया है जो शोधकार्य की दृष्टि से अत्यन्त
।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सा. 2962

R.

दर्ता नं. 23089

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ाहित्यशास्त्र के आरि
व्यालङ्कार एक ऐसा
का मानसरोवर कहा
द्भूत होकर काव्यशास्
जिन्होंने एक महती पर
चार्य विशेष के द्वारा र्
लब्ध ग्रन्थ है। का.अ.
है। काल का दीर्घ व
र्थाविबोध की दृष्टि से
ग्रन्थ दुरूह प्रतीत हो
भाते हुए एक अनुवाद
हिन्दी जगत् को भाम
ं० रमण कुमार शर्मा क
।

प्रमुख तीन भाग है। व
भामह की साहित्यशास्त्री
कया गया है। द्वितीय
क हिन्दी अनुवाद दिया
का है जिसमें टिप्पणियों
समें निहित समस्या का
गया है तथा आचार्य
त्र टीका भामहविवरण
उपलब्ध कर दिया गया
यालङ्कार में प्रयुक्त शब्दो
ा गया है जो शोधकार्
।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सं. २०६२

आचार्य भामहकृत

काव्यालङ्कार

R.

डॉ० रमण कुमार शर्मा

दर्शा नं. २३०४१

विद्यानिधि प्रकाशन
दिल्ली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक :

विद्यानिधि प्रकाशन
डी० ब्लाक, गली नं० १०
(समीप श्री महागौरी मन्दिर)
खजूरी खास, दिल्ली-११००९४

Acc. 23084
23041

प्रथम संस्करण : १९९४

© लेखक

मूल्य : २२५-००

चौहान प्रिन्टर्स, बी-७२/१६ए, गली मन्दिर वाली, (समीप रबड़ फैक्ट्री)
उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सा. २१६२

स्वर्गीय
पितामह
पं० अयोध्यानाथ शर्मा
तथा
उनके अग्रज
पं० नन्दलाल शर्मा
व
पं० बालमुकुन्द शर्मा
की
पुण्य स्मृति
में
सादर
समर्पित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुभाशंसा

डा० रमणकुमार शर्मा की नूतन कृति 'काव्यालङ्कार' को संस्कृत जगत् के समक्ष प्रस्तावित करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र के आरम्भिक आचार्य भामह की कृति काव्यालङ्कार एक ऐसा ग्रन्थ है जिसे भारतीय साहित्यशास्त्र का मानसरोवर कहना चाहिए क्योंकि इससे ही उद्भूत होकर काव्यशास्त्र की अनेक धारायें प्रवाहित हुईं जिन्होंने एक महती परम्परा की सृष्टि की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र की एक परम्परा भामह से पहले भी विद्यमान थी जिसका समुल्लेख काव्यालङ्कार में स्थल-स्थल पर हुआ है। सम्भवतः दण्डी, वामन, राजशेखर, भोज, अप्पयदीक्षित एवं पण्डित-राज प्रभृति प्रायः सभी दाक्षिणात्य आचार्यों ने उस परम्परा को अपनी कृतियों के माध्यम से अक्षुण्ण बनाये रखा। भामह से संस्कृत साहित्यशास्त्र की एक नयी परम्परा का समारम्भ हुआ जिसे हम औदीच्य अथवा कश्मीर परम्परा के नाम से जानते हैं क्योंकि इस परम्परा के उद्भव व विकास में भामह, उद्भट रुद्रट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, अभिनवगुप्त, महिमभट्ट, मम्मट एवं रुय्यक प्रभृति जिन आलङ्कारिकों का योगदान बहुमूल्य है, वे सभी कश्मीरी हैं। भामह ही इस परम्परा के उद्भावक आचार्य हैं। उनके ग्रन्थ काव्यालङ्कार की महत्ता इसी से सिद्ध हो जाती है।

काव्यालङ्कार ६०० सम्वत् के आसपास की रचना है जिसके पूर्व का काल साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से अन्धतिमिराच्छन्न है। भरतमुनि के नाम से उपलभ्यमान नाट्यशास्त्र निश्चित रूप से ईसापूर्व की रचना है जिसे अभिनवगुप्त ने 'षट्त्रिंशत् संहिता' कहकर सङ्केत दिया है कि यह एक संग्रह ग्रन्थ है। इस प्रकार आचार्य विशेष के द्वारा रचित साहित्यिक समीक्षा का प्रथम ग्रन्थ काव्यालङ्कार ही ठहरता है।

आचार्य भामह की अपनी विशेष शैली है तथा उनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत-भाषा भी अपनी विलक्षणता रखती है। सरल एवं प्रायः सुप्रयुक्त शब्दों में साहित्यिक समीक्षा के सिद्धान्तों के मर्म की अभिव्यक्ति अर्थाविबोध की दृष्टि से कुछ जटिल हो गयी है, फलतः आधुनिक विचारक भामह के काव्यालङ्कार को यथावस्थित रूप में पचा नहीं पाते एवं कल्पना करते हैं कि इस ग्रन्थ की कुछ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारिकायें लुप्त हैं जिससे उपलब्ध कारिकाओं की अर्थान्विति में बाधा पहुँचती है। मेरी धारणा है कि काव्यालङ्कार में ऐसा कुछ नहीं है। उपलब्ध ग्रन्थ पूर्ण एवं समग्र है। ग्रन्थ को लगाने के लिए पूर्ववर्ती परम्परा का ऊहापोह अपेक्षित है। अतएव ग्रन्थ दुरूह प्रतीत होता है। हिन्दी में मूल ग्रन्थ को समझाते हुए एकअनुवाद की अपेक्षा बहुत अधिक रही है जो हिन्दी जगत् को भामह की कृति से परिचित करा दे। डा० रमण कुमार शर्मा की यह कृति उसी अपेक्षा की पूर्ति है।

ग्रन्थ के प्रमुख तीन भाग हैं। आरम्भ के भूमिका भाग में आचार्य भामह की साहित्यशास्त्रीय मान्यताओं का गहन विश्लेषण किया गया है। द्वितीय मूलभाग में कारिकाओं का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद दिया गया है। तृतीय भाग परिशिष्टों का है जिसमें टिप्पणियों के माध्यम से मूल को खोलकर उसमें निहित समस्या का समुचित रूप से ऊहापोह किया गया है तथा आचार्य उद्भट द्वारा कृत काव्यालङ्कार की एकमात्र टीका भामह विवरण के उपलब्ध खण्डित अंशों को उपलब्ध कर दिया गया है। ग्रन्थ के इसी भाग में काव्यालङ्कार में प्रयुक्त सभी शब्दों का एक पदानुक्रमकोश भी दे दिया गया है जो शोधकार्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

डा० रमणकुमार शर्मा मेरे प्रबुद्ध छात्रों में से हैं जिन्होंने भामह और वामन की साहित्यशास्त्रीय कृतियों की तुलनात्मक समीक्षा पर अपना पी०एच० डी० का शोधप्रबन्ध किया है जिससे इन्हें संस्कृत की साहित्यशास्त्रीय परम्परा की गहराई का बोध है। डा० शर्मा की इस कृति से संस्कृत और हिन्दी के सभी अध्यापकों, छात्रों एवं शोधकर्ताओं का उपकार अवश्य होगा। इस उत्कृष्ट रचना के लिए मैं डा० रमणकुमार शर्मा को साधुवाद देता हूँ तथा कामना करता हूं कि इनकी यह कृति उनके द्वारा रचित अनेक उत्तमोत्तम कृतियों की पूर्ववर्तिनी हो।

रामनवमी, संवत् २०५१

प्रो० ब्रजमोहन चतुर्वेदी,
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयसूची

शुभाशंसा	v
सङ्केताक्षर सूची	vii
भूमिका	१—३६
विषयवस्तु	३७—४४
मूलपाठ (सानुवाद)	४५—११२
परिशिष्ट—	
टिप्पणियाँ	११३—१४३
पादानुक्रमणी	१४४—१९२
काव्यालङ्कार में उद्धृत आचार्य	१९३—१९४
काव्यालङ्कार में आये हुए सुभाषित	१९५—१९७
भामहविवरण	१९८—२३९
भामहविवरण में उपलब्ध काव्यालङ्कार के पाठ	२४०—२४३
काव्यालङ्कारपदानुक्रमकोश	२४४—२६४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सङ्केताक्षर सूची

अ० कौ०	अलङ्कार कौस्तुभ
अ० शे०	अलङ्कारशेखर
अ० स०	अलङ्कारसर्वस्व
का० अ०	काव्यालङ्कार
का० अ० (रु०)	काव्यालङ्कार (रुद्रट)
का० अनु०	काव्यानुशासन
का० आ०	काव्यादर्श
का० धे०	कामधेनु
का० प्र०	काव्यप्रकाश
का० मी०	काव्यमीमांसा
का० सा० सं०	काव्यालङ्कारसारसंग्रह
का० सू० वृ०	काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति
चि० मी०	चित्रमीमांसा
ध्व० आ०	ध्वन्यालोक
ध्व०आ०लो०	ध्वन्यालोकलोचन
ना०शा०	नाट्यशास्त्र
भ०का०	भट्टिकाव्य
र०ग०	रसगङ्गाधर
र०व०	रघुवंश
रा०च०मा०	रामचरितमानस
ल०वृ	लघुवृत्ति
व०जी०	वक्रोक्तिजीवितम्
वि०ध०पु०	विष्णुधर्मोत्तरपुराण
सु०अ०	सुभाषितावली
सं० का०शा० इ०	संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९२	६	बाधिनी	बाधिनी'
९२	२२	विरोधित्वाद्विज्ञेया'	विपोधित्वा'द्विज्ञेया
९९	१९	पदमेक	पदमेकं
१३०	७	होन	होना
१३३	५	प्रमाण अथवा	प्रमाण हैं, अथवा
१३६	१२	निरात्रियते	निराक्रियते
१३७	१३	श्रेष्टता	श्रेष्ठता
१५९	२२	त्वपि	त्वयि
१७४	१७	भ्रातृष्य	भ्रातृव्य
१७८	१६	विभ्राणौ	विभ्राणौ
१८२	२५	विशेषण	विशेषेण
१८७	५	सदश	सदृश
१९४	२५	देखें	देखें
२११	२८	दीनवं	दीनत्वं
२१३	१६	शङ्ख	शङ्ख
२२०	२९	भरूपाय	भवरूपाय
२२४	२२	अहक्रम	अपक्रम
२३३	१०	हने	हो
	३२	युरुत	युक्त
२५६	८	प्रतिवस्पूपमा	प्रतिस्तूपमा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुद्धिपत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२५	अलङ्कार	अलङ्कार
११	२३	का. पू. वृ.	का. सू. वृ.
११	२८	उदृधृत	उदधृत
१८	३२	दीपकं पृथग्भाव	दीपकं न पृथग्भाव
१८	८	है । किसी	है—किसी
१९	५	काव्यङ्ग्यार्थं	व्यङ्ग्यार्थ का
२७	४	है ।[3]	है ।[1]
२८	४	चाहिए ।	चाहिए ।[2]
४३	२९	६/२	६/३
५१	४	दोषों का का	दोषों का
५५	१६	रूपक	रूपकं
५९	६	कामुक	कार्मुक
६१	४	मोच्यत	मोच्यते
६१	५	यथेव नभि०	यथेवानभि०
६४	२३	शत्रुअ	शत्रुओं
६५	२	विद्रूम	विद्रुम
६५	३	विद्रूम	विद्रुम
६५	३२	—	१. अगले पृ० पर देखें
६६	३१	द्विधा मत	द्विधा मतः
६९	५	यत्तु	यत्तु[1]
७७	१६	यथा	यथा[3]
७७	२३	मेयत्वं[1]	मेयत्वं
७७	२४	नाम	नाम[1]
८४	१७	दाहृत	दाहृते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमिका

काव्यशरीर—

भामह का आविर्भाव संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में उस समय हुआ जब काव्यचर्चा नाट्य से पृथक् अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना रही थी। साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का इस समय पर्याप्त प्रचार प्रसार था। एक प्रकार से इसे पाण्डित्यप्रदर्शन का युग कह सकते हैं। विद्वद्गोष्ठियों का समाज में प्रचलन था। इन्हीं चर्चाओं में काव्यसमीक्षा के सिद्धान्त भी उभरकर आते थे परन्तु इन में भी व्याकरण, न्याय और मीमांसा जैसे शास्त्र अपने प्रचार के शिखर पर थे। वैदुष्य की प्रतिष्ठा के लिए पदवाक्य-प्रमाणपारावारीण होना आवश्यक था। नवीन उदय होते हुए काव्यशास्त्र के महत्त्व को इन शास्त्रों के समकक्ष स्थापित कर पाना भामह की प्रबल इच्छा थी। इस दृष्टि से उनका का०अ० दोहरे उद्देश्य को लेकर चला है। कवि और भावकों को काव्य के सामान्य सिद्धान्तों का परिचय कराने के अतिरिक्त काव्यशास्त्र को विद्वत्समाज में प्रतिष्ठापित करने का गुरुतर भार भी भामह को वहन करना था। का०अ० के प्रारम्भ से ही वे अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सचेष्ट प्रतीत होते हैं।

मन, वाणी और शरीर से सर्वहितकारी भगवान् सर्वज्ञ को प्रणाम कर[1] मानव जीवन के परम लक्ष्य पुरुषार्थचतुष्टय को काव्य के प्रयोजन के रूप में स्थापित किया गया है। धर्मार्थकाममोक्ष की प्राप्ति शास्त्रान्तरों से भी हो सकती है परन्तु दुर्बोध होने के कारण यह मार्ग अल्पमति जनों के लिए सहज नहीं है जबकि मधु से आलीढ़ कटुक औषध के समान काव्य के रस से मिश्रित शास्त्र भी सबके लिए सुतराम् उपादेय हो जाता है—

प्रायेण दुर्बोधतया शास्त्राद्विभ्यत्यमेधसः। का०अ० ५/२
प्रथमालीढ़मधवः पिबन्ति कटु भेषजम्॥ का०अ० ५/३

---

१. प्रणम्य सार्वं सर्वज्ञं मनोवाक्कायकर्मभिः।
काव्यालङ्कार इत्येष यथाबुद्धि विधास्यते॥ का०अ० १/१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः प्रयोजन की दृष्टि से शास्त्र के समान ही होने पर भी सरल तथा सर्वजनसंवेद्य होने के कारण काव्य से धर्मादि की प्राप्ति श्रेयस्कर है। शास्त्र की अपेक्षा काव्य से ही चतुर्वर्ग की प्राप्ति का समर्थन करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने भी यही दोनों तर्क उपस्थित किये थे[1] परन्तु भामह के अनुसार न केवल इतना ही प्रत्युत कलाओं में वैचक्षण्य तथा प्रीति और कीर्ति काव्य के शास्त्र की तुलना में अतिरिक्त भी प्रयोजन हैं—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्॥ का०अ० १/२

ये प्रयोजन तो अलग, स्वयं शास्त्रज्ञान भी सत्कवित्व के विना सुशोभित नहीं होता, जैसे विनय के विना श्री और चन्द्रमा के विना रात्रि।[2] कवित्व शक्ति से हीन व्यक्ति का शास्त्रज्ञान उसी प्रकार अर्थहीन है जैसे निर्धन की दानशीलता, नपुंसक का अस्त्रकौशल तथा मूर्ख की वाचालता।[3] न केवल इतना ही वल्कि शास्त्र तो गुरू के उपदेश से जड़मति भी सीख लेते हैं परन्तु काव्यत्व तो कभी किसी निसर्ग-प्रतिभावान् को ही प्राप्त होता है।[4] अग्निपुराण में यही वात प्रकारान्तर से कही गयी है—

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

परन्तु एक वार यदि यह दैवी अनुग्रह हो जाये तो फिर इस भौतिक शरीर के दिवङ्गत हो जाने पर भी कवि का कान्त काव्यशरीर सर्वथा निरातङ्क रहता है[5] और जव तक उसकी कीर्ति पृथ्वी और आकाश को व्याप्त कर स्थिर होती है, तव तक वह उच्च देवपद पर प्रतिष्ठित होता है।[6] उनके निकट उत्तरवर्ती

---

१. चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि। काव्यादेव·····॥ सा०द० १/२
२. विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता॥ का०अ० १/४
३. अधनस्येव दातृत्वं क्लीवस्येवास्त्रकौशलम्।
अज्ञस्येव प्रगल्भत्वमकवेः शास्त्रवेदनम्॥ वही १/४
४. गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम्।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः॥ वही १/५
५. उपेयुषामपि दिवं सन्निबन्धविधायिनाम्।
आस्त एव निरातङ्कं कान्तं काव्यमयं वपुः॥ वही १/६
६. रुणद्धि रोदसी चास्य यावत्कीर्तिरनश्वरी।
तावत्किलायमध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम्॥ वही १/७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा प्रतिस्पर्धी दक्षिण भारतीय आचार्य दण्डी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि कवि की बात अलग, काव्य का स्पर्श पाकर तो उसमें वर्णित चरितनायक भी सदा सर्वदा के लिए अमर हो जाते हैं—

आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम् ।
तेषामसंनिधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ।। का०अ० १/५

अत एव यदि इस स्थायी कीर्ति की अभिलाषा है तो ज्ञेय विषयों का ज्ञान प्राप्त करके सर्वथा काव्यनिर्माण में ही यत्न करना चाहिए।[1]

इस भूमिका के साथ भामह काव्यालङ्कार का प्रारम्भ करते हैं। काव्य-निर्माण कोई 'ललनाखेलनम्' नहीं है। यह तो एक दैवी अनुग्रह है, किसी प्रतिभावान् को ही कभी स्फुरित होता है, जब वह विविध शास्त्रों के ज्ञान से व्युत्पन्न होकर, दिन रात काव्यज्ञों की उपासना कर अपनी उस सहज शक्ति का संस्कार कर लेता है।[2] कवि के अध्येतव्य विषयों में शब्दशास्त्र, छन्दो-विचिति, अभिधानकोश, विविध अर्थ, उपजीव्य काव्यों की कथायें, लोकव्यवहार, तर्कशास्त्र, और समस्त कलाओं[3] की गणना करके भी जैसे भामह सन्तुष्ट नहीं थे। सत्य तो यह है कि ज्ञान का प्रत्येक कण इन छात्रकवियों के अध्ययन का विषय बन जाता है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान्कवेः ।। का०अ० ५/४

इस प्रकार सर्वथा समर्थ होकर ही कवि को काव्यकर्म में प्रवेश करना चाहिए क्योंकि एक भी दूषित पद के प्रयोग से कवि को दुष्ट पुत्र के समान निन्दा प्राप्त होती है।[4] काव्य न करने से कोई अधर्म नहीं होता, अकवि के लिए किसी व्याधि अथवा दण्ड का विधान भी नहीं है परन्तु दुष्ट काव्य से होने वाला अपयश तो साक्षात् मृत्यु ही है।[5]

---

१. अतोऽभिवाञ्छता कीर्तिं स्थेयसीमाभुवः स्थितेः ।
यत्नो विदितवेद्येन विधेयः काव्यलक्षणः ।। वही १/८

२. शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम् ।
विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः ।। का०अ० १/१०

३. शब्दश्छन्दोऽभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः ।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्याः काव्यहेतवः ।। वही १/९

४. सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत् ।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते ।। वही १/११

५. नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ।। वही १/१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्काव्य के पाठ से कविगोष्ठियों में प्राप्त होने वाली कीर्ति के लोभ से अनेकधा तो छात्रकवि भी प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं का अनुवाद करके गोष्ठी में पहुँच जाया करते थे। इस प्रकार के कवि 'अन्यसारस्वत' नाम से कहे जाते हैं[१] जिनके पास रचना की मौलिकता के नाम पर कुछ भी नहीं है। भामह ने इस प्रवृत्ति की निन्दा की है और इस प्रकार सर्वसामान्य से काव्यत्व का अधिकार छीनकर वे उसे विशिष्ट आभिजात्य तक सीमित रखना चाहते हैं जिससे कविब्रुवों की बाढ़ को रोका जा सके तथा सत्काव्य की प्रतिष्ठा हो सके।

काव्यालोचन के सम्बन्ध में अलङ्कारवादियों के दो प्रमुख वाद उस समय प्रचलित थे। कुछ आचार्य रूपकादि रूप अर्थालंकार वर्ग को काव्य में सौन्दर्य का आधायक परम तत्त्व मान रहे थे, जैसे आभूषण स्वभाव से सुन्दर भी स्त्री के मुख को विभावित करते हैं।[२] यह कश्मीरदेशीय आचार्यों का मत था जबकि दूसरे आचार्य एक भिन्न समीक्षा पद्धति को अपनाये हुए थे जिसके अनुसार काव्य में पदविन्यास को अधिक महत्त्व दिया जाता था।[३] दण्डी ने इसके लिए 'पदावली' शब्द का प्रयोग किया[४] तथा वामन ने 'पदानुपूर्वी' का।[५] दण्डी से पूर्व इसके मानने वाले मङ्गल नाम के आचार्य थे। इन दक्षिण भारतीय आचार्यों का मत 'सौशब्द्य' नाम से प्रसिद्ध था।[६] राजशेखर ने भी इनके लिए इसी शब्द का प्रयोग किया है।[७] काव्यालङ्कार शब्द और अर्थ इन दोनों की ही चारुत्वमूलक प्रविधियों का विश्लेषण करता है। ये दोनों ही वाद भामह को समान रूप से इष्ट हैं क्योंकि शाब्दिक चमत्कार नितराम् अर्थशून्य नहीं

---

१. अन्यसारस्वता नाम सन्त्यन्योक्तानुवादिनः। वही ६/६

२. रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामनम्॥ का०अ० १/१३

३. रूपकादिमलङ्कारं वाह्यमाचक्षते परे।
सुपां तिङाञ्च व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम्॥ वही १/१४

४. .....इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। का०आ० १/१०

५. किन्त्वस्ति काचिदपरैव पदानुपूर्वी, यस्यां न किञ्चिदपि किञ्चिदिवावभाति।
आनन्दयत्यथ च कर्णपथं प्रयाता, चेतः सताममृतवृष्टिरिव प्रविष्टा॥
—का०सू०वृ० १/२/२१ पर वृत्ति

६. तदेतदाहुः सौशब्द्यम् .....। का०अ० १/१५

७. सुपां तिङाञ्च श्रवः, सैषा व्युत्पत्तिः। सौशब्द्यमेतत्। का०मी० अध्याय ५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता और न ही आर्थिक चमत्कार अपने अभिधायक शब्दों के विना निष्पन्न हो सकता है। 'सहितौ' पद का यही स्वारस्य है जिसकी कल्पना कालिदास ने पार्वती-परमेश्वर[१] और तुलसीदास ने जलवीचि के रूप में की थी।[२]

सहभाव से अभिप्राय है शब्द और अर्थ का तुल्यकोटिक महत्त्व, जहाँ ये दोनों ही अन्यूनानतिरिक्त भाव से रहते हुए मानों परस्पर स्पर्धा करते हुए एक दूसरे के चारुत्व का उत्कर्ष करते हैं।[३] साहित्य का यह रूप कुन्तक के वक्रोक्ति-जीवित में उभर कर आया।[४] भट्टनायक ने इसकी व्याख्या दूसरे ही प्रकार से की है। उनके अनुसार यहाँ शब्द और अर्थ दोनों ही गुणीभूत होकर रहते हैं। शास्त्र के समान यहाँ न तो केवल शब्द प्रधान होता है और न आख्यायिकादि के समान केवल अर्थ ही प्रधान होता है परन्तु उनसे सर्वथा व्यतिरिक्त कवि-व्यापार ही यहाँ मुख्य है।[५] आनन्दवर्धन ने भी वहीं ध्वनि काव्य की स्थिति मानी है जहाँ शब्दार्थ दोनों स्वार्थ को उपसर्जनीभूत बनाकर उसी प्रतीयमानार्थ की व्यञ्जना में स्वयं को समर्पित कर देते हैं।[६] यही मम्मट का कान्तासम्मितत्व है। रुद्रट का उभयपदार्थप्रधान इतरेतर द्वन्द्व इस अर्थविस्तार को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं है।

लयात्मकता और लयहीनता के आधार पर काव्य का गद्य और पद्य के भेद से द्विधा विभाजन भामह से भी पूर्व चला आ रहा था।[७] इस दृष्टि से गद्य का पूर्व निर्देश विना तर्क के ही कर दिया जाता था। वामन में सर्वप्रथम इस पर विचार उपलब्ध होता है। गद्य के समर्थन में तर्क उपस्थित करते हुए

---

१. वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ र०व० १/१

२. गिरा अरथ जलवीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न। रा०च०मा०

३. अन्योन्यशोभाजननाद् वभूव साधारणो भूषणभूष्य भावः।

४. साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः॥ व०जी० १/७

५. शब्दप्राधान्यमाश्रित्य तत्र शास्त्रं पृथग्विदुः।
अर्थवत्त्वेन युक्तं तु वदन्त्याख्यानमेतयोः॥
द्वयोर्गुणत्वे व्यापारप्राधान्ये काव्यगीर्भवेत्।

६. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥ ध्व०आ० १/१३

७. ···गद्यं पद्यञ्च तद्द्विधा। का०अ० १/१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे कहते हैं कि गद्य रचना पद्य की अपेक्षा दुर्ज्ञेय और दुर्बन्ध होती है।[१] एक प्राचीन आभाणक उन्होंने भी सुन रखा था—"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"।

अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश ये तीन भाषायें प्रधानतया उस युग में प्रचलित थीं।[२] दण्डी ने इन तीनों के मिश्रित भेद के अतिरिक्त[३] भूतभाषा में रचित 'वृहत्कथा', का भी उल्लेख किया हैं।[४]

भाषाओं की विभिन्नता होने पर भी कथावस्तु की दृष्टि से काव्य को चार प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है। वह कथा कवि के द्वारा या तो स्वयं कल्पित हो सकती है अथवा उपजीव्य काव्यों से भी उसका अधिग्रहण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कला अथवा शास्त्र को आश्रय बनाकर भी काव्य-रचनाएँ उस समय की जाती थीं।[५] भट्टिकाव्य इसी प्रकार की एक रचना है परन्तु विभाजन का यह आधार भामह के अतिरिक्त और कहीं उपलब्ध नहीं होता। यहाँ उद्भट के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज तथा आनन्दवर्धन के सङ्केत महत्त्वपूर्ण हैं। उद्भट के लघुवृत्ति टीकाकार ने भामह की इस कारिका पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि यहाँ 'कलाश्रय' शब्द से भरतादि तथा 'शास्त्राश्रय' से व्याकरणादि का ग्रहण होता है[६] परन्तु नीरस होने के कारण उनका काव्यत्व तो सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं है। हाँ, आनन्दवर्धन ने महाभारत के विषय में जो कहा है कि वह शास्त्र काव्य की छाया से युक्त है, अवश्य महत्त्वपूर्ण है।[७] सम्भवतः भेद-विभाग का यह आधार भामह की अपनी कल्पना है, जिसकी मान्यता क्रमशः लुप्त होती रही।

संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश में रचित इस गद्यपद्यात्मक काव्य को सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, कथा, आख्यायिका तथा अनिबद्ध इन पाँच शीर्षकों में

---

१. गद्यस्य पूर्वनिर्देशो दुर्लङ्घ्यविशेषत्वेन दुर्बन्धत्वात्।
का०सू०वृ० १/३/२२ पर वृत्ति

२. संस्कृतं प्राकृतञ्चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा। का०अ० १/१६

३. तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रञ्चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्॥ का०आ० १/३२

४. भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां वृहत्कथाम्। वही १/३८

५. वृत्तं देवादिचरितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च।
कलाशास्त्राश्रयञ्चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः॥ का०अ० १/१७

६. अत्र हि कलाश्रयशब्देन भरताद्यभिहितम्। शास्त्राश्रयशब्देन च व्याकरणादि। का०सा०सं० वर्ग ६ पर ल०वृ०

७. महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि···। ध्व० आ० ४/५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी विभक्त किया जा सकता है।[१] इनमें से कथा और अख्यायिका गद्य के भेद हैं तथा सर्गबन्ध और अनिबद्ध पद्य के। अभिनेय को डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने मिश्र रूप माना है।[२] भामह काव्य के निरूपक ग्रन्थ में उन्हें विवेचनीय नहीं मानते क्योंकि नाट्यसिद्धान्तों का निरूपण अब पृथक् ग्रन्थों में होता था। नाटक दशरूपक का ही उपलक्षक है तथा अन्य द्विपदी, शम्या आदि उपरूपकों के प्रकार हैं।

भामह का श्लोकमात्र (अथवा यदि प्राकृत काव्य हो तो गाथामात्र) तक सीमित अनिबद्ध काव्य[३] वही है जिसका उल्लेख दण्डी ने मुक्तक, सङ्घात, कुलक या कोशादि भेदों के रूप में किया है। क्योंकि ये सर्गबन्ध के अंश रूप ही हैं, अतः काव्यादर्श में इनका विस्तृत विवेचन न करके सीधे महाकाव्य का ही व्याख्यान है।[४] काव्यालङ्कार में भी इनका विशिष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

निबद्ध काव्यों में वामन के अनुसार दशरूपक श्रेष्ठ है क्योंकि वह चित्रपट के समान वर्ण्य विषय को आँखों के सामने ला देता है।[५] दूसरी ओर भामह ने केवल इसके तीन चार भेदों का उल्लेख भर करके ही इस विवेचन को समाप्त कर दिया कि ग्रन्थान्तरों में इस पर विस्तार से विचार किया गया है।[६] भामह का का०अ० काव्यशास्त्र के विकास की दूसरी अवस्था है जब काव्यचर्चा नाट्य से सर्वथा पृथक् हो चुकी थी। विकास की तीसरी अवस्था में नाट्यचर्चा ही काव्यशास्त्र की आनुषङ्गिक बन गयी। आचार्य विश्वनाथ के सा०द० का सम्पूर्ण षष्ठ परिच्छेद नाट्यचर्चा में समर्पित है।

---

१. सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे।
अनिबद्धञ्च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते॥ का०अ० १/१८

२. डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा, का०अ०, भूमिका, पृ० २२

३. अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोकमात्रादि तत्पुनः। का०अ० १/३०

४. मुक्तकं कुलकं कोशः सङ्घात इति तादृशः।
सर्गबन्धाङ्गरूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः॥ का०अ० १/१३

५. तद्धि चित्रं चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात्। का०सू०वृ० १/३/३१

६. नाटकं द्विपदीशम्यारासकस्कन्धकादि यत्।
उक्तं तदभिनेयार्थमुक्तोऽन्यैस्तस्य विस्तरः॥ का०अ० १/२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाकाव्य[1] के दो प्रधान तत्त्व हैं—वस्तु और नेता। इन्हीं से सम्बद्ध दो विशेषण—"महताञ्च महच्च" महाकाव्य में महत्त्व का आधान करते हैं। सर्ग-बद्धता तो महाकाव्य का पर्याय ही बन गयी परन्तु सर्गों की संख्या के विषय में उनके महत् विशेषण की व्याख्या बाद में विश्वनाथ ने "नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह" कहकर की।[2] मन्त्रणा, दूतप्रेषण, अभियान, युद्ध तथा पुरुषार्थचतुष्टय के समृद्धिपूर्ण वर्णन के लिए 'युक्तं लोकस्वभावेन' की निर्धारित सीमा जहाँ एक ओर काव्य को लौकिक और सामाजिक बनाती है वहाँ दूसरी ओर ये वर्णन इस बात के भी प्रतीक हैं कि महाकाव्य राजाओं, राजपरिवारों और राजनीति से पृथक् नहीं हो पाया था। अपने आश्रयदाता और उसके वंश की प्रशंसा ही महाकाव्य की प्रमुख विषयवस्तु थी। उनका 'भूयसार्थोपदेशकृत्' विशेषण इस तथ्य को और अधिक पुष्ट करता है। इस दृष्टि से विषयवस्तु सम्बन्धी यह विवेचन बड़ा एकदेशीय सा प्रतीत होता है।

नायक यदि महत् और सत् है तो उसके अभ्युदय का वर्णन होना ही चाहिए। वस्तुतः यही दो विशेषण नायक के लिए संक्षिप्ततम और उपयुक्ततम कहे जा सकते हैं। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण काव्यशास्त्रीय परम्परा का नायक सम्बन्धी विवेचन इन्हीं दो शब्दों की व्याख्यामात्र है परन्तु आगे चलकर जब वे केवल उसके राजनैतिक अभ्युदय को ही अपने विवेचन का लक्ष्य बना लेते हैं तो उसमें से भी राजदरबार की संकीर्णता की गन्ध आने लगती है।

इन दो प्रधान तत्त्वों के अतिरिक्त काव्यशिल्प सम्बन्धी उनकी स्थापनायें पर्याप्त महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। भामह अलङ्कारवादी आचार्य हैं परन्तु उनके 'सालङ्कारम्' विशेषण का वास्तविक मर्म उनकी वक्रोक्तिसम्बन्धी उद्-

---

१. भामहकृत महाकाव्यलक्षण इस प्रकार है—
सर्गबन्धो महाकाव्यं महताञ्च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यञ्च सालङ्कारं सदाश्रयम्॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया॥ का०अ० १/१९-२२

२. सा०द० ६/३२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घोषणा 'कोलङ्कारयोऽनया विना' की पृष्ठभूमि में ही हृदयङ्गम किया जा सकता है। दूसरी ओर 'रसैश्च सकलैः पृथक्' की मान्यता पुनः उस नाट्यचर्चा का स्मरण कराती है जो धीरे-२ काव्यशास्त्र में समाहित होती जा रही थी। ऐसे में एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ना स्वाभाविक ही था। रसवत्ता की यह स्वीकृति निश्चय ही दृश्यकाव्य के प्रभाव से श्रव्यकाव्य में आयी होगी। पञ्च नाट्यसन्धियों का महाकाव्य में आना इस तथ्य को और अधिक पुष्ट करता है। बाद में विश्वनाथ ने भी महाकाव्य के नाट्य-सन्धियों से युक्त होने की बात कही थी।[1] पुनरपि श्रव्यकाव्य में भी रसवाद की स्वीकृति भामह में सर्व-प्रथम उपलब्ध होती है। यहाँ इसका 'अनतिव्याख्येय' विशेषण भी महत्त्वपूर्ण है। नारिकेलपाकसदृश व्याख्यासापेक्ष काव्य से रसानुभूति सामान्य सहृदय के लिए सहज नहीं है।

अलङ्कार और रस के अतिरिक्त अग्राम्य शब्द और अर्थसौष्ठव यद्यपि रसानुभूति के साधनमात्र ही हैं, अत एव इनका पृथक् निर्देश आवश्यक नहीं था तथापि यह कथन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि ये दोनों तत्त्व रसप्रतीति के महनीय साधन हैं, अतः कवि की इनके प्रति सतर्कता विशेष रूप से इष्ट है।

पद्य में जो महाकाव्य था, गद्य में उसे ही आख्यायिका कहा गया। अक्लिष्ट और श्रुतिसुखद गद्य में कन्याहरण, युद्ध, विप्रलम्भ आदि से समन्वित उदात्त विषय का निबन्धन आख्यायिका की सृष्टि करता है। आख्यायिका इसे कहते ही इसलिए हैं कि इसमें कथा का आख्यान स्वयं नायक द्वारा किया जाता है, अतः इसकी भाषा भी केवल संस्कृत होना ही सिद्ध है। कथानक का विभाजन उच्छ्वासों में होता है तथा वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों के द्वारा भावी घटनाओं की सूचना दी जाती है। इसके विपरीत कथा में कहानी सीधे नायक द्वारा उक्त न होकर अन्य पात्रों द्वारा वर्णित होती है, अतः भाषा सम्बन्धी कोई बन्धन भी अनिवार्य नहीं है। इसका विभाजन उच्छ्वासों में नहीं होता तथा न ही वक्त्रापरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है।

दण्डी ने भामह की इस एक-एक स्थापना का डटकर विरोध किया क्योंकि भेदविभाग के ये सभी आधार बड़े अकिञ्चित्कर हैं। उत्तरवर्ती काल में ये अलग-२ विधायें तो बनी रहीं, वामन ने भी इन्हें माना परन्तु विश्वनाथ आदि ने इनका स्वरूपनिरूपण करते हुए दण्डी के तर्कों का पर्याप्त आदर किया। इस प्रकार ये स्थापनायें नाम्ना स्वीकृत होकर भी स्वरूपतः भिन्न हो गयीं।

---

१. .....सर्वे नाटकसन्धयः। सा०द० ६/३१७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काव्य के ये सभी भेद वक्रोक्ति अथवा स्वभावोक्ति से यदि युक्त हों तो काव्यत्व के रूप में सर्वथा ग्राह्य हैं[१] फिर चाहे उस रचना में वैदर्भ मार्ग के गुण हों अथवा गौड प्रदेश की विशेषतायें उसमें हों। सत्य तो यह है कि प्रादेशिक आधार पर इस तरह का विभाजन ही गतानुगतिकता है।[२] सत्काव्य के मर्म को न समझने वाले काव्य के वास्तविक मर्म से दृष्टि हटाकर, उसके बाह्य रूप में ही उलझे रहकर यदि इस तरह का विभाजन करें तो करें, अन्यथा तो जो भी कोई रचना अलङ्कारों से युक्त हो, ग्राम्य दोष से रहित हो, अर्थसौष्ठव से युक्त हो, न्यायसङ्गत और अक्लिष्ट हो, उत्तम काव्य का निदर्शन है।[३] और जो अश्मक प्रदेश के कवियों के काव्य को (अथवा अश्मकवंश नामक काव्य को) वैदर्भ कह देते हैं, वह केवल यदृच्छावशात्।[४] अथवा उसी में क्या बड़ी विशेषता है। अर्थ यदि पुष्ट नहीं है, वक्रोक्ति का आदर नहीं है तो प्रसाद गुण से युक्त भी कोमल काव्यबन्ध गीत की तरह केवल सुनने में ही मधुर लगते हैं।[५] केवल उसकी स्तुतिमात्र गा देने से काव्य में कोई चारुता उत्पन्न नहीं हो जाती। वाणी का अलङ्कार तो शब्द और अर्थ की वक्रता से ही निष्पन्न होता है।[६] उसके लिए आवश्यकता किसी एक काव्यमार्ग की स्तुति अथवा निन्दा करने की नहीं है प्रत्युत उसे दोषों से यथासम्भव बचाने की है।

निश्चय ही, भामह के द्वारा किया गया यह विवेचन अधिक तात्त्विक है। इसका प्रभाव कुन्तक पर पड़ा। अत एव उन्होंने इन मार्गों को कविगत स्वभाव की विशेषताओं के साथ जोड़ा भी परन्तु काल के प्रवाह में यह मत ग्राह्य नहीं हो सका। दण्डी की वैदर्भी और गौडी में वामन ने पाञ्चाली को

---

१. युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते। का०अ० १/३०

२. गौडीयमिदमेतत्तु वैदर्भमिति किं पृथक्।
गतानुगतिकन्यायान्नानाख्येयममेधसाम्॥ वही १/३२

३. अलङ्कारवदग्राम्यमर्थ्यं न्याय्यमनाकुलम्।
गौडीयमपि साधीयो वैदर्भमिति नान्यथा॥ वही १/३५

४. ननु चाश्मकवंशादि वैदर्भमिति कथ्यते।
कामं तथास्तु प्रायेण संज्ञेच्छातो विधीयते॥ वही १/३३

५. अपुष्टार्थमवक्रोक्तिः प्रसन्नमृजु कोमलम्।
भिन्नं गेयमिवेदन्तु केवलं श्रुतिपेशलम्॥ वही १/३४

६. न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्।
वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृतिः॥ वही १/३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी जोड़ दिया।[1] वामन ने तो प्रादेशिक आधार पर नामकरण का तर्क भी प्रस्तुत कर दिया था कि विदर्भ आदि देशों के कविओं में उन प्रवृत्तियों के प्रायः उपलब्ध होने कारण ही उनके काव्य का वैदर्भ आदि के रूप में कथन किया जाता है।[2] वैदर्भी की प्रशंसा भी उसी प्रकार हर युग में होती रही। भामह जैसे विचारकों की ओर से निरन्तर विरोध के होते हुए भी समस्त दश गुणों को दण्डी और वामनादि ने वैदर्भ मार्ग के प्राणाधायक मान लिया।[3]

अलङ्कृति—

दक्षिण भारत के आचार्य गुण और अलङ्कारों का विवेचन अलग-२ किया करते थे परन्तु उनकी विभाजक रेखा भामह और दण्डी तक भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पायी थी। दण्डी और वामन के मध्य अवश्य आचार्यों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया था जो यह भेद काव्य में क्रमशः इनकी समवाय और संयोग स्थिति के आधार पर किया करता था। उद्भट ने भामहविवरण में इन आचार्यों के मत का उल्लेख किया है।[4] कश्मीरी आचार्य इस भेदवाद को मानने के पक्ष में नहीं थे। भामह ने प्रकीर्ण रूप से अलङ्कारवत्त्व, अग्राम्यत्व, अर्थवत्त्व, न्याय्यत्व, अनाकुलत्व आदि गुणों का उल्लेख किया है[5] परन्तु ये काव्य के नहीं सत्काव्य के गुण हैं। दूसरे शब्दों में ये काव्यशोभा के कर्त्ता नहीं, उसके उत्कर्षक हैं, अलङ्कारों की ही तरह। एक ओर तो भामह सत्काव्य के गुणों की गणना करते हुए सालङ्कारता का भी उल्लेख करते हैं तो दूसरी ओर अलङ्कारों के प्रसङ्ग में वर्णित भाविक को प्रबन्धविषयक गुण कहते हैं।[6] गुण और अलङ्कारों में एकता की बात उद्भट ने भी मानी थी जबकि इनके भेद को वे गड्डलिकाप्रवाह कहते हैं।[7] परन्तु यह भेद उस समय तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चला था क्योंकि यदि इनमें सर्वथा भेद नहीं है तो फिर आखिर इस पृथक्

---

१. सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति। का०पू०वृ० १/२/२९
२. विदर्भादिषु दृष्टत्वात्तत्समाख्या। वही १/२/१०
३. इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणाः स्मृताः। का०आ० १/४२
समग्रगुणा वैदर्भी। का०सू०वृ० १/२/११
४. एवञ्च समवायवृत्त्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादय, इत्यस्तु गुणालङ्काराणां भेदः। का०प्र० ८ म उल्लास में उद्धृत।
५. अलङ्कारवदग्राम्यमर्थ्यं न्याय्यमनाकुलम्। का०अ० १/३५
६. भाविकत्वञ्च निजगुः प्रबन्धविषयं गुणम्। वही, ३/५३
७. ओजः प्रभृतीनामनुप्रासोपमादीनाञ्चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गडडलिकाप्रवाहेणैवैषां स्थितिरिति। का०प्र० ८ म उल्लास में उद्धृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संज्ञाकरण का औचित्य क्या है ? अन्ततः कश्मीरी ध्वनिवादी आचार्यों को भी यह मानना पड़ा। आनन्दवर्धन ने यह स्थापित किया कि गुण अङ्गीरूप रस के आश्रित होते हैं जबकि अलङ्कार कटककुण्डलादि की तरह अङ्गाश्रित।[1]

जो हो, भामह इन्हें अलग-अलग नहीं मानते। द्वितीय परिच्छेद के प्रारम्भ में अलङ्कारों से पूर्व केवल तीन कारिकाओं में माधुर्य, प्रसाद और ओज का विवेचन संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित है।[2] यहाँ उनकी गणना अलङ्कारों में नहीं है पर उनके लिए गुण शब्द का प्रयोग भी उन्होंने नहीं किया। ये अलङ्कारों के ही समान काव्य के उत्कर्षक हेतु विशिष्ट अलङ्कार हैं पर इनका सम्बन्ध रचना में पदों की समस्त अथवा असमस्त स्थिति से है। माधुर्य और प्रसाद में दीर्घ समास युक्त पद रचना नहीं होती परन्तु माधुर्य में पदबन्ध की सुश्रव्यता अतिरिक्त होती है, जबकि ओज गुण में पदवृत्ति दीर्घसमासयुक्त होती है। बस, का०अ० में इतना ही उल्लेख है परन्तु बाद में जाकर ध्वनिवादियों ने जब भरत और वामन के दश गुणों का विरोध किया तो भामह के यही तीन गुण उनके उपजीव्य बने।

अलङ्कार काव्य का सर्वस्व है परन्तु भामह की अलङ्कारमीमांसा को उनकी वक्रोक्ति विषयक धारणा की पृष्ठभूमि में ही हृदयङ्गम किया जा सकता है। केवल सौशब्द्य अथवा अर्थव्युत्पत्ति मात्र को ही काव्य में प्रधान मानने वाले आचार्य उस समय थे[3] परन्तु उनकी अपनी सम्मति में काव्यचारुता के आधायक तत्त्व के रूप में शब्द और अर्थ दोनों ही में वक्रता का आधान अभीष्ट है।[4] यह वक्रता ही अलङ्कृति का हेतु एवञ्च शास्त्र और वार्त्ता से काव्य का भेदक आधार है। हेतु, सूक्ष्म और लेश भी भामह के अनुसार इसलिए अलङ्कार नहीं

---

१. तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत् ॥ ध्व०आ०, २/२९

२. माधुर्यमभिवाञ्छन्तः प्रसादञ्च सुमेधसः।
समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुञ्जते ॥
केचिदोजोऽभिधित्सन्तः समस्यन्ति बहून्यपि।
यथा मन्दारकुसुमरेणुपिञ्जरितालका ॥
श्रव्यं नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते।
आविद्वदङ्गनाबालप्रतीतार्थं प्रसादवत् ॥ का०अ० २/१-३

३. तदेतदाहुः सौशब्द्यं नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी। वही १/१५

४. वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृतिः। वही १/३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि इनमें वक्रोक्ति का अभिधान नहीं होता।[1] दण्डी ने इष्टार्थव्यवच्छिन्न पदविन्यास को काव्य मानकर[2] उसके शोभाकारक धर्मों को अलङ्कार कहा।[3] यह शोभा ही वक्रता है, कवि का वैचित्र्ययुक्त चमत्कारकारी कथन जिसे कुन्तक ने वैदग्ध्यभङ्गीभणिति कहा और इस प्रकार भामह के ये सङ्केत वक्रोक्ति सिद्धान्त की स्थापना के बीज बने। वामन ने अलङ्कार शब्द के दो अर्थों का निर्देश किया है। अपने व्यापक स्वरूप में तो यह अलङ्कृति रूप अर्थ का वाचक है जो सौन्दर्य का पर्याय है जबकि सङ्कीर्ण अर्थ में यह करणार्थक घञ् प्रत्यय से निष्पन्न होकर उपमादि अलङ्कारों का भी वाचक है—अलङ्कृतिरलङ्कारः। करणव्युत्पत्त्या पुनरयमलङ्कारशब्द उपमादिषु वर्त्तते। अलङ्क्रियतेऽनेनेत्यलङ्कारः (का०सू०वृ० १/१/२ पर वृत्ति)।

भामह की अलङ्कारधारणा काव्यशास्त्र में उस प्रस्थान का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ अलङ्कार को ही काव्य का सर्वस्व माना जाता है। बाद में उसकी स्थिति घटकर गुणों के द्वारा सृष्ट सौन्दर्य के उत्कर्षाधान तक सीमित रह गयी परन्तु ऐसा कहते हुए उपमादि के अर्थ में सङ्कुचित अलङ्कार शब्द का ही ग्रहण किया जाता था जो करणार्थक घञ् प्रत्यय के प्रयोग से निष्पन्न हुआ है। यही कारण है कि कुल ३८ अलङ्कारों का विवेचन करने वाले भामह अलङ्कारसम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं जबकि ७० अथवा ८० अलङ्कारों का विवेचन करने वाले मम्मट और विश्वनाथ ध्वनि वा रससम्प्रदाय के आचार्य। बाद में काव्यपुरुष की कल्पना के साथ ही आभूषणों के समान इनकी स्थिति भी काव्य में वैकल्पिक हो गयी और उस पर भी इनका यथोचित रसपरक सन्निवेश अनिवार्य माना गया। ऐसे में पुनः भामहकृत वस्तु और स्थान की सीमाओं से अनुगत 'सन्निवेशविशेष' की मर्यादा का स्मरण आता है। अस्तु।

अलङ्कार का सम्बन्ध सौन्दर्य से है जिसकी ईदृक्ता और इयत्ता की व्याख्या 'इदमित्थम्' के रूप में नहीं की जा सकती, इसलिए इसके विविध विकल्पों की सङ्कल्पना निरन्तर की जाती रही। अतः सम्पूर्ण रूप से इनका विश्लेषण कर पाना सुकर नहीं। दण्डी ने भी इस आनन्त्य की ओर सङ्केत किया था।[4] निरुक्तकार गार्ग्य तक जो केवल मात्र उपमा के ही सङ्केत मिलते

---

१. हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः॥ वही २/८६

२. .....इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। का०आ० १/१०

३. काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते। वही २/१

४. ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान्कात्स्न्र्येन वक्ष्यति। वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं, ना०शा० तक आते-२ उनकी संख्या चार तक पहुँच गयी थी। भरत से लेकर भामह तक की परम्परा में कितने और आचार्यों का योगदान रहा है, आज यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु का०अ० में विभिन्न वर्गों में वर्णित अलङ्कारों को इसी विकासात्मक पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए परन्तु उनके वर्गीकरण की ओर कोई निश्चित प्रयास भामह से पूर्व सम्भवतः नहीं किया गया। स्वयं भामह की प्रवृत्ति वर्गीकरण की अपेक्षा विश्लेषणात्मक अधिक थी। तथापि उनके द्वारा सङ्केतित शब्द और अर्थालङ्कार का वर्गीकरण[1] सूक्ष्म न होने पर भी अपनी सरलता और स्पष्टता के कारण अधिक लोकप्रिय हुआ। अनन्तर उभयालङ्कार की भी कल्पना कर ली गयी।

प्रथम परिच्छेद में काव्य के विविध भेदों का वर्गीकरण करने के उपरान्त काव्यमात्र को वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति इन दो भागों में विभक्त किया गया है। भामह वक्रोक्ति को अलङ्कार का प्राणाधायक मानते हुए भी स्वभावोक्ति का महत्त्व भी अवश्य स्वीकार करते हैं। अत एव उन्होंने वक्रोक्ति अथवा स्वभावोक्ति से युक्त प्रत्येक काव्यविधा का स्वागत किया।[2] दण्डी ने भामह की इस मान्यता को स्वीकार कर इसमें श्लेष द्वारा वक्रोक्ति के चमत्कृत होने की बात और जोड़ दी।[3] रुद्रट ने स्वभावोक्ति को 'वास्तव' नाम दिया तथा इस समस्त विवेचन को उपसंहृत करने का प्रयास किया। उन्होंने शब्द और अर्थ के रूप में अलङ्कार का विभाजन कर पुनः अर्थालङ्कारों को वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष इन चार उपभेदों में बाँटा[4] परन्तु इस सब प्रपञ्चविस्तार के मध्य भामह की मूल मान्यता उपजीव्य बनी रही।

भरत के समय तक शाब्दिक अलङ्कृति के समस्त विस्तार को यमक के क्षेत्र में अन्तर्भूत माना जाता था।[5] भामह तक आते इस विश्लेषण के दो स्पष्ट आधारों की कल्पना हो चुकी थी। अनुप्रास के प्रवेश से यमक का सीमा-विस्तार सीमित हो गया था परन्तु एक ओर दण्डी द्वारा अलङ्कारों के प्रसङ्ग में अनुप्रास का वर्णन न करना तथा दूसरी ओर उद्भट का यमक के विषय में आश्चर्यजनक मौन इस बात का स्पष्ट सङ्केत देता है कि इनका सापेक्षिक महत्त्व इस समय पर्याप्त विवादास्पद था। दक्षिणी आचार्य यमक तथा

---

१. शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्टं द्वयं तु नः। का०अ० १/१५
२. युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते। वही १/३०
३. श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्। का०अ० २/३६३
४. अर्थस्यालङ्कारा वास्तवौपम्यातिशयश्लेषः। का०अ०(रु०) ७/६
५. शब्दाभ्यासस्तु यमकम्। ना०शा० १६/६२ काव्यमाला संस्करण, ४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कश्मीरी आचार्य अनुप्रास को अधिक महत्त्व देते थे। यद्यपि कुछ उदार दृष्टि वाले आचार्यों ने दोनों को स्वीकार कर लिया था तथापि गणनाक्रम में भामह ने अनुप्रास को तथा वामन ने यमक को पहले गिना।

विकास की प्रथम अवस्था में अनुप्रास का सम्बन्ध अर्थ के साथ भी रहा होगा। वि०ध०पु०[1] के अतिरिक्त स्वयं का०अ० तक इस प्रवृत्ति के सङ्केत[2] ढूंढे जा सकते हैं। इसका अर्थगत स्वरूप क्रमशः विस्मृत होता रहा परन्तु एक वार शब्दगत स्वरूप स्थिर हो जाने पर उत्तरकालीन आचार्यों में कोई विशेष मत-भेद प्राप्त नहीं होते जबकि भरत के दस यमकभेदों को भामह ने जहाँ एक ओर पाँच में ही अन्तर्भूत करने का दावा किया[3] वहाँ इसके विरोध में दण्डी ने कम से कम ३१५ भेदोपभेद प्रदर्शित किये। यहाँ भामह का ग्राम्यानुप्रास का उदाहरण विवादास्पद हो सकता है जहाँ 'ल' वर्ण की पुनः पुनरावृत्ति है[4] परन्तु यहाँ सम्भवतः इसका सम्बन्ध उद्भटप्रोक्त अनुप्रास की तीन वृत्तियों—ग्राम्या, परुषा और उपनागरिका में से ग्राम्यावृत्ति के साथ हो सकता है। लाटानुप्रास का उदाहरण[5] भरत के सन्दष्ट यमक में अवश्य सङ्क्रान्त हो सकता है। इन दोनों का विवेक उद्भट के आलोक में ही सम्भव है।[6]

यमक और अनुप्रास शब्दालङ्कार हैं और शब्दाभ्यास में ही अत्यन्त आसक्ति काव्य के भावपक्ष को शिथिल कर देती है। अतः भामह के समय से ही शब्दाभ्यास के अनावश्यक मोह पर अङ्कुश रखने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। यमक के विवेचन के अनन्तर तीन कारिकाओं में काव्यालङ्कार के

---

१. अर्थगत्या तु संख्यातमनुप्रासं पुरातनैः। वि०ध०पु०

२. नानार्थवन्तोऽनुप्रासा न चाप्यसदृशाक्षराः। का०अ० २/७

३. सन्दष्टकसमुद्गादेरत्रैवान्तर्गतिर्मता।
आदौ मध्यान्तयोर्वा स्यादिति पञ्चैव तद्यथा॥ वही २/१०

४. स लोलमालानीलालिकुलाकुलगलोबलः। वही २/६

५. दृष्टिं दृष्टिसुखां धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोदितः। वही २/८

६. स्वरूपार्थविशेषेऽपि पुनरुक्तिः फलान्तरात्।
शब्दानां वा पदानां वा लाटानुप्रास इष्यते॥ का०सा०सं० १/८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेखक ने इसकी व्यवस्था दी।[1] यमक में प्रयुक्त पद प्रसिद्धार्थक, ओजपूर्ण, अश्लिष्ट पदसन्धि, प्रसादपूर्ण तथा अभिव्यक्ति में समर्थ होने चाहिएं। इसी प्रसङ्ग में रामशर्मा के अच्युतोत्तर नामक काव्य की ओर सङ्केत है जहाँ यमक के नाम से विभिन्न धात्वर्थों का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। यह वास्तव में प्रहेलिका है। ऐसे दुरूह काव्यत्व का भी खण्डन किया गया है।

प्रथम वर्ग में विवेचित अन्य तीन अलङ्कार उपमा, रूपक और दीपक हैं। इनमें भी उपमा दाक्षिणात्य तथा रूपक औदीच्य परम्परा के प्रथम मान्य अलङ्कार हैं। दण्डी बड़े मनोयोग से उपमाचक्र का निरूपण करते हैं, इस परम्परा से भामह भी परिचित थे परन्तु किसी वैशिष्ट्य के अभाव में इस प्रकार के अनावश्यक विस्तार के वे विरोधी हैं।[2] यहाँ प्रतिवस्तूपमा का विवेचन भी भामह ने उपमा के ही प्रसङ्ग में कर दिया, जो बाद में स्वतन्त्र हो गया। दण्डी ने तो रूपकचक्र का भी विस्तार से विवेचन किया है, भामह ने केवल इसके दो भेद किये थे—समस्तवस्तुविषय और एकदेशविवर्ति।[3] माला रूपक प्रथम भेद में ही अन्तर्गतार्थ हो जाता है। दीपक ही इस वर्ग का एक ऐसा अलङ्कार है जो अन्तिम स्थिति तक पहुँचते-पहुँचते विवाद का विषय बन गया। तुल्ययोगिता में इसका अन्तर्भाव करने का प्रयास जगन्नाथ पण्डितराज ने भी किया।[4]

भामह ने दूसरे वर्ग में आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति और अतिशयोक्ति का परिगणन किया है परन्तु वास्तविक विवाद अतिशयोक्ति को लेकर है जबकि भामह के ही सन्दर्भों को लेकर वक्रोक्ति के साथ इसके एकत्वस्थापन का प्रयास अनेक आचार्यों ने किया है। इनमें

---

१. प्रतीतशब्दमोजस्वि सुश्लिष्टपदसन्धि च।
प्रसादि स्वभिधानञ्च यमकं कृतिनां मतम्॥
नानाधात्वर्थगम्भीरा यमकव्यपदेशिनी।
प्रहेलिका सा ह्युदिता रामशर्माच्युतोत्तरे॥
काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः॥ का०अ० २/१८-२०

२. सामान्यगुणनिर्देशात्त्रयमप्युदितं ननु।
मालोपमादिः सर्वोऽपि न ज्यायान्विस्तरो मुधा॥ वही, २/३८

३. समस्तवस्तुविषयमेकदेशविवर्ति च।
द्विधा रूपकमुद्दिष्टमेतत्तच्चोच्यते यथा। वही, २/२२

४. तुल्ययोगितातो दीपकं पृथग्भावमर्हति धर्मसकृद्वृत्तिमूलाया विच्छित्तेः अविशेषात्। र०ग०, द्वितीयानन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महामाहेश्वर अभिनवगुप्त भी आते हैं[1] परन्तु भामह की वक्रोक्ति को कदाचित् अतिशयोक्ति से अभिन्न नहीं कहा जा सकता। द्वितीय परिच्छेद की 'सैषा सर्वैव वक्रोक्तिः' इत्यादि कारिका से पूर्व अतिशयोक्ति के भेदविभाग की विविध सम्भावनाओं के साथ ही उसका विवेचन समाप्त हो चुका है। इस कारिका का अवतरण सम्पूर्ण विवेचन को आगे बढ़ाते हुए हेतु आदि के खण्डन के प्रसङ्ग में हुआ है। वैसे भी भामह ने अन्य अनेक स्थलों पर भी अर्थ की विभावयित्री, भणितिवैचित्र्यरूपा वक्रोक्ति का स्तवन किया है परन्तु कहीं भी इस प्रसङ्ग में अतिशयोक्ति नाम नहीं आया। दूसरे, भामहीय वक्रोक्ति का स्वरूप गुणातिशय योग न होकर व्यञ्जनावैचित्र्य ही है और फिर अतिशयोक्ति भामह के अनुसार एक अलङ्कारविशेष है। उपमा और उत्प्रेक्षा जैसे कुछ ही अलङ्कारों में अवश्य इसका किञ्चिद् योग रहता है[2] जबकि वक्रोक्ति अलङ्कारत्व का आधायक उसका प्राणभूत तत्त्व है।

हेतु, सूक्ष्म और लेश को केवल इसलिए उन्होंने अलङ्कार नहीं माना कि इनमें वक्रोक्ति का आदर नहीं होता[3] जबकि दूसरी ओर दण्डी इन्हें वाणी का उत्तम भूषण मानते हैं।[4] श्लेष के एक भेद को हेतुमूलक अवश्य कहा गया है परन्तु वहाँ चमत्कार श्लेष के कारण है, हेतु का नहीं।

"सूर्य अस्त हो गया, चन्द्रमा भासमान है, पक्षी अपने निवास को जा रहे हैं" भामह के अनुसार यह कथन वार्त्ता हो सकता है, काव्य नहीं।[5] इसी पृष्ठ-भूमि में दण्डी का यह उत्तर अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि काल अथवा अवस्था के अनुरोध से यही वाक्य उत्तम काव्य का उदाहरण भी हो सकता है।[6] अस्तु, यह विरोध मान्यता का है। भामह का वक्रोक्ति के प्रति आग्रह और दण्डी का प्रस्थानभेद।

---

१. याऽतिशयोक्तिर्लक्षिता सैव सर्वा वक्रोक्तिरलङ्कारप्रकारः सर्वः।
—ध्व०आ०लो०, तृतीय उद्योत

२. इष्टञ्चातिशयार्थत्वमुपमोत्प्रेक्षयोर्यथा। का०अ० २/५०

३. हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः॥ का०अ० २/८६

४. हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणौ। का०आ० २/२३५

५. गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादि किं काव्यं वार्त्तमेनां प्रचक्षते॥ का०अ० २/८७

६. गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इतीदमपि साध्वेव कालावस्थानिवेदने॥ का०आ० २/२४४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथासंख्य और उत्प्रेक्षा दो अन्य अलङ्कार हैं। प्रथम के उद्भावक सम्भवतः मेधावी हैं, उन्होंने इसे संख्यान नाम दिया था।[1] उत्प्रेक्षा की स्वतन्त्र अलङ्कारता कदाचित् वे नहीं मानते थे। स्वयं भामह में इसके स्वरूप के नाम पर जो विशद व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है उसमें उपमा और अतिशय का योग आवश्यक माना गया है[2]. फिर क्यों न इसे संसृष्टि में अन्तर्भूत मान लें। जो हो, भामह ने दोनों की अलङ्कारता मानी है।

स्वभावोक्ति को कुछ लोग अलङ्कार मानते हैं, जबकि स्वभाव से अभिप्राय है। किसी भी वस्तु का तदवस्थ रूप में वर्णन।[3] भामह ने यहाँ उदाहरण गौओं को अनाज की ओर जाने से रोकते हुए बालक के वर्णन के रूप में दिया है,[4] अतः बाद के आचार्यों ने मृगडिम्भादि के स्वाभाविक वर्णन में ही इसका वास्तविक स्वरूप मान लिया। स्वयं भामह स्वभावोक्ति को अलङ्कार न मानकर वक्रोक्ति की ही तरह अलङ्कारत्व का नियामक आधार स्वीकार करने के अधिक पक्ष में हैं।

तृतीय परिच्छेद में प्रेय, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त (दो भेद), श्लिष्ट (तीन भेद), अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमारूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससन्देह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविक और अन्त में आशीः इन चौबीस अलङ्कारों का वर्णन है। इनमें से पर्यायोक्त को छोड़कर प्रथम चार में उद्भट ने रसविवेचन के समस्त सन्दर्भों को समाहित कर दिया, यद्यपि भामह स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं कह पाये थे। इनमें से रसवत् में तो सभी रसों की स्थिति का०अ० में वर्णित है[5] परन्तु अन्य अलङ्कारों के जो केवल उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं उनमें प्रेय में प्रीति भाव का, ऊर्जस्वी में ऊर्जा अथवा स्वाभिमान की चामत्कारिक अभिव्यक्ति तथा समाहित में आश्चर्यकारी आकस्मिक दैवयोग वर्णित है। ध्वन्यालोक में रसवदादि की स्थिति

---

१. संख्यानमिति मेधावी···। का०अ० २/८८

२. अविवक्षितसामान्या किञ्चिच्चोपमया सह।
अतद्गुणक्रियायोगादुत्प्रेक्षातिशयान्विता ॥ वही २/९१

३. स्वभावोक्तिरलङ्कार इति केचित्प्रचक्षते।
अर्थस्य तदवस्थात्वम् स्वभावोऽभिहितो यथा ॥ वही २/९३

४. आक्रोशन्नाह्वयन्नन्यानाधावन्मण्डलैर्नुदन्।
गा वारयति दण्डेन डिम्भः शस्यावतारणीः ॥ वही २/९४

५. रसवद्दर्शितस्पष्टशृंगारादि रसं यथा ॥ वही ३/६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुणीभूतव्यंग्य में वर्णित है।[१] इसी वर्ग में समाहित से पूर्व पर्यायोक्त अलङ्कार का उल्लेख उद्भटाचार्य ने भी किया है। भामह के ही लक्षण को उद्धृत कर उसका जो नवीन व्याख्यान उन्होंने प्रस्तुत किया है उसके अनुसार यह वाच्य-वाचक वृत्ति से सर्वथा शून्य एक अवगमात्मक प्रकार है,[२] अर्थात् यहाँ अभिधा का अनादर करके काव्यंग्यार्थ ग्रहण किया जाता है।

दो प्रकार का उदात्त, जिसे दण्डी ने आशयमहत्त्व तथा अभ्युदयगौरव की संज्ञा दी[३] तथा तीन प्रकार का श्लेप इनके पश्चात् वर्णित है। भामह ने श्लेष का सम्बन्ध सहोक्ति, उपमा और रूपक से माना था तथा इसी आधार पर इसका वर्गीकरण भी किया था[४] परन्तु दण्डी के अनुसार यह सभी वक्रोक्ति-मूलक अलङ्कारों में श्रीवृद्धि करता है।[५] इसी अनुकरण पर रुद्रट ने भी श्लेपमूलक अलङ्कारों का एक वर्ग बनाया।[६]

संसृष्टि में एकाधिक अलङ्कारों का योग होता है, इसीलिए भामह ने इसे रत्नमाला की तरह "वराविभूषा" कहा था[७] परन्तु वही आचार्य उपमा और रूपक तथा श्लेष, उत्प्रेक्षा और रूपक के मिश्रण को क्रमशः उपमारूपक तथा उत्प्रेक्षावयव के नाम से दो स्वतन्त्र अलङ्कारों के रूप में वर्णित करता है। इसीलिए भामह की इस स्थापना का स्वागत नहीं हुआ। स्वयं उनके व्याख्याता उद्भट ने भी इनका उल्लेख नहीं किया। वामन ने इन्हीं दोनों को संसृष्टि का भेद मान लिया था[८] पर संसृष्टि के यही दो भेद क्यों ? हाँ, दण्डी के बाद सङ्कर के प्रवेश से अवश्य इसका विकास दो शीर्षकों में बँटकर हुआ।

भाविक का वैशिष्ट्य यही है कि अलङ्कारों के प्रसङ्ग में वर्णित होकर भी

---

१. रसादिरूपव्यङ्ग्यस्य गुणीभावे रसवदलङ्कारविषयः। ध्व०आ०
२. पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना ॥ का०सा०सं० ४/९
३. आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम्। का०आ० २/३००
४. का०अ० ३/१४-२०
५. श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्। का०आ० २/३१३
६. अर्थस्यालङ्कारा वास्तवौपम्यातिशयश्लेषः। का०अ० (रु०) ७/९
७. वरा विभूषा संसृष्टिर्बह्वलङ्कारयोगतः।
रचिता रत्नमालेव सा चैवमुदिता यथा ॥ का०अ० ३/४९
८. तद्भेदावुपमारूपकोत्प्रेक्षावयवौ। का०सू०वृ ४/३/३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह प्रबन्धविषयक गुण ही बना रहा।[1] भामह ने उन तीन साधक उपादानों का भी उल्लेख किया है जो इस सौन्दर्य की प्रखरता और प्रभाविता के हेतु बनते हैं—१. अर्थ का वैचित्र्य, औदात्त्य तथा अद्भुतत्व, २. विषय की सुबोधता और ३. शब्दों की स्पष्टता।[2] आशीः का उल्लेख परमतानुरोध से ही है। अन्य अलङ्कारों के विवेचन में कोई विशेष उद्धरणीय बात नहीं।

काव्यदोष—

वाणी का अलङ्करण शब्द और अर्थ में वक्रता के आधान से ही सम्पन्न हो पाता है जबकि एक भी दूषित पद के प्रयोग से दुष्ट पुत्र के समान निन्दा प्राप्त होती है[3] तथा यह अपयश मृत्यु के समान ही दुःखदायी है[4], यह भामह पहले ही कह चुके हैं। अत एव सत्कवि काव्य में दोषों के परिहार के लिए सतर्क रहते हैं। पुनः भामह कहते हैं कि ये दोष भी कभी-२ सुन्दर लगने लगते हैं जैसे कान्ता के नेत्रों में न्यस्त मलिन अञ्जन अथवा श्वेत पुष्पों की माला में निबद्ध नीलकमल[5] परन्तु सामान्य रूप से तो ये काव्यशोभा के विघातक ही हैं। यही भामह के अनुसार दोषसामान्य का स्वरूप है।

यह विवेचन एक अन्य दृष्टि से भी भामह के चिन्तन की मौलिकता को प्रकट करता है। उनसे पूर्व भी दोषविवेचन होता आया था। भरत ने गुणों को दोषों का विपर्यस्त रूप कहा था।[6] उत्तरवर्त्ती वामन की स्थिति ठीक इसकी विलोम है। उन्होंने दोषों को गुणों का विपर्यय कहा।[7] यहाँ उनके टीकाकार गोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपाल ने विपर्यय का अर्थ 'वैपरीत्य' किया।[8] अतः गुण और दोष प्रकाश और अन्धकार के विरोधी द्वन्द्व के समान एक दूसरे

---

१. भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम। का०अ० ३/५३
२. चित्रोदात्ताद्भुतार्थत्वं कथायाः स्वभिनीतता।
शब्दानाकुलता चेति तस्य हेतुं प्रचक्षते॥
३. विज्ञक्षमणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते। का०अ० १/११
४. कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः। वही १/१२
५. कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम्। वही १/५५
नीलं पलाशमावद्धमन्तराले स्रजामिव। वही १/५४
६. एते दोषास्तु विज्ञेयाः सूरिभिर्नाटकाश्रयाः।
एत एव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः॥ ना०शा० १६/९५
७. गुणविपर्ययात्मानो दोषाः। का०सू०वृ० २/१/१
८. विपरीयन्त इति विपर्ययो विपरीताः। ···त एवात्मानो येषां ते विपरीतस्वभावाः। न त्वभावरूपा इत्यर्थः। अनेन गुणविपरीतस्वरूपत्वं दोषसामान्यलक्षणमुक्तं भवति।वही, का० वे०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के विरोधी धर्मों से युक्त हैं। यह दृष्टि सापेक्षिक थी, गुणों के माध्यम से दोष का विवेचन तथा दोषों के मापदण्ड पर गुणों का स्वरूपनिर्धारण परन्तु भामह का दोष विवेचन काव्य के मापदण्ड पर हुआ है, गुणों की तो स्वतन्त्र मान्यता ही उनके सिद्धान्त में स्वीकृत नहीं है।

एक बात और, सम्पूर्ण वाङ्मय भामह के अनुसार वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति के दो शीर्षकों में विभाजित है।[1] इनमें से स्वभावोक्ति तो वाङ्मय की वह विधा है जो अलङ्कारशून्य होकर भी चमत्कृति का आधान करती है जबकि वक्रोक्ति समस्त अलङ्कारवर्ग में 'अलं' का आधायक उसका प्राणभूत तत्त्व है[2], अतः **वक्रोक्ति में हीनता ही काव्य का दोष है** और वक्रोक्ति से जुड़ते ही दोषों का सीधा सम्बन्ध कविगत व्यापार से हो जाता है। अतः **अभिव्यक्ति की शिथिलता** भामहानुमत दोष का निष्कृष्ट लक्षण हो सकता है।

वैसे दोष की स्पष्ट परिभाषा पूरे काव्यालङ्कार में उपलब्ध नहीं होती जबकि इनका निरूपण चतुर्थ और पञ्चम परिच्छेद के अतिरिक्त, जहाँ ग्यारह काव्यदोषों का विस्तृत वर्णन है, प्रथम परिच्छेद के अन्त में भी प्राप्त होता है, जहाँ छह और चार के वर्ग में दश दोषों का विवेचन हुआ है। भामह द्वारा इन विभिन्न वर्गों में विवेचन का आधार स्पष्ट नहीं हो पाया। डा०नगेन्द्र का यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता कि विभिन्न वर्गों में विवेचित दोष भिन्न-२ आचार्यों की सम्मतियाँ हैं, जिनका भामह ने संग्रह किया है[3] क्योंकि प्रथम परिच्छेद के एक वर्ग में, जहाँ केवल चार दोषों का उल्लेख है, उनमें से तीन केवल अश्लील का परिहार करने वाले हैं और काव्य के अन्य सभी मुख्य दोष उस वर्ग में नहीं आ पाते। डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार प्रथम वर्ग के दोष वक्रोक्ति से सम्बद्ध हैं।[4] इनका अवतरण भी वक्रोक्तिविषयक चर्चा के प्रसङ्ग में हुआ है परन्तु भामह के मत में काव्य यदि वक्रोक्तिसर्वस्व ही है तो फिर अपार्थ, व्यर्थ आदि दोषों का सम्बन्ध वक्रोक्ति से क्यों नहीं है? ग्राम्य आदि जिन दोषों का विवेचन भामह ने प्रकीर्ण रूप से किया है, वे क्या वक्रोक्ति से जुड़े नहीं हैं? ये सब प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते हैं। सम्भवतः यह विभाजन यादृच्छिक ही है।

ध्वन्युत्तरवर्ती काल में जाकर अभिनवगुप्त और मम्मट आदि आचार्यों ने जो दोषों के नित्यत्व और अनित्यत्व का विभाग प्रस्तुत किया, उसकी पृष्ठ-

---

१. युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते। का०अ० १/३०

२. ···कोऽलङ्कारोऽनया विना। का०अ० २/५५

३. डॉ० नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० ६२

४. डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी, महिमभट्ट, पृ० २२३-२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमि भामह से पूर्व ही निर्मित हो चुकी थी। वि०ध०पु० में विस्मय, असूया, भय, शोक, त्वरा, हर्ष आदि की स्थितियों में पुनरुक्त के दोषाभाव की बात कही गयी थी।[1] भामह के अनुसार भी विशिष्ट परिस्थितियों में यह दोष नहीं रहता।[2] यदि उत्कण्ठावश कोई उन्मत्त की तरह प्रलाप करने लगे तो उस परिस्थिति में अयुक्तिमत् दोष नहीं होता।[3] दण्डी ने देशादिविरोध दोष की गुणरूपता प्रतिपादित की थी।[4] भामह का योगदान इस विषय में इतना ही है कि दोषों की गुणात्मकता के आधारभूत दो कारणों का अनुसन्धान उन्होंने किया है। सन्निवेशप्रकार की विशेषता से दुरुक्त भी श्वेत पुष्प की माला के मध्य निबद्ध नीलपलाश की तरह सुशोभित होता है।[5] इस परिवर्त्तन का दूसरा कारण आश्रयसौन्दर्य है, जैसे कान्ता के नेत्रों में न्यस्त मलिन अञ्जन।[6] प्रथम प्रकार के उदाहरण उन्होंने काव्य से भी दिये हैं जैसे 'पाण्डु' शब्द के साथ 'गण्ड' शब्द का प्रयोग[7] और इसी प्रकार 'विक्लिन्न' और 'गण्ड' शब्दों का सह प्रयोग।[8]

प्रथम परिच्छेद के प्रथम वर्ग में परिगणित छह दोष नेयार्थ, क्लिष्ट, अन्यार्थ, अवाचक, अयुक्तिमत् और गूढशब्दाभिधान हैं। इनमें अयुक्तिमत् के अतिरिक्त सभी दोष अर्थ से सम्बन्धित हैं, वामन ने इनका ग्रहण पदार्थ तथा वाक्यार्थ दोषों में किया है। अयुक्तिमत् सम्भवतः भामह की अपनी कल्पना है जिसे अनौचित्य पर आधृत प्रबन्धदोष कह सकते हैं। द्वितीय वर्ग में श्रुति-

---

१. विस्मये वाऽभ्यसूयायां भयशोकत्वरासु च।
हर्षे च वीप्सा कर्त्तव्या पुनरुक्तं न तदविदुः॥ वि०ध०पु० ३/२५/११

२. भयशोकाभ्यसूयासु हर्षविस्मययोरपि।
यथाह गच्छ गच्छेति पुनरुक्तं न तद्विदुः॥ का०अ० ४/१४

३. यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते।
तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते॥ वही १/४४

४. विरोधः सकलोऽप्येष कदाचित्कविकौशलात्।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते॥ का०आ० ३/१७९

५. सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते।
नीलं पलाशमावद्धमन्तराले स्रजामिव॥ का०अ० १/५४

६. किञ्चिदाश्रयसौन्दर्याद्धत्ते शोभामसाध्वपि।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम्॥ वही १/५५

७. आपाण्डुगण्डमेतत्ते वदनं वनजेक्षणे / वही १/५६

८. यथा विक्लिन्नगण्डानां करिणां मदवारिभिः। वही १/५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुष्ट, अर्थदुष्ट, कल्पनादुष्ट और श्रुतिकष्ट ये चार दोष विवेचित हैं। इनमें से प्रथम तीन काव्य में अश्लीलता का परिहार करने के लिए हैं। भामह शब्द, अर्थ और कल्पना तीनों से अश्लीलता का परिहार चाहते हैं। अन्तिम श्रुति-कष्ट पददोष है।

चतुर्थ परिच्छेद में परिगणित दोषों का उद्गमस्थल भरत का ना०शा० है। इनके कुछ दोष तो नाम्ना और स्वरूपतः अभिन्न ही हैं। भरत का शब्दच्युत और भामह का शब्दहीन पाणिनिव्याकरण से असम्मत पदों में निष्पन्न होता है। व्याकरण इस दृष्टि से न केवल साहित्य का प्रत्युत सभी शास्त्रों का उपजीव्य है।[1] यहाँ विशेष रूप से अवधेय तथ्य यह है कि पद की साधुता पाणिनीय तन्त्र से ही सिद्ध होनी चाहिए। ऐन्द्र, चान्द्र आदि व्याकरण उतने प्रतिष्ठित नहीं हैं।[2] पाणिनीय सम्प्रदाय में भी सूत्रकार, वार्त्तिककार और भाष्यकार की प्रामाणिकता स्वीकृत की गयी है।[3] इसके अतिरिक्त विसन्धि दोष का सम्बन्ध भी सीधा व्याकरण से ही है, वामन ने इसे वाक्यदोषों में गिना है।

भिन्नवृत्त और यतिभ्रंश छन्दसम्बन्धी दोष हैं। भरत ने इसे एक ही संयुक्त नाम 'विषम' से वर्णित किया था। भामह के समय तक इन्हें अलग-२ मान लिया गया परन्तु आचार्यों का एक वर्ग अब भी भरत की स्थापना का अनुयायी था, वामन ने बड़ी तत्परता से उसका खण्डन किया है।[4]

अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय और अपक्रम ये सभी अर्थदोष हैं। इनमें से अन्तिम चार को तो वामन ने स्पष्टतः ही वाक्यार्थ दोषों में परिगणित किया है। एकार्थ अथवा पुनरुक्त की अर्थनिष्ठता सिद्ध करने के लिए भामह स्वयं सचेष्ट हैं।[5] देशकालकलालोकन्यायागमविरोधी का उल्लेख दण्डी ने विस्तारपूर्वक तथा वामन ने लोकविरुद्ध और विद्याविरुद्ध के दो नामों से किया।

इन प्रमुख दोषों के अतिरिक्त भी प्रकीर्ण रूप से का०अ० में कुछ दोषों की ओर सङ्केत किया गया है। महाकाव्य के लक्षण तथा गौडी और वैदर्भी

---

१. सदोषमुक्तं सर्वाभिरन्यविद्याकरेणुभिः। का०अ० ६/२
२. ···न तन्त्रान्तरसाधितम्···। वही ६/२७
३. सूत्रकृत्पदकारेष्टप्रयोगाद्योऽन्यथा भवेत्।
तमाप्तश्रावकासिद्धेः शब्दहीनं विदुर्यथा॥ वही ४/२२
४. न, लक्ष्मणः पृथक्त्वात्। का०सू०वृ० २/२/६
५. अत्रार्थपुनरुक्तं यत्तदेवैकार्थमिष्यते।
उक्तस्य पुनराख्याने कार्यासम्भवतो यथा॥ का०अ० ४/१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रीति के विवेचन प्रसङ्ग में भामह ने ग्राम्यदोष के प्रति सावधान किया है। पञ्चम परिच्छेद में बहुपूरण, असुनिर्भेदता और अप्रतीत दोषों का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त भी अपुष्टार्थता, आकुलता, अहृद्यता, विरुद्धपद, अस्वर्थ, व्यायतता आदि प्रकीर्ण दोषों को ढूंढा जा सकता है। यद्यपि ग्रन्थ में इन्हें अपेक्षित गौरव देकर वर्णित नहीं किया गया तथापि ये आचार्य की सूक्ष्म और समर्थ सन्दर्शिका के परिचायक हैं। क्रमबद्धता के अभाव में भी इनका विवेचन उत्तरवर्ती आलङ्कारिकों के लिए उपजीव्य बना।

उपमादोष इनसे अलग हैं। हीनता, असम्भव, लिङ्गभेद, वचनभेद, विपर्यय, अधिकता और असादृश्य इन सात उपमासम्बन्धी दोषों का उल्लेख भामह ने मेधावी के प्रामाण्य पर किया। सम्भवतः सभी लक्षण और कदाचित् उदाहरण भी मेधावी से लिये गये हैं, यह स्वयं भी भामह ने स्वीकार किया है[1] और रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु के साक्ष्य से भी यही प्रमाणित होता है। शिष्ट-प्रोक्त होने के कारण इन सभी को स्वीकार कर लिया गया है पर उनकी व्याख्या में भामह ने अपने समर्थ विवेक का परिचय दिया है। असम्भव का तो उन्होंने सर्वथा निषेध ही किया है क्योंकि कोई भी कवि जानबूझकर सर्वथा असम्भव अर्थ की कल्पना नहीं करता। किसी को चन्द्रमा की उपमा आग से करते नहीं देखा गया।[2] अतिशय के योग में भी असम्भव की दोषता इष्ट नहीं क्योंकि यह तो उपमा और उत्प्रेक्षा आदि में सर्वथा काम्य ही होता है।[3] हीनता और उपमानाधिकत्व के सम्बन्ध में भी वे पूर्ण आश्वस्त नहीं हैं। उनका यह कथन कि किसी भी वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्पूर्ण सादृश्य नहीं होता[4], महत्त्वपूर्ण है। किञ्च, छोटे छोटे दोष निकालने की अपेक्षा महा-कवियों की रचनाओं को लक्षण के अनुसार सङ्घटित कर लेना चाहिए।[5]

सम्पूर्ण पञ्चम परिच्छेद न्यायदोषों के विवेचन में समर्पित है, इसका नाम भी अतएव 'न्यायनिर्णय' रखा गया है। प्रथम परिच्छेद में भामह ने काव्य के

---

१. त एत उपमादोषाः सप्त मेधाविनोदिताः।
सोदाहरणलक्ष्माणो वर्ण्यन्तेऽत्र च ते पृथक्॥ का०अ० २/४०

२. तत्रासम्भविनार्थेन कः कुर्यादुपमां कृती।
को नाम वह्निनौपम्यं कुर्वीत शशलक्ष्मणः॥ वही २/४९

३. यस्यातिशयवानर्थः कथं सोऽसम्भवो मतः।
इष्टश्चातिशयार्थत्वमुपमोत्प्रेक्षयोर्यथा॥ वही २/५०

४. सर्वं सर्वेण सारूप्यं नास्ति भावस्य कस्यचित्। वही २/४३

५. किञ्च काव्यानि नेयानि लक्षणेन महात्मनाम्। वही २/४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्राश्रित जिस भेद[1] की चर्चा की है, इस प्रकार के काव्यों में प्रतिज्ञा आदि के निर्वाह में होने वाले दोषों का परिचय कराना इस प्रकरण का उपयोग है। अतः दण्डी की इस संदर्भ में की गयी विपरीत टिप्पणी सर्वथा ग्राह्य नहीं है। भामह से पूर्व काव्य के संदर्भ में इन दोषों का विवेचन किये जाने की परम्परा थी। भरत का न्यायादपेत[2] तथा वि०ध०पु० का प्रतिज्ञारहित दोष[3] इसका निदर्शन है। स्वयं भामह का यह कथन कि "काव्य के संदर्भ में इनका विवेचन भिन्न प्रकार से किया जाता है"[4], इस विषय में प्रमाण है परन्तु दण्डी के द्वारा खण्डन कर दिये जाने के बाद फिर किसी आचार्य ने इनका उल्लेख नहीं किया। अस्तु।

प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहीन दोषों का विवेचन तत्तत् न्यायादिशास्त्रों में प्रकारान्तर से भेदोपभेदों के सहित किया गया है।[5] उस तरह का अनावश्यक विस्तार यहाँ सर्वथा अनपेक्षित ही है क्योंकि शास्त्रों के संदर्भ में इनकी जो प्रासङ्गिकता है, काव्य में इनकी स्थिति उनसे नितरां भिन्न प्रकार की है क्योंकि काव्य सर्वथा लोकाश्रित है। शास्त्र के समान गम्भीर तत्त्वदर्शन का यहाँ आग्रह नहीं होता।[6] इसका उदाहरण उपस्थित करते हुए आचार्य भामह ने कहा है कि लोक में कारण को नित्य कहा जाता है परन्तु तात्त्विक दृष्टि से यदि वह कारण है तो नित्य नहीं हो सकता और यदि वह नित्य है तो उसमें करणत्व उपपन्न नहीं होता।[7] अतः काव्य को दर्शन की शुष्क तर्कपद्धति में कसकर नहीं देखा जा सकता। लोकव्यवहार में तो—

असिसङ्काशमाकाशं शब्दो दूरानुपात्ययम्।
तदेव वारि सिन्धूनामहो स्थेमा महार्चिषः॥ का०अ० ५/३४

जैसे कथन भी प्रचलित होते हैं और काव्य उन्हें सहर्ष मान्यता प्रदान करता है यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से इनका औचित्य स्थापित नहीं किया जा सकता।

---

१. कलाशास्त्राश्रयञ्चेति.....। का०अ० १/१७
२. न्यायादपेतं विज्ञेयं प्रमाणपरिवर्जितम्। ना०शा० १६/९३
३. ससंशयं न वक्तव्यं प्रतिज्ञारहितं तथा। वि०ध०पु० ३/१५/१३
४. तज्ज्ञैः काव्यप्रयोगेषु तत्प्रादुष्कृतमन्यथा। का०अ० ५/३३
५. लक्ष्मप्रयोगदोषाणां भेदेनानेन वर्त्मना।
संधादिसाधनं सिद्ध्यै शास्त्रेषूदितमन्यथा॥ वही ५/३२
६. तत्र लोकाश्रयं काव्यमागमास्तत्त्वशंसिनः। वही ५/३३
७. अथ नित्याविनाभावि दृष्टं जगति कारणम्।
कारणञ्चेन्न तन्नित्यं नित्यञ्चेत्कारणं न तत्॥ वही ५/३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म, अर्थ, काम और कोपमूलक चार प्रकार की प्रतिज्ञा और प्रतिज्ञाभासों का निरूपण करने के साथ ही यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि काव्य में इनका प्रयोग यथावसर अवश्य किया जाना चाहिए।[1] अब यह कवि की वर्णनशैली पर निर्भर करता है कि यह प्रतिज्ञा कभी शब्दतः उक्त अथवा अनुक्त भी हो सकती है[2], जिसे आर्थी प्रतिज्ञा कहते हैं। यथा, 'किमिन्द्रियद्वेषाज्ञेयम्' के द्वारा अनुक्त होकर भी यह प्रतिज्ञा ध्वनित होती ही है कि— 'अहं ब्रह्म ज्ञास्यामि'। शास्त्रीय दृष्टि से यह तदर्थविरोधिनी, हेतुविरोधिनी, स्वसिद्धान्तविरोधिनी, सर्वागमविरोधिनी, प्रसिद्धधर्मा अथवा प्रत्यक्षबाधिनी नहीं होनी चाहिए।[3] ये छह प्रतिज्ञासम्बन्धी दोष कहे गये हैं।

चाहे अनुमान की चर्चा हो अथवा काव्य की, हेतु वही निर्दुष्ट माना जाता है जिसमें पक्षसपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति हो, अन्यथा वह हेत्वाभास की कोटि में आ जाता है।[4] इसका सविस्तर निरूपण न्यायादि के ग्रन्थों में किया गया है परन्तु यह अन्वयव्यतिरेक न केवल शास्त्रीय प्रत्युत लौकिक दृष्टि से भी सुतराम् उपयोगी है, यद्यपि कवि काव्य में अपनी विवक्षा के अनुसार ही इसका उपयोग करता है। यथा, लोक में एक वस्तु से सम्बन्धित ज्ञान अपने से सम्बद्ध दूसरी वस्तु का ज्ञापक अथवा स्मारक होता है।[5] कुररियों का कूजन और कमलों का सौरभ इसी नियम से सरोवर की अनुमिति में सहायक होता है। सामान्यतः इस हेतु का निर्देश पृथक् रूप से पञ्चमी विभक्ति के द्वारा किया जाता है परन्तु कवि के लिए यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं, विशेषण के रूप में प्रथमा विभक्ति में भी इसका प्रयोग देखा जाता है।[6] हाँ, अज्ञान, संशय अथवा विपरीत ज्ञान उत्पन्न करने वाला हेतु यथा, पुष्पों के सौरभरूप हेतु से सर्वथा सुगन्धरहित काशपुष्प का अज्ञानकृत अनुमान अथवा केवल जल

---

१. कार्योऽन्यत्र प्रतिज्ञायाः प्रयोगो न कथञ्चन।
परित्यागश्च कर्त्तव्यो नासां चतसृणामपि॥ का०अ० ५/४०

२. अथाभ्युपगमप्राप्तिः सन्वाप्युपगमाद् विना।
अनुक्तमपि यत्रार्थादभ्युपैति.....॥ वही ५/४५

३. तदर्थहेतुसिद्धान्तसर्वागमविरोधिनी।
प्रसिद्धधर्मा प्रत्यक्षबाधिनी चेति दुष्यति॥ वही ५/१३

४. सन्दृयोः सदृशे सिद्धो व्यावृत्तस्तद्विपक्षतः।
हेतुस्त्रिलक्षणो ज्ञेयो हेत्वाभासो विपर्ययात्॥ वही ५/२१

५. अन्यधर्मोऽपि तत्सिद्धिं सम्बन्धेन करोत्ययम्। का०अ० ५/४६

६. अपृथक्कृतसाध्योऽपि हेतुश्चात्र प्रतीयते। वही ५/५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के समीप रहने से पक्षी का शरारि होना रूप सन्दिग्धज्ञान अथवा चकोर की सिद्धि के लिए उसका शुक्लान्त नेत्र होना रूप हेतु लोक में भी दूषित माना जाता है।

एक वस्तु के समान दूसरी वस्तु का निर्देश करना दृष्टान्त कहा जाता है।[3] उपमा की भी स्थिति इसी प्रकार की है परन्तु उसमें हेतु का अभिधान नहीं होता जो अनुमान की एक अनिवार्य शर्त है।[2] 'मुखं पद्ममिव' इस वाक्य में मुख और कमल में सादृश्य मात्र विवक्षित है परन्तु अनुमान की प्रक्रिया में धूमवत्त्व हेतु से अग्नि का अनुमान साध्य है, अतः इसमें साध्य और साधन का व्याप्तिमूलक ज्ञान अपेक्षित है।

एक भी साधु पद का प्रयोग कीर्ति प्रदान करता है, उसके विपरीत (असाधु) पद यश को भी विपर्यस्त कर देता है।[1] अहृद्य, असुनिर्भेद, रसयुक्त होने पर भी अरमणीय कुछ लोगों का काव्य अपक्व कपित्थ के समान होता है।[4] केवल समृद्धि के वर्णनों से ही काव्य में चारुता नहीं आती। मरकत मणियों, फलों और कुसुमों के वर्णन से आभूषण, उपवन और मालाओं की शोभा ही बढ़ती है, वाणी में तो शब्द और अर्थ की वक्रता ही चारुत्व की आधायक है।[5]

शब्दशुद्धि—

व्याकरण का उपयोग साहित्यशास्त्र क्या, विद्या की प्रत्येक विधा में समान रूप से होता है[6] क्योंकि इस व्याकरणरूप समुद्र को पार किए विना कोई शब्दरत्न का पारायण करने में समर्थ नहीं हो सकता।[7] यह उन समस्त

---

१. उक्तस्यार्थस्य दृष्टान्तं प्रतिबिम्बनिदर्शनम्। वही ५/५५

२. ननूपमानुमैवास्तु न हेत्वनभिधानतः।
साध्यसाधनयोरुक्तिरुक्ता तत्र हि नेष्यते॥ वही ५/५६

३. पदमेकं परं साधु नार्वाचीनं निबन्धनम्।
वैपरीत्याद् विपर्यासं कीर्तेरपि करोति तत्॥ वही ५/६१

४. अहृद्यमसुनिर्भेदं रसवत्त्वेऽप्यपेशलम्।
काव्यं कपित्थमामञ्च केषाञ्चित्सदृशं यथा॥ वही ५/६२

५. तदेभिरङ्गैर्भूष्यन्ते भूषणोपवनस्रजः।
वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते॥ वही ५/६६

६. सदोपभुक्तं सर्वाभिरन्यविद्याकरेणुभिः। का०अ० ६/२

७. नापारयित्वा दुर्गाधममुं व्याकरणार्णवम्।
शब्दरत्नं स्वङ्गम्यमलङ्कर्त्तुमयं जनः॥ वही ६/३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्याओं का भी आश्रय है जिनके विषय परस्पर विरोधी हैं और उस पर भी आश्चर्य यह है कि इन परस्पर विरुद्ध विषयों से इस शास्त्र का कोई विरोध भी नहीं। मध्यस्थ की तरह यह सबके साथ जुड़ा रहता है।[1] इसलिए कवि को स्वयम् उसके अवगम के लिए प्रयत्न करना चाहिए। दूसरों की रचनाओं में प्रयुक्त शब्दों को देख देखकर जो अपने काव्य में शब्द प्रयोग किये जाते हैं, उनसे क्या आनन्द हो सकता है, जैसे दूसरों के द्वारा धारण करके छोड़ी गयी पुष्पमाला विद्वानों के आनन्द के लिए कल्पित नहीं होती।[2] वे अन्यसारस्वत होते हैं जो अपनी रचनाओं में दूसरों के कथन का अनुवाद मात्र करके सन्तुष्ट हो जाते हैं,[4] स्वयं में रचना की मौलिकता के नाम पर उनके पास कुछ भी नहीं होता। इस मौलिकता के साथ साथ शब्द की व्याकरणिक सिद्धि और काव्य में उसकी प्रयोगयोग्यता पर भी कवि को विचार करना होता है क्योंकि उसका प्रयोजन केवल सुप्तिङ्संस्कार से ही सिद्ध नहीं होता, उसके काव्य में तो अर्थव्युत्पत्ति का भी निर्वाह होना चाहिए। शब्दसाधुत्व और काव्यशब्दसाधुत्व में यही अन्तर है।

काव्य में प्रयुक्त प्रत्येक पद की व्याकरणसिद्धि अनिवार्य है परन्तु प्रत्येक व्याकरणसिद्ध पद अनिवार्य रूप से काव्य में भी चारुत्व का आधायक नहीं हो सकता। काव्य का सर्वस्व भामह के अनुसार वक्रोक्ति है जिससे अर्थ में संस्कार आता है।[5] वक्रोक्तिनिपुण कविओं के लिए प्रयोगार्ह तथा प्रयोग के लिए अनुपयुक्त शब्दों का विवेचन करना काव्य का व्याकरण है। माली जैसे समझबूझकर फूलों को माला में पिरोता है, कुछ ऐसा ही कर्म कवि का भी है। वह

---

१. विद्यानां सततमाश्रयोऽपरासां
तासूक्तान्न च विरुणद्धि कांश्चिदर्थान्।
श्रद्धेयं जगति मतं हि पाणिनीयं
माध्यस्थ्याद् भवति न कस्यचित्प्रमाणम् ॥ वही ६/६३

२. तस्य चाधिगमे यत्नः कार्यः काव्यं विधित्सता। वही ६/४

३. नान्यप्रत्ययशब्दा वागाविभाति मुदे सताम्।
परेण धृतमुक्तेव सरसा कुसुमावली ॥ वही ६/५

४. अन्यसारस्वता नाम सन्त्यन्योक्तानुवादिनः। वही ६/६

५. सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते। वही २/८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी इसी तरह एक एक शब्द चुन चुनकर कविता की माला में सजाता है।[1] भामह के शब्दशुद्धि परिच्छेद का विषय भी यही है।[2] काव्यालङ्कार के लेखन तक इसे काव्यशास्त्र में वर्णनीय विषय माना जाता था परन्तु उसके बाद वामन के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने अपने लक्षणग्रन्थ में इसे स्थान नहीं दिया। स्पष्टतः वे व्याकरणशास्त्र के ग्रन्थों को इस विषय में प्रमाण मानते थे क्योंकि यदि इस विषय को काव्य के लक्षण ग्रन्थ में वर्णित किया भी जाये तो केवल इसकी एक झलकमात्र ही दी जा सकती है, पूरे शास्त्र का पार पाना तो ऐसे ही है जैसे कोई भयङ्कर समुद्र को तैरकर पार कर जाये।[3]

परन्तु यह गौरव केवल पाणिनीय तन्त्र को ही मिला क्योंकि उसी की लोक में व्यापक प्रतिष्ठा है। अन्य ऐन्द्र, चान्द्र आदि सम्प्रदाय इसकी कान्ति के सम्मुख निष्प्रभ हो गये। अतः उन तन्त्रों से निष्पन्न पदों का प्रयोग कवि को नहीं करना चाहिए, यदि वे पाणिनीय प्रक्रिया से सिद्ध न होते हों।[4] इस परिच्छेद का निर्माण भी पाणिनीय तन्त्र के अनुकरण पर हुआ है। वार्त्तिक और इष्टियाँ भी समान रूप से आदरणीय हैं[5] परन्तु योगविभाग से निष्पन्न (केवल व्युत्पत्तिलभ्य) शब्दों का त्याग ही करना चाहिए।[6] योग (व्युत्पत्ति) की अपेक्षा रूढ़ि (प्रवृत्ति) की बलवत्तरता भामह को भी अभीष्ट है।

श्रोत्रिय शब्द से अण् प्रत्यय करने पर निष्पन्न कर्म या भावार्थक 'श्रौत्र' शब्द शास्त्र की दृष्टि से साधु है परन्तु व्याकरण के अनतिप्रचलित नियमों

---

१. एतद्ग्राह्यं सुरभि कुसुमं ग्राम्यमेतन्निधेयं
धत्ते शोभां विरचितमिदं स्थानमस्यैतदस्य।
मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालां
योज्यं काव्येष्ववहितधिया तद्वदेवाभिधानम् ॥ का०अ० १/५९

२. वक्रवाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधवः।
प्रयोक्तुं ये न युक्ताश्च तद्विवेकोऽयमुच्यते ॥ वही ६/२३

३. सालातुरीयमतमेतदनुक्रमेण
को वक्ष्यतीति विरतोऽहमतो विचारात्।
शब्दार्णवस्य यदि कश्चिदुपैति पारं
भीमाम्भसश्च जलधेरिति विस्मयोऽसौ ॥ वही ६/६२

४. ···न तन्त्रान्तरसाधितम्···। का०अ० ६/२७

५. सिद्धो यश्चोपसंख्यानादिष्ट्या यश्चोपपादितः।
तमाद्रियेत प्रायेण····· ॥ वही ६/२९

६. ·····न तु योगविभागजम्। वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से सिद्ध होने के कारण भामह इसे काव्य में प्रयोग के योग्य नहीं मानते ।[1] इसी प्रकार ग्राम्य और अपार्थक प्रयोगों का निषेध दोषप्रकरण में किया जा चुका है ।[2] वैदिक प्रयोगों का भी लौकिक साहित्य में प्रयोग उचित नहीं ।[3] दूसरी ओर कुछ ऐसे प्रयोगों का उल्लेख है जो काव्यवक्रता को समृद्ध करते हैं । उदाहरण के लिए रात और दिन के वाचक के रूप में 'तिष्ठद्गु' और वहद्गु' शब्दों का प्रयोग लिया जा सकता है ।[4] क्विप् प्रत्ययान्त तृतीया एकवचन और षष्ठी बहुवचन के बलभिदा, सुरुचाम् विद्युताम् आदि प्रयोग इस दृष्टि से विशेष हैं ।[5] इन्हीं विभक्ति वचनों में यशस् अम्भस् आदि असन्त शब्दों का प्रयोग भी विशेष आकर्षक है ।[6] गुणवृद्धि की वैकल्पिक अवस्था में 'मार्जन्ति' इत्यादि वृद्धिपक्ष का प्रयोग अधिक ग्राह्य है ।[7] ताच्छील्य विषयक णिनि का प्रयोग तीनों लिङ्गों में शोभाधायक है[8] परन्तु तवर्ग और शकार की सन्धि श्रुतिकटु है ।[9]

प्रमाणबोधक द्वयसच् और दघ्नच्[10] तथा इमनिच् प्रत्ययों का प्रयोग भी इष्ट है ।[11] 'तेन जयति' इस अर्थ में अक्ष और शास्त्र शब्द से ठक् प्रत्ययान्त आक्षिक और शास्त्रिक[12] शब्द तथा हितप्रकरण में 'सर्व' शब्द से 'ण' प्रत्ययान्त 'सार्व' शब्द भी बनते हैं ।[13] 'सार्व' शब्द भामह को अत्यन्त प्रिय था । इसका प्रयोग उन्होंने मङ्गलाचरण में भी किया है जिसने उनके बौद्ध होने की एक लम्बी विवादपरम्परा को जन्म दिया । यहाँ इष्टि से 'छ' प्रत्यय होकर

---

१. श्रौत्रादि न तु दुर्बोधम् ..... । वही ६/२३
२. ग्राम्यं न पिण्डीशूरादि न डित्यादिमपार्थकम् । वही ६/२५
३. .....न चापिच्छान्दसं वदेत् । वही ६/२७
४. तिष्ठद्गुप्रभृतौ वाच्यौ नक्तन्दिवसगोचरौ । वही ६/३५
५. तृतीयैकवचः षष्ठ्यामामन्तञ्च वदेत्क्विपि । वही ६/४०
६. असन्तमपि यद्वाक्यं तत्तथैव प्रयोजयेत् । वही ३/४१
७. वृद्धिपक्षं प्रयुञ्जीत सङ्कमेऽपि मृजेर्यथा । ६/३१
८. लिङ्गत्रयोपपन्नञ्च ताच्छील्यविषयं णिनिम् । का०अ० ६/४६
९. न तवर्गं शकारेण क्वचित्संयोगिनं वदेत् । वही ६/६०
१०. द्वयसज्दघ्नचाविष्टौ प्रमाणविषयौ यथा । वही ६/५५
११. वदेदिमनिजतञ्च पटिमा लघिमा यथा । वही ३/५४
१२. ठक् चापि तेन जयतीत्याक्षिकः शास्त्रिको यथा । वही ६/५२
१३. हितप्रकरणे णञ्च सर्वशब्दात्प्रयुञ्जते ।
ततश्छमिष्ट्या च यथा सार्वः सर्वीय इत्यपि ॥ वही ६/५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'सर्वीय' रूप भी बनता है।[1] णिच् प्रत्यय का प्रयोग प्रायः सुन्दर-लगता है,[2] विशेष रूपसे शवल आदि शब्दों से[3] परन्तु एक ही स्थल पर ओकारान्त पदों का बाहुल्य काव्यशोभा को नष्ट करता है।[4] आदि।

अलङ्कारशास्त्र के निरूपक ग्रन्थ में केवल इसका सङ्केत ही किया जा जा सकता है। पूरी भाषा के उत्तम, मध्यम और अधम शब्दों का विभाजन करके उनका सम्पूर्ण रूप से विवेचन करना न तो अभीष्ट है, न सम्भव ही—तं न शक्यत उत्तम-मध्यमाधमैस्साधुशब्दैर्विभज्य अशेषेण कथयितुम् (भामह-विवरण, ५३, ख)।

इस प्रकार के विवेचन का उद्देश्य छात्रकविओं का अनुशासन करना था, इस दृष्टि से यह प्रकरण महत्त्वपूर्ण एवं पर्याप्त उपयोगी भी है। उत्तरवर्त्ती काल में कविशिक्षा विषयक ग्रन्थों के प्रणयन में निस्सन्देह आचार्यों को इन सन्दर्भों से प्रेरणा मिली होगी, यद्यपि वामन के अतिरिक्त किसी ने यथावत् इसे अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया।

उपसंहार—

इस प्रकार काव्यालङ्कार में पाँच प्रधान विषयों की योजना छः परिच्छेदों में, लगभग चार सौ कारिकाओं में की गयी है इसका विववण स्वयं भामह ने, ग्रन्थ के अन्त में दो करिकाओं में दे दिया है।[5] वैसे देखा जाये तो वर्णनीय विषय वस्तुतः चार ही हैं। न्यायनिर्णय, जिसका उल्लेख यहाँ अलग से किया गया है, काव्यदोषों के प्रकरण में ही वर्णित हैं। प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त-हीन दोप चतुर्थ परिच्छेद के प्रारम्भ में दोषों के गणनाक्रम में ही उल्लिखित हैं। केवल उनकी व्याख्या एक अलग परिच्छेद में की गयी है। प्रथम परिच्छेद की अन्तिम २३ कारिकाओं का विषय भी काव्यदोपनिरूपण ही है। अतः वस्तुतः चार प्रमुख विषयों की योजना यहाँ इस अनुपात में हुई है—

काव्यशरीर—३६ (काव्य स्वरूप, लक्षण, महत्त्व, भेदादि)।

---

१. वही
२. एवं णिचः प्रयोगस्तु सर्वत्रालङ्कृतिः परा। वही, ६/४६
३. शवलादिभ्यो नितरां भाति णिज्विहितो यथा। ६/४४
४. नैकत्रौकारभूयस्त्वं गतो यातो हतो यथा। वही ६/६१
५. षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्या त्वलङ्कृतिः।
पञ्चाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः॥
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येवं वस्तुपञ्चकम्।
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैर्ग्रामहेन क्रमेण वः॥ का०अ० ६/६५-६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलङ्कृति—१५४ (माधुर्य, प्रसाद, ओज तथा ३७ मान्य एवं चार अमान्य अलङ्कारों का विवेचन)

काव्यदोष—१४२ (प्रथम तथा चतुर्थ परिच्छेद के दोष एवं पञ्चम अध्याय के न्यायसम्बन्धी दोष)।

शब्दशुद्धि—६४ (शब्दों की काव्य में प्रयोगयोग्यता पर विचार)।

उपसंहारकारिकायें—२ (छः परिच्छेदों के प्रतिपाद्य का निर्देश)।

ग्रन्थ के समग्र प्रारूप से उनके पाण्डित्य की महिमा प्रकट होती है परन्तु एक बात अखरती है कि जो आचार्य काव्य के क्षेत्र में शास्त्रीय विषयों के चयन का विरोधी रहा है (प्रहेलिका का खण्डन भामह इसलिए करते हैं कि यह शास्त्रवद् व्याख्यागम्य होती है,[1] प्रसाद की महिमा उन्होंने इसलिए गायी कि उससे युक्त काव्य का अर्थ विद्वान् से लेकर बालक तक को सहज ही प्रतीत हो जाता है[2]) वही आचार्य आलोचना का ग्रन्थ लिखते हुए शास्त्र के सूक्ष्म और गम्भीर विषयों के स्पर्श के लोभ का संवरण नहीं कर पाया। शब्दशुद्धि नामक जो अध्याय उन्होंने लिखा उसमें वे शब्दस्वरूप, स्फोट तथा अपोह जैसे विषयों की चर्चा में पड़ गये। शब्द के स्वरूप के विषय में अनेक आचार्यों के अभिमत प्रस्तुत किये गये हैं।[3] व्याकरण, जिसकी महिमा को उन्होंने बार-२ गाया है, उसी के स्फोट सिद्धान्त की कल्पना को वे आकाशकुसुम की तरह सर्वथा अकल्पनीय मानते हैं।[4] अपोह का खण्डनपरक उल्लेख चार कारिकाओं में किया गया है।[5] शान्तरक्षित ने अपोह के इसी खण्डन के कारण उन्हें कुदृष्टि तथा दुरात्मा कहा है।[6] पञ्चम परिच्छेद तो है ही शास्त्रीय विषय का प्रतिपादन जिसे दण्डी ने शुष्क और कर्कशप्राय कहकर काव्य के

---

१. काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः॥ वही २/२०

२. आविद्वदङ्गनाबालप्रतीतार्थं प्रसादवत्। वही २/३

३. का०अ० ६/७-१४

४. शपथैरपि चादेयं वचो न स्फोटवादिनाम्।
नभःकुसुममस्तीति श्रद्धध्यात्कः सचेतनः। वही ६/१२

५. वही ६/१६-१९

६. अन्यापोहापरिज्ञानादेवमेते कुदृष्टयः।
स्वयं तुष्टा दुरात्मानो नाशयन्ति परानपि। तत्त्वसंग्रह (सं०का०शा०इ०, काणे, हिन्दी अनु०, पृ० १०५ से उद्धृत)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षेत्र में अवर्णनीय मान लिया था।[1] इस प्रकार वे शास्त्रीय विषय का स्पर्श तो करते हैं पर शीघ्र अपनी लेखनी पर नियन्त्रण कर लेते हैं तथा उस विषय के विशेष को तत्तच्छास्त्र के प्रतिष्ठित आचार्यों की प्रामाणिकता पर छोड़ देते हैं। चतुर्थ परिच्छेद में भी वे अपार्थ दोष का उल्लेख करते हुए पद और वाक्य सम्बन्धी विवेचन के विस्तार में प्रवेश करने ही वाले थे कि सँभल गये।[2] वस्तुतः काव्य को दार्शनिक रुक्षता से पृथक् हृदयसंवेद्य मानते हुए भी वे काव्यालोचन को नितान्त शास्त्रीय विषय मानते हैं। अत एव काव्य के लिए शास्त्र का निर्माण करते हुए स्वमत के प्रतिपादन से पूर्व पूर्वपक्ष के रूप में इन विषयों के उल्लेख का औचित्य भी सिद्ध हो ही जाता है।

विषय का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन होने पर भी का०अ० में व्यवस्था और क्रमबद्धता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। अलङ्कारों के प्रसङ्ग में ही कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ भेदमुखेन ही उनका प्रतिपादन है, यथा दीपक। "अर्थ का उद्दीपन करने के कारण दीपक का नाम सार्थक है" इस उल्लेख से अवश्य दीपक सम्बन्धी अवधारणा पर प्रकाश पड़ता है परन्तु इसे भी स्पष्ट लक्षण नहीं कहा जा सकता। ऐसे तो अनेक स्थल हैं जहाँ केवल उदाहरण ही उपलब्ध होता है, लक्षण नहीं। यथा प्रेयः, ऊर्जस्वी, समाहित तथा उदात्त का एक भेद। उत्प्रेक्षा का लक्षण, लक्षण न होकर अपने आप में उसके स्वरूप का एक विशद व्याख्यान है। दोषविवेचन की भी यही स्थिति है। श्रुतिदुष्ट और श्रुतिकष्ट के केवल उदाहरण हैं, लक्षण नहीं।

पुनरपि स्थान-स्थान पर उनकी मौलिक सूझ, गहन विवेचना और सूक्ष्म तर्कशक्ति के दर्शन होते हैं। वैदर्भ और गौड मार्ग के सम्बन्ध में उनके विचार बुद्धिपूर्ण हैं। उपमा के सम्बन्ध में उनका यह कथन कि "कोई भी वस्तु दूसरी वस्तु के सर्वथा सदृश नहीं हो सकती",[3] उनके चिन्तन की मौलिकता को प्रकट करता है। मेधावी के प्रामाण्य पर सभी सात उपमादोषों को स्वीकार

---

१. प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिर्दोषो न वेत्यसौ।
विचारः कर्कशप्रायस्तेनालीढ़ेन किं फलम्॥ का०आ० ३/१२७

२. अत्रापि बहु वक्तव्यं जायते तत्तु नोदितम्।
गुरुभिः किं विवादेन यथाप्रकृतमुच्यते॥ का०अ० ४/७

३. सर्वं सर्वेण सारूप्यं नास्ति भावस्य कस्यचित्।
यथोपपत्ति कृतिभिरुपमासु प्रयुज्यते॥ का०अ० २/४३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करके भी असम्भव के विषय में जो उन्होंने अपनी ओर से टिप्पणी की है[1], वह भी इस सन्दर्भ में सर्वथा उल्लेखनीय है।

उदाहरणों के विषय में उनका दावा है कि ये सभी स्वयम् उनके द्वारा रचित हैं[2] परन्तु राजमित्रम् काव्य से तथा शाखवर्धन आदि के पद्यों को भी दो एक स्थलों पर उद्धृत किया ही गया है। दोषों के विवेचन के अनन्तर उनका प्रणतिनिवेदन[3] पाण्डित्य के साथ-२ उनकी विनम्रता को भी प्रकट करता है। पूर्वाचार्यों के मतों का अपरे, अन्ये, केचित् आदि विशेषणों के साथ बहुधा तथा कहीं २ पाणिनि आदि आचार्यों का नामोल्लेख आदरपूर्वक हुआ है परन्तु कहीं २ उनसे विमति प्रकट करते हुए उनकी भाषा उग्र भी हो गयी है। यथा वैदर्भ और गौड मार्ग के प्रसङ्ग में भेदवादियों के लिए अमेधा पद का प्रयोग[4], एक स्थल पर विरोधी आचार्यों के लिए 'मन्दाः' विशेषण का प्रयोग[5] तथा काव्य में अनौचित्य की निर्बाध योजना करने वालों तथा उनके ऐसे प्रयोगों को आँखें बन्द कर स्वीकार कर लेने वाले भावकों को व्यंग्य में नमस्कार करना[6] इसके उदाहरण हैं।

अपनी गहन तर्कणा और निष्पक्ष विवेचना के कारण एक लम्बे समय तक वे काव्यशास्त्र की परम्परा में उपजीव्य बने रहे। आनन्दवर्धन (ध्व०आ०) अभिनवगुप्त (ध्व०लो०), मम्मट (का०प्र०), अप्पय दीक्षित (चि०मी०), केशवमिश्र (अ०शे०), नमिसाधु (का०अ०(रु०) टीका), प्रतिहारेन्दुराज (ल०वृ०), प्रेमचन्द्र तर्कवागीश (का०अ० टीका), मल्लिनाथ (भ०का० टीका) रुय्यक (अ०स०), वल्लभ (सु०अ०), विश्वेश्वर पण्डित (अ०कौ०), हेमचन्द्र (का०अनु०) आदि आचार्यों ने इन्हें स्थल स्थल पर उद्धृत किया है। उद्भट

---

१. तत्रासम्भविनार्थेन कः कुर्यादुपमां कृती।
को नाम वह्निनौपम्यं कुर्वीत शशलक्ष्मणः॥ वही २/४६

२. स्वयं कृतैरेव निदर्शनैरियं मया प्रकल्पिता खलु वागलङ्कृतिः। वही २/९६

३. न दूषणायायमुदाहृतो विधिर्न चाभिमानेन किमु प्रतीयते।
कृतात्मनां तत्त्वदृशाञ्च मादृशो जनोऽभिसन्धिं क इवावभोत्स्यते॥
—वही ४/५०

४. गतानुगतिकन्यायान्नानाख्येयममेधसाम्। का०अ० १/३२

५. मन्दाः साङ्केतिकानर्थान्मन्यन्ते पारमार्थिकान्। वही ६/१४

६. नमोऽस्तु तेभ्यो विद्वद्भ्यो येऽभिप्रायं कवेरिमम्।
शास्त्रलोकापवास्यैव नयन्ति नयवेदिनः॥ वही ४/४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ने, जो कश्मीरी सम्प्रदाय के दिग्गज आचार्य माने जाते हैं, का०अ० पर 'भामह विवरण' नाम की एक टीका लिखी थी, जिसके कुछ अंश रोम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित भी हुए हैं। भामह की प्रामाणिकता इसी बात से सिद्ध होती है कि विद्याधर ने मङ्गलाचरण में इन्हें ही नमस्कार किया है।[1]

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध तक हमारे पास इस आचार्य का परिचय केवल नाम अथवा यत्र तत्र प्रकीर्ण उद्धरणों के रूप में ही उपलब्ध था। सर्वप्रथम जैकव ने काव्यालङ्कार की प्रति देखी और इसे भामह के साथ जोड़ा। पुनः श्री के०वी० पाठक, नरसिंहाचार आदि ने इस ओर ध्यान भी आकर्षित कराया परन्तु वास्तव में यह कार्य तभी प्रकाश में आया जब श्री के०पी० त्रिवेदी ने १९०९ ई० में प्रतापरुद्रीय के परिशिष्ट के साथ इसे प्रकाशित करवाया। इसके अनन्तर चार संस्करण और निकले—(१) १९२७ में अंग्रेजी अनुवाद तथा नोट्स के साथ श्री पी०वी० नागनाथ शास्त्री का, (२) अंग्रेजी भूमिका के साथ पं० बटुकनाथ शर्मा और बलदेव उपाध्याय का १९२८ में (३) १९३४ में प्रो० डी०टी० ताताचार्य का उद्यानवृत्ति नामक स्वरचित संस्कृत टीका के साथ तथा (४) हिन्दी भूमिका और टिप्पणियों के साथ प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा का।

प्रस्तुत संस्करण तैयार करते समय श्री पी०वी० नागनाथ शास्त्री, पं० बलदेव उपाध्याय तथा प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा के संस्करणों का उपयोग किया गया है। जहाँ कहीं पाठ के विषय में मतभेद था वहाँ इन तीनों संस्करणों में प्राप्त पाठों को देखकर जो अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, उसे ऊपर रखकर अन्य पाठों को पादटिप्पणी में दे दिया गया है। भामह को उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों ने स्थल-२ पर उद्धृत किया है। उनके पाठों को भी पर्याप्त आदर दिया गया है। भामहविवरण का जो संस्करण रोम से प्रकाशित हुआ है वह भी आदरणीय अग्रजकल्प डॉ० देवदत्त कौशिक के सौजन्य से देखने को मिल गया है। विद्वान् सम्पादक को जिस खण्डित रूप में पाण्डुलिपि प्राप्त हुई उससे का०अ० के अध्ययन में बहुत अधिक सहायता नहीं मिलती तथापि कुछ स्थलों पर महत्त्वपूर्ण सङ्केत भी अवश्य मिल जाते हैं, यथा १/९ में स्वीकृत 'काव्यहेतवः' पाठ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जिस रूप में भी वह मिला है, उसे देवनागरी में अनूदित करके परिशिष्ट के रूप में दे दिया गया है। कुछ कणिकायें तो ऐसी हैं जिनका एक अथवा आधा शब्द या कुछ अक्षर ही स्पष्ट हैं।

---

१. पूर्वेभ्यो भामहादिभ्यः सादरं विहिताञ्जलिः। एकावली १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

टीका के अध्ययन से सम्बन्धित उनका कोई उपयोग नहीं हो सकता। उन्हें छोड़ दिया गया है। कुछ स्थलों पर सम्पादक ने टिप्पणी में महत्त्वपूर्ण सङ्केत दे दिये हैं। इनमें से कुछ उदाहृत पद्यों को ढूँढकर पंक्तियों को पूरा करना महत्त्वपूर्ण है। कुल मिलाकर कुछ ऐसे सङ्केत मिल जाते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि टीकाकार ने यहाँ किस प्रकार के प्रश्न उठाये थे परन्तु एकाध स्थल को छोड़कर हम आज भी दुर्भाग्य से उस शास्त्रार्थ से वञ्चित हैं। फिर भी, निराश नहीं हैं। अस्तु।

ग्रन्थलेखन की प्रेरणा से लेकर इस रूप में उसकी प्रस्तुति तक जिन ग्रन्थों, उनके लेखकों, विद्वानों, गुरुजनों, स्निग्धमित्रों और अन्त में प्रकाशक का सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रो० व्रजमोहन चतुर्वेदी मेरे श्रद्धेय गुरुवर हैं। आशीर्वाद के रूप में जो अनुग्रह उन्होंने मुझपर किया है, मैं उसके लिए सदैव उनका अधमर्ण हूँ।

रमण कुमार शर्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयवस्तु

१/१. मङ्गलाचरण । ग्रन्थनिर्माण की प्रतिज्ञा ।
१/२. काव्य के प्रयोजन ।
१/३—८. कवित्व की प्रशंसा ।
१/९—१०. कवित्व के संस्कारक—व्युत्पत्ति और अभ्यास ।
१/११—१२. कुकाव्य की निन्दा ।
१/१३—१५. आलङ्कारिकों के दो वर्ग—भाववादी तथा सौशब्द्यवादी । भामह का स्वमत ।
१/१६—१८. काव्य का लक्षण तथा भेद—गद्य और पद्य (छन्द की स्थिति के आधार पर), संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश (भाषा के आधार पर), देवादि के चरित का वर्णन, कल्पित वस्तु, कलाश्रित और शास्त्राश्रित (वर्ण्यविषय के आधार पर), सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, आख्यायिका, कथा और अनिबद्ध (विधा के आधार पर) ।
१/१९—२३. सर्गबन्ध का वर्णन ।
१/२४. अभिनेयार्थ ।
१/२५—२९. आख्यायिका और कथा ।
१/३०. अनिबद्ध काव्य ।
१/३१—३६. काव्य के वैदर्भ तथा गौड मार्गों में भेद का खण्डन ।
१/३७. नेयार्थ आदि छह काव्यदोषों का उद्देश ।
१/३८—३९. नेयार्थ दोष का लक्षण और उदाहरण ।
१/४०. क्लिष्ट और अन्यार्थ दोषों के लक्षण और उदाहरण ।
१/४१. अवाचक दोष का उदाहरण और लक्षण ।
१/४२—४४. अयुक्तिमत् दोष का विवेचन ।
१/४५—४६. गूढशब्दाभिधान दोष तथा उसका उदाहरण ।
१/४७. श्रुतिदुष्ट आदि चार काव्यदोषों का उद्देश ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१/४८—४९. उन्नीस श्रुतिदुष्ट शब्दों का परिगणन।
१/५०—५१. अर्थदुष्ट दोष का लक्षण और उदाहरण।
१/५२. कल्पनादुष्ट दोष का लक्षण तथा उदाहरण।
१/५३. श्रुतिकष्ट दोष के उदाहरण
१/५४—५९. दोषों की अदोषता तथा उसके दो आधार—सन्निवेशवैशिष्ट्य और आश्रयसौन्दर्य एवम् उनके उदाहरण।
२/१—३. माधुर्य, प्रसाद तथा ओज का विवेचन।
२/४. अनुप्रास आदि पाँच अलङ्कारों का परिगणन।
२/५—८. अनुप्रास का लक्षण, उदाहरण, ग्राम्यानुप्रास, लाटानुप्रास।
२/९—२०. यमक के पाँच भेद—आदियमक, मध्यान्तयमक, पादाभ्यास, आवली तथा समस्तपाद। सन्दष्टक, समुद्ग आदि का उपर्युक्त पाँच भेदों में अन्तर्भाव। पाँच भेदों के उदाहरण। यमक का लक्षण। यमक की विशेषताएँ। यमकव्यपदेशिनी प्रहेलिका तथा उसकी हेयता।
२/२१—२४. रूपक का लक्षण। उसके दो भेद—समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ति तथा उनके उदाहरण।
२/२५—२९. दीपक का स्वरूप। उसके तीन भेद—आदि, मध्य और अन्तदीपक तथा उनके उदाहरण।
२/३०—३८. उपमा का लक्षण। उसके दो भेद—यथा, इव आदि शब्दों के द्वारा वाच्य तथा समासाभिहिता। प्रतिवस्तूपमा। उपमा के निन्दा, प्रशंसा तथा आचिख्यासा भेदों का उपमा के सामान्य गुणों में ही समाहार। मालोपमादि में वैशिष्ट्य का अभाव।
२/३९—६५. उपमा के सात दोष—हीनता (४१-४६), असम्भव (४७-५१) लिङ्गभेद, वचनभेद, विपर्यय (५२-५७), उपमान का आधिक्य (५७-६२) तथा उपमान का असादृश्य (६३-६४)।
२/६६—६७. आक्षेपादि छह अलङ्कारों का परिगणन। दो प्रकार के आक्षेप—वक्ष्यमाणविषय और उक्तविषय तथा पाँच अन्य अलङ्कारों के कथन की प्रतिज्ञा।
२/६८—७०. आक्षेप का लक्षण तथा दोनों भेदों के उदाहरण।
२/७१—७४. अर्थान्तरन्यास का लक्षण तथा उदाहरण।
२/७५—७६. व्यतिरेक का लक्षण तथा उदाहरण।
२/७७—७८. विभावना का लक्षण तथा उदाहरण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२/७९—८०. समासोक्ति का लक्षण तथा उदाहरण ।
२/८१—८४. अतिशयोक्ति का लक्षण तथा उदाहरण ।
२/८५. वक्रोक्ति की महिमा ।
२/८६. हेतु, सूक्ष्म और लेश का खण्डन ।
२/८७. 'गतोऽस्तमर्कः' इत्यादि वाक्यों का अकाव्यत्व ।
२/८८. यथासंख्य और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों का उद्देश ।
२/८९—९०. यथासंख्य का लक्षण तथा उदाहरण ।
२/९१—९२. उत्प्रेक्षा का लक्षण तथा उदाहरण ।
२/९३—९४. स्वभावोक्ति का स्वरूप तथा उदाहरण ।
२/९५—९६. प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार ।
३/१—४ प्रेयः आदि २३ अलङ्कारों का परिगणन ।
३/५. प्रेयः का उदाहरण ।
३/६. रसवत् का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/७. ऊर्जस्वी का उदाहरण ।
३/८—९. पर्यायोक्त का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/१०. समाहित का उदाहरण ।
३/११—१३. उदात्त का उदाहरण, इसका अन्य प्रकार तथा उसका उदाहरण ।
३/१४—२०. श्लिष्ट अलङ्कार का लक्षण, रूपक से उसका भेद, तीन भेद—सहोक्ति, उपमा और हेतुमूलक तथा उनके उदाहरण ।
३/२१—२२. अपह्नुति का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/२३—२४. विशेषोक्ति का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/२५—२६. विरोध का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/२७—२८. तुल्ययोगिता का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/२९—३०. अप्रस्तुतप्रशंसा का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/३१—३२. व्याजस्तुति का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/३३—३४. निदर्शना का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/३५—३६. उपमारूपक का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/३७—३८. उपमेयोपमा का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/३९—४०. सहोक्ति का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/४१—४२. परिवृत्ति का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/४३—४४. ससन्देह का लक्षण तथा उदाहरण ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३/४५—४६. अनन्वय का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/४७—४८. उत्प्रेक्षावयव का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/४९—५२. संसृष्टि का लक्षण तथा उदाहरण ।
३/५३—५४. भाविक का स्वरूप ।
३/५५—५७. आशी: के दो भेद—सौहार्द तथा अविरोध के वर्णनों में । उनके उदाहरण ।
३/५८. प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार ।
४/१—२. अपार्थ आदि अठारह काव्यदोषों का परिगणन ।
४/३—८. अपार्थ दोष का विवेचन । पद और वाक्य के लक्षण। अपार्थ का लक्षण तथा उदाहरण ।
४/९—११. व्यर्थ का लक्षण तथा उदाहरण ।
४/१२—१६. एकार्थ अथवा पुनरुक्त का लक्षण । शब्दपुनरुक्त की स्थूलता । परिस्थितिविशेष में इस दोष का परिहार । अर्थपुनरुक्त का उदाहरण।
४/१७—१९. ससंशय का लक्षण तथा उदाहरण ।
४/२०—२१. अपक्रम का लक्षण तथा उदाहरण ।
४/२२—२३. शब्दहीन का लक्षण तथा उदाहरण।
४/२४—२५. यतिभ्रष्ट का लक्षण तथा उदाहरण।
४/२६—२७. भिन्नवृत्त का लक्षण तथा उदाहरण।
४/२८. विसन्धि का उदाहरण।
४/२९—३०. देशविरोधी का लक्षण तथा उदाहरण।
४/३१—३२. कालविरोधी का लक्षण तथा उदाहरण ।
४/३३—३५. कलाविरोधी का लक्षण तथा उदाहरण।
४/३६—३९. लोकविरोधी का लक्षण तथा उदाहरण।
४/३९—४७. न्यायविरोधी का लक्षण तथा उदाहरण।
४/४८—५०. आगमविरोधी का लक्षण तथा उदाहरण।
४/५१. प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार ।
५/१—४. प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहीन दोषों के निरूपण का प्रयोजन । काव्य के विषय की व्यापकता ।
५/५. प्रमाण की उपयोगिता । दो भेद—प्रत्यक्ष और अनुमान तथा उनके विषय—व्यक्ति और जाति ।
५/६—१०. बौद्धों का प्रत्यक्षलक्षण तथा उसमें चार दोषों का प्रदर्शन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५/११. अनुमान के दो लक्षण ।
५/१२. प्रतिज्ञा का लक्षण।
५/१३. प्रतिज्ञा के तदर्थविरोधिनी आदि छह दोषों का परिगणन ।
५/१४. तदर्थविरोधिनी प्रतिज्ञा का लक्षण तथा उदाहरण।
५/१५—१६. हेतुविरोधिनी का उदाहरण।
५/१७. स्वसिद्धान्तविरोधिनी का लक्षण तथा उदाहरण।
५/१८. सर्वागमविरोधिनी का लक्षण तथा उदाहरण ।
५/१९. प्रसिद्धधर्मा का लक्षण तथा उदाहरण ।
५/२०. प्रत्यक्षबाधिनी का लक्षण तथा उदाहरण ।
५/२१. हेतु के तीन लक्षण—स्वपक्ष परपक्ष दोनों में स्वीकृत, सपक्ष में सिद्ध और विपक्ष से व्यावृत्त तथा हेत्वाभास ।
५/२२—२३. पूर्व कारिका में प्रयुक्त 'सन्द्वयोः' पद की व्याख्या ।
५/२४. इक्कीसवीं कारिका में प्रयुक्त 'सदृशे सिद्धः' पद की व्याख्या ।
५/२५. इक्कीसवीं कारिका में प्रयुक्त 'व्यावृत्तस्तद्विपक्षतः' पद की व्याख्या ।
५/२६. दृष्टान्तहीन दोष ।
५/२७. दृष्टान्त का एक अन्य लक्षण ।
५/२८. अनुमानविषयक दोषों का उपसंहार ।
५/२९. जाति का लक्षण । अनावश्यक विस्तार के भय से उसके प्रपञ्च का अवर्णन ।
५/३०—३४. प्रथम उनतीस कारिकाओं में निरूपित विषय शास्त्रगर्भ काव्यों की दृष्टि से उपयोगी । वक्ष्यमाण लौकिक काव्यों के न्याय से उसके भेद का सोदाहरण प्रतिपादन ।
५/३५. प्रतिज्ञा का लक्षण तथा उसके चार भेद—धर्मार्थकामकोपाश्रया।
५/३६. धर्मनिबन्धनी प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/३७. अर्थसंश्रया प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/३८. कामाश्रया प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/३९. कोपमूलक प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/४०. चारों प्रतिज्ञाओं का काव्य में यथासम्भव निर्वाह, अन्यत्र प्रतिज्ञा का निषेध ।
५/४१. धर्मवाधिनी प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/४२. अर्थबाधिनी प्रतिज्ञा का उदाहरण ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५/४३. कामबाधिनी प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/४४. कोपबाधिनी प्रतिज्ञा का उदाहरण ।
५/४५—४६. आर्थी प्रतिज्ञा का लक्षण तथा उदाहरण ।
५/४७—४९. काव्य में भी त्रिलक्षण हेतु ही मान्य । अन्वयव्यतिरेक का लोक में उपयोग । काव्यहेतु के उदाहरण ।
५/५०—५१. समानाधिकरण्य से भी हेतु का प्रयोग । अन्वयव्यतिरेक के विना भी अर्थबोध । सामानाधिकरण्य हेतु का उदाहरण ।
५/५२—५४. काव्यहेतु के तीन दोष—अज्ञान, संशयज्ञान और विपर्ययजनक तथा उनके उदाहरण ।
५/५५—५७. दृष्टान्त का लक्षण तथा उपमा से उसके भेद का सोदाहरण प्रतिपादन ।
५/५८—६०. शुद्ध दृष्टान्त का लक्षण तथा उदाहरण ।
५/६१. काव्य में दोष की त्याज्यता ।
५/६२—६३. काव्य के तीन दोष—अहृद्य, असुनिर्मेद तथा अपेशल (कपित्थवत्) तथा उनके उदाहरण ।
५/६४—६६. वाणी के अलङ्करण के लिए शब्द और अर्थ में वक्रता की आवश्यकता । केवल समृद्धि के वर्णनों से ही काव्य में सौन्दर्य नहीं आता ।
५/६७—६८. काव्य में अनावश्यक विस्तार से पैदा होने वाले दोष—विरुद्ध पद, असुन्दर अर्थ, पूरक और कठिन शब्द । इसका उदाहरण ।
५/६९. प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार ।
६/१—६. व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता ।
६/७. शब्द का एक लक्षण तथा उसमें विप्रतिपत्ति का प्रदर्शन ।
६/८—१० शब्द के विषय में मीमांसकों का मत तथा वैयाकरणों की सरणि में उसका खण्डन ।
६/११—१२. वैयाकरणों के स्फोटवाद का खण्डन ।
६/१३—१४. शब्द के विषय में नैयायिकों का मत तथा उसका खण्डन ।
६/१५. विषय का समाहार ।
६/१६— १९. बौद्धों के अपोहवाद का खण्डन ।
६/२०. शब्द के स्वरूप की दुर्गमता ।
६/२१, शब्द के चार भेद—द्रव्य, क्रिया, जाति और गुण । परमतानुरोध से यदृच्छा का भी उल्लेख ।
६/२२—२३. वस्तुतः शब्दप्रयोग का विषयक्षेत्र असीम परन्तु यहाँ केवल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वक्रोक्तिप्रवण कवियों के लिए काव्योपयोगी शब्दों का विवेचन ही प्रासङ्गिक ।

६/२४. लोक में अप्रयुक्त शब्दों के प्रयोग का निषेध ।

६/२५. वाणी के चार दोषों—दुर्बोध, अपेशल, ग्राम्य तथा अपार्थक का सोदाहरण कथन ।

६/२६. धातु के अनेकार्थक होने के कारण उसके अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग का निषेध ।

६/२७. केवल शिष्टप्रोक्त होने के कारण असाधु शब्दों, पाणिनिव्यतिरिक्त व्याकरण से साधित शब्दों तथा वैदिक शब्दों के प्रयोग का निषेध ।

६/२८. क्रमागत, श्रुतिसुखद तथा सार्थक शब्दों का प्रयोग । वर्गसौन्दर्य का अन्य अलङ्कारों से अतिशय ।

६/२९—३०. वार्तिक से सिद्ध अथवा भाष्य से प्रमाणित शब्द का प्रयोग, योगविभागनिष्पन्न शब्दों का नहीं । वार्तिक से सिद्ध प्रयोग का उदाहरण ।

६/३१. सङ्क्रम की स्थिति में गुणवृद्धिपक्ष के प्रयोग का सोदाहरण प्रतिपादन ।

६/३२. 'पुमान्स्त्रिया' सूत्र से अवशिष्ट शब्द का प्रयोग ।

६/३३. 'पटयति' आदि के समान 'णाविष्ठवत्' इस इष्टि से 'क्रशयति' आदि प्रयोगों की ग्राह्यता ।

६/३४. पञ्चमी व्यतिरिक्त अदन्त अव्ययीभाव का प्रयोग ।

६/३५. रात्रि अथवा दिन के वाचक तिष्ठद्गु तथा वहद्गु शब्दों का प्रयोग ।

६/३६—३७. तृच् तथा अक के साथ षष्ठीसमास के निषेध का सोदाहरण प्रतिपादन ।

६/३८. द्विगु का स्त्रीलिङ्ग में तथा तत्पुरुष का नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग ग्राह्य ।

६/३९. मृशादिगणीय शब्दों के हल् का लोप ग्राह्य । इसका उदाहरण ।

६/४०. क्विप् प्रत्यय में ३/१ तथा ६/२ के प्रयोग ग्राह्य । इनके उदाहरण ।

६/४१. असन्त पदों के ३/१ तथा ६/३ के प्रयोग ग्राह्य । इनके उदाहरण ।

६/४२—४३. क्वसु प्रत्ययान्त शब्दों का पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग इष्ट । इनके उदाहरण ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६/४४—४५. शवल आदि शब्दों से णिच् के प्रयोग की चारुता का सोदाहरण कथन।

६/४६—४८. णिजन्त प्रयोगों की चारुता तथा ताच्छील्यविषयक णिनि के तीनों लिङ्गों में प्रयोग का सोदाहरण निरूपण। ताच्छील्य में तृन् आदि सभी ग्राह्य परन्तु युच्, कुरच्, वरच् और इष्णुच् विशेष रूप से इष्ट।

६/४९. क्तिन्नन्त प्रयोगों की तथा √जागृ से श और अ प्रत्ययों की इष्टता।

६/५०. √आस् से युच् का तथा कर्तृविषयक ल्युट् का प्रयोग ग्राह्य।

६/५१. अणन्त शब्दों से स्त्रीत्व में ङीप् तथा महारजन शब्द से अञ् तथा लाक्षा और रोचना से ठक् प्रत्यय इष्ट हैं।

६/५२. कुमुद से इमतुप् तथा 'तेन जयति' इस अर्थ में अक्ष और शास्त्र शब्दों से ठक् प्रत्यय इष्ट हैं।

६/५३. हितप्रकरण में सर्व शब्द से ण तथा इष्टि के द्वारा छ प्रत्ययों का प्रयोग इष्ट है।

६/५४. इमनिच् प्रत्यय के प्रयोग इष्ट हैं। ईयसुन् प्रत्यय विशेष रूप से ग्राह्य है। इनके उदाहरण।

६/५५. प्रमाणबोधक द्वयसच् तथा दघ्नच् प्रत्यय इष्ट हैं। इनके उदाहरण।

६/५६. मत्वर्थ में ज्योत्स्ना आदि शब्द ग्राह्य। फल और वर्ह शब्दों से इनच् प्रत्यय भी इष्ट है।

६/५७. इनि और ठन् प्रत्ययों का प्रयोग ग्राह्य है, विशेषतः मेखला, माला और माया शब्दों से।

६/५८. अभ्यस्त झि से अत् आदेश होकर 'दधति' आदि तथा इट् से युक्त रोदिति, स्वपिति आदि सार्वधातुक भी इष्ट हैं।

६/५९. अभ्यस्त, घुसंज्ञक तथा √भृञ् से शतृ का प्रयोग इष्ट। घुसंज्ञक (डुधाञ्) तथा √भृञ् के उदाहरण।

६/६०. तवर्ग और शकार की सन्धि का निषेध।

६/६१. एक ही स्थान पर ओकारबहुल शब्दों के प्रयोग का निषेध। 'पढति' शब्द के अतिरिक्त हकार के पूर्ववर्णसावर्ण्य का निषेध।

६/६२—६३. प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार।

६/६४. ग्रन्थ का उपसंहार।

६/६५—६६. काव्यालङ्कार के छह परिच्छेदों के विषय का स्थूल रूप से निर्देश।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथमः परिच्छेदः

प्रणम्य सार्वं[1] सर्वज्ञं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
काव्यालङ्कार इत्येष यथाबुद्धि विधास्ते ।१।

सर्वहितकारी और सर्वज्ञ (शिव) को मन, वाणी और शरीर के कर्मों से प्रणाम करके बुद्धि के अनुसार 'काव्यालङ्कार' इस (ग्रन्थ) का प्रणयन किया जायेगा ।

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च[2] साधुकाव्यनिबन्धनम्[3] ।२।

सत्काव्य का निर्माण धर्मार्थकाममोक्ष तथा कलाओं में नैपुण्य और आनन्द एवं कीर्ति प्रदान करता है ।

अधनस्येव दातृत्वं क्लीबस्येवास्त्रकौशलम् ।
अज्ञस्येव प्रगल्भत्वमकवेः शास्त्रवेदनम् ।३।

अकवि का शास्त्रज्ञान निर्धन के दान, नपुंसक के अस्त्रकौशल और मूर्ख की प्रगल्भता के समान है ।

विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना ।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता ।४।

विनय के विना लक्ष्मी कैसी ? चन्द्रमा के विना रात्रि कैसी ? सत्कवित्व के विना वाणी में विदग्धता कैसी ?

गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः ।५।

गुरु के उपदेश से शास्त्र का अध्ययन तो जड़मति भी कर सकते हैं परन्तु काव्यत्व तो कभी, किसी प्रतिभावान् को ही प्राप्त होता है ।

उपेयुषामपि दिवं सन्निबन्धविधायिनाम् ।
आस्त एव निरातङ्कं कान्तं काव्यमयं वपुः ।६।

---

१. शर्वं ।
२. करोति कीर्तिं प्रीतिं च ।
३. निषेवणम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तम (काव्य का) निबन्धन करने वालों के दिवङ्गत हो जाने पर भी (उनका) रमणीय काव्यमय शरीर निर्भय ही रहता है।

रुणद्धि रोदसी चास्य यावत्कीर्त्तिरनश्वरी।
तावत्किलायमध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम् ।७।

और जब तक उसका स्थायी यश आकाश और पृथ्वी में व्याप्त रहता है तब तक वह पुण्यकर्मा दैव पद पर अधिष्ठित होता है।

अतोऽभिवाञ्छता कीर्त्तिं स्थेयसीमा भुवः स्थितेः।
यत्नो विदितवेद्येन विधेयः काव्यलक्षणः[1] ।८।

अतः भूमण्डल की स्थितिपर्यन्त कीर्त्ति को चाहने वाले के द्वारा ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान प्राप्त कर काव्य (निर्माण) सम्बन्धी यत्न किया जाना चाहिए।

शब्दश्छन्दोऽभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्याः काव्यहेतवः[2] ।९।

(अभिधेय, लक्ष्य आदि) अर्थ, इतिहासाश्रित (उपजीव्य) कथायें, लोक (व्यवहार), तर्कशास्त्र और कलाएं काव्य के हेतु माने जाने चाहिएं।

शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम्।
विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः ।१०।

शब्द और अर्थ का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर, काव्यज्ञों की उपासना कर और अन्य (कवियों द्वारा) निबद्ध (काव्यों) को देखकर काव्यक्रिया में प्रवृत्त होना चाहिए।

सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते ।११।

दोष से युक्त एक पद का भी प्रयोग सर्वथा नहीं होना चाहिए। दोषयुक्त काव्य के द्वारा (कवि) कुपुत्रवान् के समान निन्दित होता है।

नाऽकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ।१२।

अकवित्व अधर्म, व्याधि अथवा दण्ड के लिए नहीं होता परन्तु कुकवित्व को विद्वान् साक्षात् मरण ही कहते हैं।

---

१. काव्यलक्ष्मणि।
२. काव्यवैखरी, काव्यतैर्वंशी, काव्ययैर्वंशी. काव्यगैर्वंशी, काव्ययैरपि, काव्य-गैरमी, काव्ययैर्ह्यमी, काव्यगैर्ह्यमी।
३. अकवित्वम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः ।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानन[1]म् ।१३।

अन्य (आचार्यों) के द्वारा उस (काव्य) के रूपकादि अलङ्कार (वर्ग) का बहुधा कथन हुआ है । (क्योंकि) सुन्दर भी कान्ता का मुख आभूषणों के विना शोभित नहीं होता ।

रूपकादिमलङ्कारं बाह्यमाक्षते परे ।
सुपां तिङाञ्च व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम् ।१४।

दूसरे (आचार्य) रूपकादि अलङ्कार को वाह्य कहते हैं । सुप् और तिङ् की व्युत्पत्ति (शब्दों का अलङ्कार) (के रूप में वे) वाणी का अलङ्करण चाहते हैं ।

तदेतदाहुः 'सौशब्द्यं' नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी[2] ।
शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्टं द्वयं तु नः ।१५।

वह 'सौशब्द्य' है, अर्थालङ्कृति ऐसी नहीं होती । हमें तो शब्द और अर्थ के अलङ्करण के भेद से ये दोनों इष्ट हैं ।

शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यञ्च तद्द्विधा ।
संस्कृतं प्राकृतञ्चान्य[3]दपभ्रंश इति त्रिधा ।१६।

शब्द और अर्थ का साहित्य काव्य है और वह गद्य और पद्य दो प्रकार का है और उसके अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश—इस प्रकार (भाषा की दृष्टि से) तीन प्रकार का है ।

वृत्तं[3] देवादिचरितशंसि[4] चोत्पाद्यवस्तु च ।
कलाशास्त्राश्रयञ्चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः ।१७।

देवादिचरित के वर्णन का इतिवृत्त और कल्पित कथावस्तु तथा कला-श्रित और शास्त्राश्रित के रूप में पुनः (विषय की दृष्टि से) चार प्रकार से विभाजित किया जाता है ।

सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे ।
अनिबद्धञ्च काव्यादि[5] तत्पुनः पञ्चधोच्यते ।१८।

---

१. वनितामुखम् ।
२. चैतद ।
३. वृत्तदेवादि ।
४. चरिताशंसि ।
५. काव्यज्ञैः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाकाव्य, नाटक तथा आख्यायिका, कथा और अनिबद्ध के रूप में वह काव्य (विधा की दृष्टि से) पुनः पांच प्रकार का कहा जाता है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं महताञ्च महच्च यत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यञ्च सालङ्कारं सदाश्रयम् ।१९।

सर्गबन्ध महाकाव्य (कहलाता) है जो महान् (चरित्रों से सम्पन्न) और (आकार में) बड़ा होता है। अग्राम्य शब्दों से युक्त, अर्थ (सौष्ठव) से सम्पन्न, अलङ्कारों से युक्त, और सत्पुरुष (के वृत्त पर) आश्रित होता है।

मन्त्रदूत[1]प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।२०।

जो मन्त्रणा, दूतप्रयोग, (सेना) प्रयाण, युद्ध, नायक के अभ्युदय और पांच सन्धियों से युक्त, अनतिव्याख्येय तथा वैभव (पूर्ण वर्णनों से) सम्पन्न (होता है)।

चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत् ।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ।२१।

चतुर्वर्ग का अभिधायक होने पर भी प्रधानतया अर्थ का उपदेश करने वाला, लोकस्वभाव तथा पृथक् २ समस्त रसों से युक्त (होता है)।

नायकं[1] प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः ।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया ।२२।

पहले वंश बल और विद्या आदि (गुणों) से (प्रति) नायक को प्रस्तुत कर दूसरे का उत्कर्ष बतलाने की अभिलाषा से उसका वध नहीं कहना चाहिए।

यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते ।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणं स्तवे[2] ।२३।

यदि काव्यशरीर में उसकी व्यापकता वाञ्छित नहीं है और वह अभ्युदय का भाजन नहीं होता तो आदि में प्रशंसामात्र के लिए उसका ग्रहण व्यर्थ है।

नाटकं[3] द्विपदीशम्यारासकस्कन्धकादि यत् ।
उक्तं तदभिनेयार्थमुक्तोऽन्यैस्तस्य विस्तरः ।२४।

द्विपदी, शम्या, रासक, स्कन्धक आदि जो नाटक (हैं) उसे अभिनेयार्थ कहा गया है। अन्य (आचार्यों) के द्वारा उसका विस्तार कहा गया है।

---

१. मन्त्रि।
२. ग्रहणस्तवौ।
३. नारकं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृता[1]नाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना ।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता ।२५।

संस्कृत (में निबद्ध), अक्लिष्ट और श्रव्य शब्द, अर्थ और समास वाले गद्य से युक्त, उदात्त विषया, उच्छ्वासों से युक्त, (रचना) आख्यायिका मानी गयी है ।

वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्[2] ।
वक्त्रञ्चापरवक्त्रञ्च काले भाव्यर्थशंसि[3] च ।२६ ।

उसमें नायक के द्वारा स्वघटितवृत्त का आख्यान किया जाता है । (वह) यथावसर भावी घटनाओं के सूचक वक्त्र और अपरवक्त्र (छन्दों से युक्त होती है) ।

कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः[4] कैश्चिदङ्किता ।
कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयान्विता ।२७।

कवि के (विशिष्ट) अभिप्राय से प्रयुक्त कुछ कथनों से युक्त (तथा) कन्याहरण, सङ्ग्राम, विप्रलम्भ (और) अभ्युदय से समन्वित होती है ।

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि ।
संस्कृताऽसंस्कृता[5] चेष्टा कथापभ्रंशभाक्तथा[6] ।२८।

वक्त्र और अपरवक्त्र से रहित, उच्छ्वासों से रहित, संस्कृत, प्राकृत, तथा अपभ्रंश से युक्त (रचना) कथा (के रूप में) इष्ट है ।

अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते ।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः[7] ।२९।

उसमें स्वचरित अन्यों के द्वारा कहा जाता है, नायक के द्वारा नहीं । कुलीन व्यक्ति अपने गुणों का प्रकाशन कैसे करे ?

अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोकमात्रादि तत्पुनः ।
युक्तं वक्त्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते ।३०।

---

१. प्रकृता, प्रसृता ।
२. स्वचेष्टितम् ।
३. भाव्यार्थ ।
४. कथानैः, अङ्कनैः ।
५. संस्कृते संस्कृता चेष्टा, संस्कृतं संस्कृता चेष्टा ।
६. तदा ।
७. कथञ्चन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गाथा (प्राकृत पद्य) और श्लोकमात्र अनिबद्ध हैं। वक्रोक्ति अथवा स्वभावोक्ति से युक्त (होने पर) ये सभी (भेद काव्य के रूप में) इष्ट हैं।

वैदर्भ[1]मन्यदस्तीति मन्यन्ते सुधियोऽपरे।
तदेव च किल ज्यायः सदर्थमपि नापरम् ।३१।

दूसरे विद्वान् मानते हैं कि वैदर्भ अन्य (काव्यमार्ग) है (गौड अन्य) और वही श्रेष्ठ है। अर्थसौष्ठव से युक्त भी दूसरा (गौड) नहीं।

गौडीयमिदमेतत्तु वैदर्भमिति किं पृथक्।
गतानुगतिकन्यायान्नाख्येयमेधसाम् ।३२।

यह गौड है और वह वैदर्भ है, इनमें क्या पार्थक्य है? (हाँ) गतानुगतिक न्याय से यह बुद्धिहीनों के लिए अनाख्येय नहीं है।

ननु चाश्मकवंशादि[2] वैदर्भमिति कथ्यते।
कामं तथास्तु प्रायेण संज्ञेच्छातो विधीयते ।३३।

तो फिर अश्मकवंशादि वैदर्भ कहे जाते हैं। भले ही ऐसा हो। प्रायः संज्ञायें यादृच्छिक बनायी जाती हैं।

अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजु कोमलम्।
भिन्नं गेयमिवेदं तु केवलं श्रुतिपेशलम् ।३४।

अपुष्टार्थक, वक्रोक्ति से हीन, केवल प्रसाद, सरलता और सौकुमार्य से युक्त यह मार्ग तो (सत्काव्य से) भिन्न सङ्गीत के समान केवल श्रुतिमधुर ही है।

अलङ्कारवदग्राम्यमर्थ्यं न्याय्यमनाकुलम्।
गौडीयमपि साधीयो वैदर्भमिति नान्यथा ।३५।

अलङ्कार से युक्त, अग्राम्य, अर्थ (सौष्ठव) से युक्त, न्यायसङ्गत और अक्लिष्ट गौडीय मार्ग भी श्रेष्ठ है, अन्यथा वैदर्भ भी (श्रेष्ठ) नहीं।

न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्।
वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृतिः ।३६।

केवल 'नितान्त सुन्दर' आदि मात्र (कहने) से वाणी में चारुता नहीं आती। अर्थ तथा शब्द की वक्रता में ही वाणी का अलङ्करण इष्ट है।

---

१. वेदर्भ।

२. चास्मकवंशादि, कवंश्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नेयार्थं क्लिष्टमन्यार्थमवाचकमयुक्तिमत्
गूढ़शब्दाभिधानञ्च कवयो न प्रयुञ्जते ।३७।

कवि नेयार्थ, क्लिष्ट, अन्यार्थक, अवाचक, अयुक्तिमत् और गूढ़शब्दाभिधान दोषों का का प्रयोग नहीं करते ।

नेयार्थं नीयते यत्रतो यस्यार्थः कृतिभिर्बलात् ।
शब्दन्यायानुपाख्ढ़ः कथञ्चित्स्वाभिसन्धिना ।३८।

शब्दन्याय (भाषाशास्त्र) के प्रतिकूल, किसी प्रकार से (मुश्किल से) अपने अभिप्राय के अनुसार विद्वानों के द्वारा बलपूर्वक जिस पद का उपयुक्त अर्थ निकाला जाता है (वहाँ) नेयार्थ दोष होता है ।

मायेव भद्रेति यथा सा चासाध्वी प्रकल्पना ।
वेणुदाके[1]रिति च तां न[2] यन्ति वचनाद् विना ।३९।

जैसे 'मायेव भद्रा' यह सदोष रचना है । वेणुदाकि के प्रसङ्ग के विना उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

क्लिष्टं व्यवहितं विद्यादन्यार्थं[3] विगमे यथा ।
विजहु्स्तस्य ताः शोकं क्रीडायां विकृतञ्च तत् ।४०।

(अर्थाविगम में) व्यवधान 'क्लिष्ट' दोष है (और) (अभिमत अर्थ का) अभाव 'अन्यार्थ' दोष है । जैसे 'विजहु्स्तस्य ताः शोकम्'(में क्लिष्ट दोष है) और 'क्रीडायां विकृतं तत्' (में अन्यार्थ दोष है) ।

हिमापहामित्रधरैर्व्याप्तं व्योमेत्यवाचकम् ।[4]
साक्षादरूढ़ं वाच्येऽर्थे नाभिधानं प्रतीयते ।४१।

हिम का हनन करने वाले (अग्नि) के अमित्र (जल) को धारण करने वालों (मेघों) के द्वारा व्योम व्याप्त है, यह 'अवाचक' है । वाच्य अर्थ में साक्षात् अप्रसिद्ध शब्द (से अर्थ) ज्ञात नहीं होता ।

अयुक्तिमद् यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दवः ।
तथा[5] भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः ।४२।

---

१. वेणुदारेः ।
२. नि ।
३. अन्यार्थं विगमे, वित्तेरन्यार्थं ।
४. व्योमाभिनन्दति ।
५. तत्राभ्रमरहारीत ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे मेघ, मरुत्, इन्दु, भ्रमर, हारीत, चक्रवाक तथा शुक आदि दूत हों (यह) 'अयुक्तिमत्' दोष है।

अवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूरदेशविचारिणः।
कथं दूत्यं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते।४१।

वाणीविहीन, अव्यक्त वाणी वाले और दूर देश में विचरण करने वाले दौत्य कैसे सम्पादित कर सकते है। यह (वर्णन) युक्ति से युक्त नहीं हैं।

यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते।
तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते।४४।

और यदि उत्कण्ठा के कारण (कोई) उन्मत्त के समान जो कुछ बोलता है तो भले ही ऐसा हो जाये। बुद्धिमानों के द्वारा भी (ऐसा) प्रयोग किया गया है।

गूढ़शब्दाभिधानञ्च न प्रयोज्यं कथञ्चन।
सुधियामपि नैवेदमुपकाराय कल्पते।४५।

गूढ़ शब्दाभिधान का किसी प्रकार से भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे विद्वानों का भी उपकार नहीं हो सकता।

असितर्त्तितु गद्रिच्छि[1]त्स्वःक्षितां[2] पतिरद्विदृक्।
अमिद्भिः[3] शुभ्रदृग्दृष्टै[4]र्द्विषो जेघ्नीयिषीष्ट वः।४६।

अग्नि के पुत्र, पर्वत का छेदन करने वाले, देवताओं के स्वामी, जिनके दो नेत्र नहीं हैं, (ऐसे भगवान् कार्त्तिकेय) रुक्ष (तथा) शुभ्र नेत्रों के अवलोकन से तुम्हारे शत्रुओं को नष्ट करें।

श्रुतिदुष्टार्थदुष्टे च कल्पनादुष्टमित्यपि।
श्रुतिकष्टं तथैवाहुर्वाचां दोषं चतुर्विधम्।४७।

श्रुतिदुष्ट, अर्थदुष्ट और कल्पनादुष्ट तथा च श्रुतिकष्ट, ये वाणी के चार प्रकार के दोष कहे गये हैं।

विड्वर्चोविष्ठितक्लिन्नच्छिन्न[5]वान्तप्रवृत्तयः।
प्रचारर्धर्षितोद्गारविसर्गहृदयन्त्रिताः[6]।४८।

---

१. भुगद्रिक्षित्।
२. स्वः कितां।
३. अमीभिः।
४. शुभ्रदृग्वृष्टैः।
५. छिन्नक्लिन्न।
६. हृदयं तृताः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विट्, वर्चस्, विष्ठित, क्लिन्न, छिन्न, वान्त, प्रवृत्ति, प्रचार, घर्षित, उद्-गार, विसर्ग, हद, यन्त्रित—

हिरण्यरेताः सम्बाधः पेलवोपस्थिताण्डजाः ।
वाक्काटवादयश्चेति श्रुतिदुष्टा मताः गिरः ।४९।

हिरण्यरेतस्, सम्बाध, पेलव, उपस्थित, अण्डज और वाक्काटव ये शब्द श्रुतिदुष्ट माने गये हैं ।

अर्थदुष्टं पुनर्ज्ञेयं यत्रोक्ते जायते मतिः ।
असभ्यवस्तुविषया शब्दैस्तद्वाचिभिर्यथा ।५०।

जहाँ तत्तद् (अर्थों के) वाचक शब्दों के द्वारा असभ्य अर्थविषयक मति उत्पन्न होती है, तो 'अर्थदुष्ट' जाना जाये । जैसे—

हन्तुमेव प्रवृत्तस्य स्तब्धस्य[1] विवरैषिणः ।
पतनं जायतेवश्यं कृच्छ्रेण पुनरुन्नतिः ।५१।

ताडन करने के लिए प्रवृत्त, स्तब्ध, छिद्रान्वेषी का पतन अवश्य होता है । फिर उन्नति कठिनाई से ही होती है ।

पदद्वयस्य सन्धाने यदनिष्टं प्रकल्पते ।[2]
तदाहुः कल्पनादुष्टं स शौर्याभरणो यथा ।५२।

दो पदों के मेल (सहस्थान) में जो अनिष्ट (अर्थ की) कल्पना होती है, उसे (आचार्यों ने) 'कल्पनादुष्ट' कहा है जैसे—'शौर्याभरण' । (यहाँ 'याभ' पद मैथुन का वाचक है) ।

यथाजिह्लददित्यादि श्रुतिकष्टञ्च तद्विदुः ।
न तदिच्छन्ति कृतिनो गण्डमप्यपरे किल ।५३।

जिस प्रकार 'अजिह्लदत्' आदि पद 'श्रुतिकष्ट' दोषयुक्त जाने गये हैं । विद्वान् ऐसा (पद) नहीं चाहते । दूसरे 'गण्ड' को भी (श्रुतिकष्ट मानते हैं) ।

सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते ।
नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव[3] ।५४।

सन्निवेश की विशेषता के कारण तो दुष्ट पद भी (श्वेत पुष्प की) मालाओं के अन्तराल में निबद्ध नील पलाश के समान शोभित होता है ।

किञ्चिदाश्रयसौन्दर्याद्धते शोभामसाध्वपि ।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ।५५।

---

१. स्तम्भस्य ।
२. प्रगल्भते, प्रकल्प्यते ।
३. स्रजामपि ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आश्रय के सौन्दर्य के कारण कोई असाधु (पद) भी कान्ता के नेत्रों में डाले गये मलिन अञ्जन के समान शोभा को धारण करता है।

आपाण्डुगण्डमेतत्ते वदनं वनजेक्षणे।
सङ्गमात्पाण्डुशब्दस्य गण्डः साधु यथोदितः[1] ।५६।

'आपाण्डुगण्डमेतत्ते वदनं वनजेक्षणे' (इस पद्यांश में) 'पाण्डु' शब्द के सान्निध्य के कारण 'गण्ड' शब्द जिस प्रकार साधु कहा गया है।

अनयान्यदपि ज्ञेयं दिशा युक्तमसाध्वपि।
यथा विक्लिन्नगण्डानां करिणां मदवारिभिः[2] ।५७।

इस प्रकार से (साधुसन्निविष्ट) अन्य सदोष पद भी उपयुक्त जाना जाये। जैसे 'विक्लिन्नगण्डानां करिणां मदवारिभिः' (इस उदाहरण में विक्लिन्न और गण्ड पदों का प्रयोग)।

मदक्लिन्नकपोलानां द्विरदानां चतुश्शती।
यथा तद्वदसाधीयः साधीयश्च प्रयोजयेत् ।५८।

'मदक्लिन्नकपोलानां द्विरदानाञ्चतुश्शती' (यह) जिस प्रकार (युक्त प्रतीत होता है) उसी प्रकार असाधु और साधु शब्दों का सुन्दर संनिवेशपूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

एतद्ग्राह्यं सुरभि कुसुमं[3] ग्राम्यमेतन्निधेयं।
धत्ते शोभां विरचितमिदं स्थानमस्यैतदस्य ।।
मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालां।
योज्यं काव्येष्ववहितधिया तद्वदेवाभिधानम् ।५९।

'यह सुगन्धित पुष्प ग्रहण करने योग्य है, यह ग्राम्य (अतः) त्याज्य है, यह प्रयुक्त होने पर शोभा को धारण करता है, इस इसका यह (यह) उपयुक्त स्थान है' (इस प्रकार) जैसे माली अच्छी प्रकार माला को बनाता है, उसी प्रकार सावधान होकर काव्य में शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

---

१. यथोदितम्।
२. मुदवारिभिः।
३. पुष्पं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

माधुर्यमभिवाञ्छन्तः प्रसादञ्च सुमेधसः ।
समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुञ्जते ।।१।।

सुकवि (काव्य में) माधुर्य और प्रसाद चाहते हुए बहुत अधिक समास वाले पदों का प्रयोग नहीं करते ।

केचिदोजोऽभिधित्सन्तः समस्यन्ति बहून्यपि ।
यथा मन्दारकुसुमरेणुपिञ्जरितालका ।।२।।

कुछ (कवि) ओज का आधान करना चाहते हुए बहुत अधिक समास भी करते हैं । जैसे—'मन्दारकुसुमरेणुपिञ्जरितालका' (मन्दार के फूलों के पराग से पिञ्जरित अलकों वाली) ।

श्रव्यं[1] नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते ।
आविद्वदङ्गनाबालप्रतीतार्थं प्रसादवत् ।।३।।

सुश्रव्य तथा बहुत अधिक समासों से रहित काव्य मधुर कहा जाता है । विद्वान् से लेकर स्त्री और बालक तक को जिसका अर्थ स्पष्ट हो जाए, वह (काव्य) प्रसाद से युक्त होता है ।

अनुप्रासः सयमको रूपक दीपकोपमे ।
इति वाचामलङ्काराः पञ्चैवान्यैरुदाहृताः ।।४।।

यमक सहित अनुप्रास, रूपक, दीपक और उपमा । अन्य (आचार्यों) के द्वारा ये पाँच ही वाणी के अलङ्कार कहे गये हैं ।

सरूप[2]वर्णविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते ।
किन्तया चिन्तया कान्ते नितान्तेति यथोदितम् ।।५।।

---

१. श्राव्यं ।
२. स्वरूप ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समान रूप वाले वर्णों का विन्यास अनुप्रास कहा जाता है। जैसे—'किन्तया चिन्तया कान्ते नितान्तेति' (कान्ते! तूं उस चिन्ता से नितान्त खिन्न क्यों हैं), इस प्रकार कहा जाता है।

ग्राम्यानुप्रासमन्यत्तु मन्यन्ते सुधियोऽपरे।
स लोलमालानीला[1]लिकुलाकुलगलो बलः ॥६॥

दूसरे विद्वान् अन्य ग्राम्यानुप्रास को भी मानते हैं। जैसे—'स लोलमाला-नीलालिकुलाकुलगलो बलः' (वह बलराम चञ्चल माला पर (मण्डराने वाले) नील भ्रमरों से व्याकुल कण्ठ वाला है)।

नानार्थवन्तोऽनुप्रासा न चाप्यसदृशाक्षराः।
युक्त्यानया मध्यमया जायन्ते चारवो गिरः ॥७॥

भिन्न अर्थ वाले परन्तु समान अक्षरों वाले (वन्व) अनुप्रास कहे जाते हैं। इस मध्यम मार्ग से वाणियों में चारुता उत्पन्न होती है।

लाटीयमप्यनुप्रासमिहेच्छन्त्यपरे यथा।
दृष्टिं दृष्टिसुखां धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोदितः ॥८॥

दूसरे विद्वान् यहाँ लाटीयानुप्रास को भी चाहते हैं। उसका उदाहरण है—'दृष्टिं दृष्टिसुखां धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोदितः' (चन्द्रमुख! चन्द्र उदित हो गया है, (अतः) दृष्टि को सुख देने वाली दृष्टि धारण करो)।

आदिमध्यान्तयमकं पादाभ्यासं तथावली।
समस्तपादयमकमित्येतत्पञ्चधोच्यते ॥९॥

यमक आदि, मध्यान्त, पादाभ्यास, आवली तथा समस्तपाद, यह पाँच प्रकार का कहा जाता है।

सन्दष्टकसमुद्गादेरत्रैवान्तर्गतिर्मता।
आदौ मध्यान्तयोर्वा स्यादिति पञ्चैव तद्यथा ॥१०॥

सन्दष्टक, समुद्ग आदि का इन्हीं में अन्तर्भाव अभिमत है। (वे) आदि में अथवा मध्यान्त में (ही) हो सकते हैं, इस प्रकार वह पाँच प्रकार का ही है। जैसे—

साधुना साधुना तेन राजता राजता भृता।
सहितं सहितं कर्तुं सङ्गतं सङ्गतं जनम् ॥११॥

---

१. लीना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने (जनों को) हितयुक्त (करने के लिए) (तथा) अभ्यागतों को (कल्याण से) सङ्गत करने के लिए देदीप्यमान उस श्रेष्ठ पुरुष के द्वारा अब वह राजत्व ग्रहण किया गया है। (आदि यमक)।

साधुः संसारादबिभ्यदसमादसारात्
कृत्वा क्लेशान्तं याति वर्त्म प्रशान्तम्।
जातिं व्याधीनां दुर्दमाना[1]मधीनां
वाञ्छञ्ज्यायस्त्वं[2] छिन्धि मुक्तानयस्त्वम् ॥१२॥

साधु इस असार संसार से डरता हुआ क्लेशों का अन्त करके शान्ति के मार्ग को प्राप्त करता है। उत्कर्ष को चाहते हुए तुम (भी) अनीति को छोड़कर दुर्दम्य व्याधियों के वशवर्ती जन्म (बन्धन) को काटो। (मध्यान्त यमक)।

न ते धीर्धीर भोगेषु रमणीयेषु सङ्गता।
मुनीनपि हरन्त्येते रमणी येषु सङ्गता ॥१३॥

हे धीर! तुम्हारी बुद्धि रमणीय भोगों में सङ्गत नहीं है। जिनमें स्त्री सङ्गत होती है, वे (भोग) मुनियों को भी हर लेते हैं। (पादाभ्यास)।

सितासिताक्षीं सुपयोधराधरां
सुसम्मदां व्यक्तमदां ललामदाम्।
घनाघनानीलघनाघनालकाम्
प्रियामिमामुत्सुकयन्ति यन्ति च ॥१४॥

श्वेत और श्याम नेत्रों वाली, सुन्दर पयोधर और अधरों वाली, आनन्द से युक्त, मद को प्रकट करती हुई, सौन्दर्य से उल्लसित, मेघ के समान घने और काले बालों वाली (मेरी) इस प्रेमिका को बरसते हुए मेघ उत्कण्ठित करते हैं और चले जाते हैं। (आवली)।

अमी नृपा दत्तसमग्रशासनाः
कदाचिदप्यप्रतिबद्धशासनाः।
कृतागसां मार्गभिदाञ्च शासनाः
पितृक्रमाध्यासिततादृशासनाः ॥१५॥

---

१. दुर्दयानाम्।
२. वाञ्छन्त्या यस्त्वं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे राजा अखण्डित शासन वाले हैं। उनका आदेश कभी भी विघटित नहीं होता। वे अपराधियों और मर्यादा तोड़ने वालों के (कठोर) अनुशासक हैं। ऐसा शासन उन्होंने पितृक्रम से प्राप्त किया है। (समस्तपादयमक)।

अनन्तरैकान्तरयोरेवं पादान्तयोरपि।
कृत्स्नञ्च सर्वपादेषु दुष्कृतं साधु तादृशम् ॥१६॥

अन्तर रहित, उसी प्रकार एक (पाद) के अन्तर वाले पादों में भी तथा उसी प्रकार सभी पादों में सम्पूर्ण (पाद की आवृत्ति भी यमक है) (परन्तु) इस प्रकार के (बन्धों का) सुन्दर होना कठिन है।

तुल्यश्रुतीनां भिन्नानामभिधेयैः परस्परम्।
वर्णानां यः पुनर्वादो यमकं तन्निगद्यते[1]।१७।

अर्थों में परस्पर भिन्न तथा श्रवण में समान वर्णों की जो आवृत्ति है, वह यमक कही जाती है।

प्रतीतशब्दमोजस्वि सुश्लिष्टपदसन्धि च।
प्रसादि स्वभिधानञ्च यमकं कृतिनां मतम्।१८।

प्रसिद्ध शब्दों वाला, ओज से युक्त, सुश्लिष्ट पदसन्धियों वाला, प्रसाद-युक्त,सुखोच्चार्य (बन्ध ही) कविओं का अभिमत यमक है।

नानाधात्वर्थगम्भीरा यमकव्यपदेशिनी।
प्रहेलिका साह्युदिता रामशर्माच्युतोत्तरे।१९।

नाना धात्वर्थों से गूढ़, यमक नाम (मात्र) वाली, (रचना) वस्तुतः प्रहेलिका है जो रामशर्मा के 'अच्युतोत्तर' (नामक काव्य) में निबद्ध है।

काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः।२०।

यदि वे काव्य भी शास्त्र के समान व्याख्यागम्य हो गये तो विद्वानों के लिए ही आनन्दकर होंगे, सुकुमार मति वाले तो मारे गये।

उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते[2]।
गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः।२१।

गुणों की समता को देखकर उपमान के साथ जो उपमेय का तादात्म्य निरूपित किया जाता है, उसे रूपक कहते हैं।

---

१. निरूप्यते।
२. तुल्यत्वम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समस्तवस्तुविषयमेकदेशविवर्त्ति च ।
द्विधा रूपकमुद्दिष्टमेतत्तच्चोच्यते यथा ।९२।

समस्तवस्तुविषयक और एकदेशविवर्ति, यह दो प्रकार का रूपक कहा गया है । वह कहा जाता है, जैसे—

शीकरा[1]म्भो मदसृजस्तुङ्गा जलददन्तिनः ।
निर्यान्तो मदयन्तीमे[2] शक्रकामुकवारणाः ।२३।

शीकर रूपी मद जल बरसाने वाले विशाल मेघरूपी हाथी, इन्द्रधनुष रूपी वारण पहने निकलते हुए (कामुकों को) मत्त बना रहे हैं । (समस्तवस्तु विषय)

तडिद्वलयकक्ष्याणां बलाकामालभारिणाम् ।
पयोमुचां ध्वनिर्धीरो दुनोति मम तां प्रियाम्[3] ।२४।

विद्युद्वलय रूपी कक्ष्या[4] तथा बकपंक्ति रूपी माला को धारण करने वाले बादलों की गम्भीर ध्वनि मेरी प्रिया को व्यथित कर रही है। (एकदेशविवर्त्ति)।

आदिमध्यान्तविषयं त्रिधा दीपकमिष्यते ।
एकस्यैव व्यवस्थत्वादिति तद्भिद्यते त्रिधा ।२५।

आदि, मध्य और अन्त विषय वाला तीन प्रकार का दीपक इष्ट है । एक के ही तीन प्रकार से अवस्थित होने के कारण वह तीन प्रकार से भिन्न हो जाता है ।

अमूनि कुर्वतेऽन्वर्थामस्याख्यामर्थदीपनात् ।
त्रिभिर्निदर्शनैश्चेदं त्रिधा निर्दिश्यते यथा ।२६।

वे सब अर्थ के दीपक होने के कारण इसके नाम को सार्थक करते हैं और तीन प्रकार का यह तीन उदाहरणों से निर्दिष्ट किया जा रहा है । जैसे—

मदो जनयति प्रीतिं साऽनङ्गः[5] मानभङ्गुरम् ।
स प्रिया[6]सङ्गमोत्कण्ठां सासह्यां[7] मनसश्चुचम् ।२७।

---

१. सीकराम्भो ।
२. मण्डयन्तीमे ।
३. कारणम्, काननम् ।
४. हाथी बाँधने की जंजीर ।
५. प्रीतिमानन्दं सानलां ।
६. यत्प्रिया ।
७. कण्ठामसह्यां ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मद प्रीति को उत्पन्न करता है, वह (प्रीति) मान को मिटाने वाले काम को, वह (काम) प्रिया से मिलने की उत्कण्ठा को और वह (उत्सुकता) मन के असह्य शोक को।

मालिनीरंशुकभृतः स्त्रियोऽलङ्कुरुते मधुः।
हारीतशुकवाचश्च भूधराणामुपत्यकाः।२८।

वसन्त मालिनी और अंशुक धारण करने वाली स्त्रियों, हारीत, शुक की वाणियों तथा पर्वत की उपत्यकाओं को (भी) अलङ्कृत कर रहा है।

चीरी[1]मतीररण्यानीः सरितश्शुष्यदम्भसः।
प्रवासिनाञ्च चेतांसि शुचिरन्तं निनीषति।२९।

आषाढ़ झीङ्गुरों वाले बड़े जङ्गलों, सूखते हुए जल वाली नदियों और प्रवासियों के हृदयों का अन्त करना चाहता है।

विरुद्धेनोपमानेन देशकाल क्रियादिभिः।
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन[2] सोपमा।३०।

देश, काल, क्रिया आदि के द्वारा भिन्न उपमान के साथ उपमेय का जो गुणलेश (आंशिक गुणों) से साम्य है, वह उपमा है।

यथेव शब्दौ सादृश्यमाहतुर्व्यतिरेकिणोः।
दूर्वाकाण्डमिव श्याम[3] तन्वी श्यामलता[4] यथा।३१।

यथा और इव शब्द व्यतिरेकी पदार्थों में सादृश्य के वाचक होते हैं, जैसे— दूर्वाकाण्ड के समान श्याम, श्यामलता जैसी दुबलीपतली।

विना यथेव शब्दाभ्यां समासाभिहिता परा।
यथा कमलपत्राक्षी शशाङ्कवदनेति च।३२।

यथा और इव शब्दों के विना अन्य (उपमा भेद) 'समासाभिहिता' है। जसे, कमलदलनयनी और चन्द्रमुखी।

वतिनापि क्रियासाम्यं तद्वदेवाभिधीयते।
द्विजातिवदधीतेऽसौ गुरुवच्चानुशास्ति नः।३३।

---

१. चरी।
२. गुणमात्रेण।
३. श्यामा।
४. श्यामलता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसी प्रकार 'वति' (प्रत्यय) के द्वारा भी क्रियासाम्य अभिहित होता है। (जैसे) वह द्विजाति के समान पढ़ता है और हमें गुरु के समान अनुशासित करता है।

समानवस्तुन्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यत।
यथेव नभिधानेऽपि गुणसाम्यप्रतीतितः।३४।

यथा, इव शब्दों का (साक्षात्) अभिधान न होने पर भी समान वस्तु के न्यास से गुणसाम्य की प्रतीति होने पर प्रतिवस्तूपमा कही जाती है।

साधुसाधारणत्वादिर्गुणोऽत्र व्यतिरिच्यते।
स साम्यमापादयति विरोधेऽपि तयोर्यथा।३५।

साधुसाधारणत्वादि (अग्रिम उदाहरण में प्रोक्त) गुण यहाँ भिन्न हैं परन्तु उनके विरुद्ध होने पर भी वह (कोई गुण विशेष) (दोनों वाक्यों में परस्पर) साम्य का प्रतिपादन करता है।

कियन्तः सन्ति गुणिनः साधुसाधारणश्रियः।
स्वादुपाकफलानम्राः कियन्तो वाध्वशाखिनः।३६।

साधुओं के साथ समान रूप से (अपनी) सम्पत्ति का भोग करने वाले गुणी कितने हैं अथवा मार्गस्थित कितने वृक्ष स्वादिष्ट और पके हुए फलों से झुके हुए हैं।

यदुक्तं त्रिप्रकारत्वं तस्याः कैश्चिन्महात्मभिः।
निन्दाप्रशंसाचिख्यासाभेदादत्राभिधीयते।।३७।।

जो कुछ महात्माओं के द्वारा निन्दा, प्रशंसा और आचिख्यासा के भेद से उसके तीन प्रकार कहे गये हैं, (उनके विषय में) यहाँ कहा जा रहा है।

सामान्यगुणनिर्देशात्त्रयमप्युदितं ननु।
मालोपमादिः सर्वोऽपि न ज्यायान्विस्तरो मुधा।।३८।।

(उपमा के) सामान्य गुणों के निर्देश से निश्चय ही ये तीनों भी कह दिये गये हैं। मालोपमादि सब भेद भी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, (अतः) विस्तार व्यर्थ है।

हीनताऽसम्भवोलिङ्गवचोभेदो विपर्ययः।
उपमानाधिकत्वञ्च तेनासदृशतापि च।।३९।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हीनता, असम्भव, लिङ्गभेद, वचनभेद, विपर्यय, उपमानाधिकत्व तथा उपमानामदृशता ।

त एत उपमादोषाः सप्त मेधाविनोदिताः ।
सोदाहरणलक्ष्माणो वर्ण्यन्तेऽत्र च ते पृथक् ।।४०।।

ये सात उपमादोप मेधावी के द्वारा कहे गये हैं । वे यहाँ लक्षण और उदाहरण सहित पृथक् पृथक् वर्णित किये जाते हैं ।

स मारुता कम्पितपीतवासा
विभ्रत्सलीलं शशिभासमब्जम् ।
यदुप्रवीरः प्रगृहीतशार्ङ्गः
सेन्द्रायुधो मेघ इवाबभासे ।।४१।।

वायु से चञ्चल पीताम्बर पहने, चन्द्र के समान उज्ज्वलवर्ण शङ्ख धारण किये, शार्ङ्ग धनुष लिये वह युद्धवीर इन्द्रधनुप से युक्त मेघ के समान भासित हो रहा है । (हीनता) ।

शक्रचापग्रहादत्र दर्शितं किल कार्मुकम् ।
वासश्शङ्खानुपादानाद्धीनमित्यभिधीयते ।।४२।।

इन्द्रधनुष के ग्रहण से यहाँ शार्ङ्गधनुष तो वर्णित हो गया (परन्तु) वस्त्र और शङ्ख के लिए (उपमान का) उपादान न होने से यह हीन (दोष से युक्त) कहा जाता है ।

सर्वं सर्वेण सारूप्यं नास्ति भावस्य कस्यचित् ।
यथोपपत्ति कृतिभिरुपमासु प्रयुज्यते ।।४३।।

किसी भी सम्पूर्ण वस्तु की (दूसरी) सम्पूर्ण (वस्तु) से सरूपता नहीं होती (फिर भी) यथासामर्थ्य कवियों के द्वारा यह (सारूप्य) उपमाओं में प्रयुक्त होता है ।

अखण्डमण्डलः क्वेन्दुः क्व कान्ताननमद्युति ।
यत्किञ्चित्कान्तिसामान्याच्छशिनैवोपमीयते ।।४४।।

सम्पूर्ण मण्डल वाला चन्द्रमा कहाँ और द्युतिहीन कान्ता का मुख कहाँ । लेशमात्र कान्ति के सामान्य होने के कारण (मुख) चन्द्रमा से ही उपमित होता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किञ्च[1] काव्यानि नेयानि लक्षणेन महात्मनाम् ।
दृष्टं वा सर्वसारूप्यं राजमित्रे यथोदितम् ॥४५॥

पुनरपि महाकवियों के काव्य (किसी न किसी) लक्षण के अनुसार संघटित कर लिए जाने चाहिएं। अथवा सम्पूर्ण सादृश्य भी देखा (ही) गया है, जैसा राजमित्र में वर्णित है—

सूर्यांशुसम्मीलितलोचनेषु
दीनेषु पद्मानिलनिर्मदेषु ।
साध्व्यः स्वगेहेष्विव भर्तृहीनाः
केका विनेशुः[2] शिखिनां मुखेषु ॥४६॥

सूर्य की किरणों से बन्द नेत्रों वाले, कमलों की वायु से मदरहित, दीन मयूरों के मुखों में केका ध्वनियां अपने घर में पतिविहीन सतियों की तरह छिप गयीं।

निष्पेतुरास्यादिव तस्य दीप्ताः
शरा धनुर्मण्डलमध्यभाजः ।
जाज्वल्यमाना इव वारिधाराः
दिनार्द्धभाजः परिवेषिणोऽर्कात् ॥४७॥ शाखवर्धनस्य[3]

परिवेश से घिरे हुए मध्याह्न के सूर्य से जलती हुई जलधाराओं के समान धनुर्मण्डल के मध्यवर्ती उसके मुख से दीप्त बाण निकल रहे थे। (असम्भव)।

कथं पातोऽम्बुधाराणां ज्वलन्तीनां विवस्वतः ।
असम्भवादयं युक्त्या तेनासम्भव उच्यते ॥४८॥

सूर्य से जलती हुई जल की धाराओं का पतन कैसे हो सकता है। इस प्रकार युक्ति से असम्भावित होने के कारण यह असम्भव कहा जाता है।

तत्रासम्भविनार्थेन कः कुर्यादुपमां कृती ।
को नाम वह्निनौपम्यं कुर्वीत शशलक्ष्मणः ॥४९॥

परन्तु कौन कवि (सर्वथा) असम्भव अर्थ से उपमा करेगा ? चन्द्रमा का अग्नि के साथ सादृश्य कौन वर्णित करेगा।

---

१. किञ्चित् ।
२. विनेदुः ।
३. शाखावर्धनस्य ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यस्यातिशयवानर्थः कथं सोऽसम्भवो मतः ।
इष्टश्चातिशयार्थत्वमुपमोत्प्रेक्ष्ययोर्यथा ॥५०॥

जिस (काव्य) का अर्थ अतिशय से युक्त है, वह असम्भव कैसे हो सकता है (जबकि) अर्थ का (यह) अतिशय उपमा और उत्प्रेक्षा (आदि अलङ्कारों) में (सर्वथा) इष्ट ही है। यथा—

पुञ्जीभूतमिव ध्वान्तमेष भाति मतङ्गजः ।
सरः शरत्प्रसन्नाम्भो नभःखण्डमिवोज्झितम् ॥५१॥

यह हाथी पुञ्जीभूत अन्धकार के समान विभावित होता है। शरद् ऋतु में स्वच्छ जल वाला सरोवर मानो (पृथ्वी पर) गिरा हुआ आकाश का खण्ड है।

अथ लिङ्गवचोभेदावुच्येते सविपर्ययौ ।
हीनाधिकत्वात्स द्वेधा त्रयमप्युच्यते यथा ॥५२॥

इसके अनन्तर विपर्यय सहित लिङ्गभेद और वचनभेद कहे जाते हैं। हीन और अधिक (के भेद से) वह (विपर्यय) दो प्रकार का है। (ये) तीनों वर्णित किये जाते हैं। जैसे—

अविगाह्योऽसि नारीणामनन्यमनसामपि ।
विषमोपलभिन्नोर्मिरापगेवोत्तितीर्षतः ॥५३॥

तुम अनन्यहृदय नारियों के लिए भी, तितीर्षु के लिए विषम पत्थरों से भिन्न लहरों वाली नदी के समान, अप्रवेश्य हो। (लिङ्गभेद तथा वचनभेद)।

क्वचिदग्रे प्रसरता क्वचिदापत्य[1] निघ्नता ।
शुनेव सारङ्गकुलं त्वया भिन्नं द्विषां बलम् ॥५४॥

कभी आगे बढ़ते हुए, कभी मुड़कर प्रहार करते हुए तुम्हारे द्वारा शत्रुओं की सेना कुत्ते के द्वारा मृगसमूह के समान भिन्न कर दी गयी। (हीन विपर्यय)।

अयं पद्मासनासीनश्चक्रवाको विराजते ।
युगादौ भगवान् ब्रह्मा विनिर्मित्सुरिव प्रजाः ॥५५॥

पद्मासन पर आसीन यह चक्रवाक युग के आदि में प्रजाओं की सृष्टि करने के इच्छुक भगवान् ब्रह्मा के समान विराजित हो रहा है। (अधिक विपर्यय)।

---

१. आपद्य ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ननूपमीयते पाणिः कमलेन विकासिना ।
अधरो विद्रूमच्छेद भासा बिम्बफलेन च ।५६।

किन्तु हाथ विकसित कमल से (तथा) अधर विद्रूम खण्ड की प्रभा से तथा बिम्बफल से उपमित होता ही है ।

उच्यते काममस्तीदं किन्तु स्त्रीपुंसयोरयम् ।
विधिर्नाभिमतोऽन्यैस्तु त्रयाणामपि नेष्यते ।५७।

वेशक कहा जाता है । किन्तु यह विधान स्त्री और पुरुष में अभिमत नहीं है। अन्य (आचार्यों) द्वारा तो तीनों लिङ्गों में ही यह (लिङ्ग-भेद) इष्ट नहीं है ।

स पीतवासाः प्रगृहीतशार्ङ्गो
मनोज्ञभीमं वपुराप कृष्णः ।
शतह्रदेन्द्रायुधवान्निशायां
संसृज्यमानश्शशिनेव मेघः ।५८। रामशर्मणः

वह कृष्ण पीताम्बर पहने हुए तथा शार्ङ्ग ग्रहण किये हुए, रात में चन्द्रमा से संयुक्त मेघ के समान सुन्दर तथा भयंकर शरीर को धारण कर रहा था। (उपमानाधिकत्व) ।

शशिनो ग्रहणादेतदाधिक्यं किल न ह्ययम् ।
निर्दिष्ट उपमेयेऽर्थे वाच्यो वा जलजोऽत्र तु ।५९।

चन्द्रमा के ग्रहण से यह आधिक्य है क्योंकि इस (का समान धर्म) उपमेय अर्थ में निर्दिष्ट नहीं हुआ अथवा यहाँ भी शङ्ख का ग्रहण होना चाहिए ।

न सर्वसारूप्यमिति विस्तरेणोदितो विधिः ।
अभिप्रायात्कवेर्नात्र विधेया जलजे मतिः ।६०।

सर्वात्मना सादृश्य नहीं हो सकता, यह विधि विस्तार से कही गयी है । (अतः) कवि के अभिप्राय से (भी) शङ्ख की प्रतीति नहीं माननी चाहिए ।

आधिक्यमुपमानानां न्याय्यं नाधिकता भवेत् ।
गोक्षीरकुन्दहलिनां विशुद्ध्या सदृशं यशः ।६१।

उपमानों का न्यायसङ्गत आधिक्य उपमानाधिकता (दोष) नहीं है । जैसे यश की विशुद्धि गोदुग्ध, कुन्द (पुष्प), बलराम (आदि) के समान (कही जाती) है ।

एकेनैवोपमानेन[1] ननु सादृश्यमुच्यते ।
उक्तार्थस्य प्रयोगो हि गुरुमर्थं न पुष्यति ।६२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(यद्यपि) सादृश्य तो एक ही उपमान से उपपन्न हो जाता है और उक्त अर्थ का ही पुनः प्रयोग अर्थगौरव को पुष्ट नहीं करता।

वनेऽथ तस्मिन्वनितानुयायिनः
प्रवृत्तदानार्द्रकटा मतङ्गजाः।
विचित्रवर्हाभरणाश्च बर्हिणो
बभुर्दिवीवामलविग्रहा ग्रहाः।६३।

उस वन में (अपनी) वनिताओं का अनुगमन करने वाले, प्रवृत्त दानजल से गीले कपोलों वाले हाथी (तथा) विविध वर्णों वाले पुच्छों से शोभित मयूर आकाश में स्वच्छ ग्रहों के समान चमक रहे थे।

ग्रहैरपि गजादीनां यदि सादृश्यमुच्यते।
तथापि तेषां तैरस्ति कान्तिर्वाप्युग्रतापि वा।६४।

यदि ग्रहों से भी गजादि का सादृश्य कहा जाता है तो उन (ग्रहों) की उन (गजों व मयूरों) के समान कान्ति अथवा उग्रता भी है?

इत्युक्त उपमाभेदो वक्ष्यते चापरः पुनः।
उपमादेरलङ्काराद् विशेषोऽन्योऽभिधीयते।६५।

इस प्रकार उपमा का भेद (विस्तार) कहा गया, अन्य फिर कहा जाएगा। (अब) उपमादि अलङ्कार से भिन्न अलङ्कार (वर्ग) कहा जाएगा।

आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना।
समासातिशयोक्ती च षडलङ्कृतयोऽपराः।६६।

आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति और अतिशयोक्ति ये छः अन्य अलङ्कार हैं।

वक्ष्यमाणोक्तविषयस्तत्राक्षेपो द्विधा मतः।
एकरूपतया शेषा निर्देक्ष्यन्ते यथाक्रमम्।६७।

उनमें भी वक्ष्यमाण और उक्त विषय, (इस प्रकार) आक्षेप दो प्रकार का अभिमत है। शेष एक ही रूप वाले हैं। (अब) ये क्रमशः निर्दिष्ट किये जाएंगे।

प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया।
आक्षेप[२] इति तं सन्तः शंसन्ति द्विविधं यथा[३]।६८।

---

१. एतेनैवोपमानेन।
२. आक्षेपमिति।
३. वक्ष्यमाणोक्त विषयः स आक्षेपो द्विधा मत,। द्विविधो यथा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष (अर्थ) का अभिधान करने की इच्छा से जो इष्ट अर्थ का प्रतिषेध सा किया जाता है, विद्वान् उसे आक्षेप कहते हैं। (वह) दो प्रकार का (है)। जैसे—

अहं त्वां[1] यदि नेक्षेय क्षणमप्युत्सुका ततः।
इयदेवास्त्वतोऽन्येन[2] किमुक्तेनाप्रियेण ते[3] ।६९।

मैं यदि तुम्हें क्षणभर भी न देखूं तो उत्सुक होकर···, इतना ही रहने दें, तुम्हें इससे अधिक अप्रिय कहने से क्या (लाभ)।

स्वविक्रमाक्रान्तभुवश्चित्रं यन्न तवोद्धतिः।
को वा हेतुरलं[4] सिन्धोर्विकारकरणं प्रति ।७०।

अपने पराक्रम से पृथ्वी को आक्रान्त करने वाले भी, तुममें गर्व नहीं है, यह आश्चर्य है। अथवा कौन-सा हेतु सिन्धु में विकार उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है।

उपन्यसनमन्यस्य[5] यदर्थस्योदितादृते[6]।
ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यदि ।७१।

उक्त (अर्थ) के अतिरिक्त (परन्तु) उससे अनुगत अर्थान्तर का जो कथन है वह अर्थान्तरन्यास कहा जाना चाहिए।

परानीकानि भीमानि विविक्षोर्न तव व्यथा।
साधु वासाधु वाऽऽगामि पुंसामात्मैव शंसति ।७२।

शत्रुओं की भयङ्कर सेनाओं में प्रवेश करते हुए भी तुम्हें सङ्कोच नहीं होता। आगामी मङ्गल अथवा अमङ्गल को (श्रेष्ठ) पुरुषों का अन्तःकरण ही प्रकट कर देता है।

हि शब्देनापि हेत्वर्थप्रथनादुक्तसिद्धये।
अयमर्थान्तरन्यासः सुतरां व्यज्यते यथा ।७३।

उक्त अर्थ की सिद्धि के लिए हेत्वर्थ की प्रतीति कराने के लिए 'हि' शब्द से भी यह अर्थान्तरन्यास सुतरां व्यक्त होता है।

वहन्ति गिरयो मेघानभ्युपेतान्गुरूनपि।
गरीयानेव हि गुरून्बिर्भर्त्ति प्रणयागतान् ।७४।

---

१. त्वा।
२. इयदेवास्तु वान्येन।
३. तु।
४. सेतुरलं।
५. मर्थस्य।
६. प्रक्रान्तादपरस्य यत्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आये हुए भारी मेघों को भी पर्वत धारण करते हैं क्योंकि महान् ही प्रेमपूर्वक आये हुए महान् (व्यक्तियों) का भरण कर सकता है।

उपमानवतोऽर्थस्य यद्विशेषनिदर्शनम्।
व्यतिरेकं तमिच्छन्ति विशेषापादना[1]द्यथा ।७५।

उपमान से युक्त अर्थ (उपमेय) के उत्कर्षाधिक्य के वर्णन से जो उसके वैशिष्ट्य का निदर्शन किया जाता है उसे (विद्वान्) व्यतिरेक (के रूप में) चाहते हैं।

सितासिते पक्ष्मवती नेत्रे ते ताम्रराजिनी।
एकान्तशुभ्रश्यामे तु पुण्डरीकासितोत्पले ।७६।

अरुण वर्ण वाले और पक्ष्मों से युक्त तुम्हारे नेत्र शुभ्र और श्याम (भी) हैं (जबकि) श्वेत और नीलकमल तो केवल शुभ्र अथवा श्याम हैं।

क्रियायाः प्रतिषेधे या[2] तत्फलस्य विभावना[3]।
ज्ञेया विभावनैवासौ समाधौ सुलभे सति[4] ।७७।

(कारणरूप) क्रिया के प्रतिषेध होने पर भी उसके फल (कार्य) की उत्पत्ति विभावना समझनी चाहिए, यदि (फलोत्पत्ति) का समाधान सुलभ हो।

अपीतमत्ताः शिखिनो दिशोऽनुत्कण्ठिताकुलाः।
नीपोऽविलिप्तसुरभिरभ्रष्टकलुषं जलम् ॥७८॥

मयूर विना पिये मत्त हैं, दिशायें अनुत्कण्ठित होते हुए भी आकुल हैं, कदम्ब अलिप्त होकर भी सुरभित हैं, जल विना गिरे भी मलिन हैं।

यत्रोक्ते गम्यते[5]ऽन्योर्थस्तत्समानविशेषणः।
सा समासोक्तिरुद्दिष्टा[6] संक्षिप्तार्थतया यथा[7] ॥७९॥

जहाँ (एक वस्तु के) कथन से उसी के समान विशेषणों से युक्त अन्य पदार्थ का बोध होता है, संक्षिप्तार्थक होने के कारण, वह समासोक्ति कही जाती है।

---

१. षोत्पादना।
२. प्रतिषेधेन।
३. विभावनात्।
४. सान्वर्थं कथ्यते यथा।
५. यत्रोक्तेर्गम्यते।
६. रुदिता।
७. संक्षिप्तार्था यथा तथा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्कन्धवानृजुरव्यालः स्थिरोऽनेकमहाफलः ।
जातस्तरुरयञ्चोच्चैः पातितश्च नभस्वता ।८०।

स्कन्धों से युक्त, सीधा, व्यालरहित, स्थिर, अनेक महान् फलों से युक्त यह वृक्ष ऊंचा हुआ परन्तु वायु के द्वारा गिरा दिया गया ।

निमित्ततो वचो यत्तु[1] लोकातिक्रान्तगोचरम् ।
मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया यथा ।८१।

(किसी) निमित्त से जो वाणी की लोकातिक्रान्तगोचरता है, उस अतिशयोक्ति को अलङ्कार के रूप में माना जाता है । यथा—

स्वपुष्पच्छविहारिण्या चन्द्रभासा तिरोहिताः ।
अन्वमीयन्त भृङ्गालिवाचा सप्तच्छदद्रुमाः ।८२।

अपने पुष्पों की कान्ति को हरण करने वाली चन्द्रमा की प्रभा से तिरोहित सप्तच्छ के वृक्ष भ्रमरों के गुञ्जन से अनुमित हो रहे थे ।

अपां यदि त्वक्शिथिला च्युता स्यात्फणिनामिव ।
तदा शुक्लांशुकानि स्युरङ्गे[2]ष्वम्भसि योषिताम् ।८३।

यदि सर्पों के समान जल की त्वचा भी ढीली होकर च्युत हो जाये तो (वह) जल में (स्नान करती हुई) स्त्रियों के अङ्गों में स्थित श्वेत अंशुक हो सकती है ।

इत्येवमादिरुदिता गुणाति[3]शययोगतः ।
सर्वैवातिशयोक्तिस्तु तर्कयेत्तां यथागमम् ।८४।

इस प्रकार गुणातिशय का योग होने के कारण वह सब अतिशोक्ति कही जाती है । उसके (भेदों को) शास्त्र के अनुसार कल्पित करना चाहिए ।

सैषा सर्वैव[4] वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना[5] कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ।८५।

यह सब वक्रोक्ति ही है जिससे अर्थ का विभावन होता है । इसके लिए कवि को प्रयास करना चाहिए । इसके विना कौन-सा अलङ्कार (हो सकता) है ।

---

१. यत्र वचो ।
२. कान्यासन्नङ्गेष्व ।
३. घर्मा ।
४. सर्वत्र ।
५. कविभिः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः ।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः ।८६।

हेतु, सूक्ष्म और लेश (हमें) अलङ्कार के रूप में अभिमत नहीं हैं, समूह-मात्र के अभिधायक के वक्रोक्ति का अभिधायक न होने से ।

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः ।
इत्येवमादि किं काव्यं वार्त्तामिनां प्रचक्षते ।८७।

'सूर्य अस्त हो गया है, चन्द्र भासमान है, पक्षी निवास को जा रहे हैं,' इस प्रकार के (वाक्य) क्या काव्य हैं ? इसे (तो) वार्त्ता कहते हैं ।

यथासङ्ख्यमथोत्प्रेक्षामलङ्कारद्वयं विदुः ।
सङ्ख्यानमिति मेधावी नोत्प्रेक्षाभिहिता क्वचित्[1] ।८८।

(विद्वान्) यथासंख्य और उत्प्रेक्षा दो अलङ्कारों को (भी) मानते हैं । (प्रथम को) मेधावी ने संख्यान कहा है, उत्प्रेक्षा (उनके ग्रंथ में) कहीं नहीं कही गयी ।

भूयसामुपदिष्टानामर्थानामसधर्मणाम् ।[2]
क्रमशो योनुनिर्देशो यथासङ्ख्यं तदुच्यते ।८९।

भिन्न धर्म वाले अनेक निर्दिष्ट अर्थों का जो क्रमशः अनुनिर्देश है, वह यथा संख्य (अलङ्कार) कहा जाता है ।

पद्मेन्दुभृङ्गमातङ्गपुंस्कोकिलकलापिनः ।
वक्त्रकान्तीक्षणगतिवाणीबालैस्त्वया जिताः ।९०।

तुम्हारे द्वारा कमल, चन्द्र, भ्रमर, गज, पुम् कोकिल और मयूर (क्रमशः) मुख, कान्ति, दृष्टि, गति, वाणी और बालों के द्वारा जीत लिये गये हैं ।

अविवक्षितसामान्या[3] किञ्चिच्चोपमया सह ।
अतद्गुणक्रियायोगा[4]दुत्प्रेक्षातिशयान्विता ।९१।

सामान्य धर्म की विवक्षा न होते हुए भी किञ्चित् उपमा से युक्त, असिद्ध (जो वस्तुतः उपमेय में न हो अर्थात् कल्पित) गुण और क्रिया से युक्त तथा अतिशय से अन्वित उत्प्रेक्षा होती है ।

किंशुकव्यपदेशेन तरुमारुह्य सर्वतः ।
दग्धादग्धमरण्यान्याः पश्यतीव विभावसुः ।९२।

---

१. संख्यानमिति मेधाविनोत्प्रेक्षाऽभिहिता क्वचित् ।
२. क्रियाणामथ कर्मणाम् ।
३. सामान्यात् ।
४. रोपा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किंशुक के व्याज से वृक्ष पर चढ़कर अनल सब ओर विशाल वन के दग्ध और अदग्ध (प्रदेश) को मानों देख रहा है।

स्वभावोक्तिरलङ्कार इति केचित्प्रचक्षते।
अर्थस्य तदस्थत्वं[1] स्वभावोऽभिहितो यथा।९३।

स्वभावोक्ति अलङ्कार है, ऐसा कुछ (आचार्य) कहते हैं। अर्थ का तदवस्थ (रूप में वर्णन) स्वभाव कहा जाता है। जैसे—

आक्रोशन्नाह्वयन्नन्यानाधावन्मण्डलैर्नुदन्।[2]
गा वारयति दण्डेन डिम्भः शस्यावतारणीः।९४।

चिल्लाते हुए, दूसरों को बुलाते हुए, गोला बनाकर हांकते हुए अनाज में जाने वाली गौओं को बालक दण्ड से रोक रहा है।

समासेनोदितमिदं धाखेदायैव विस्तरः।
असङ्गृहीतमप्यन्यदभ्यूह्यमनया दिशा।९५।

यह संक्षेप में कहा गया है, विस्तार बुद्धि की थकान के लिए ही है। इस सरणि में असंगृहीत (विषय) की भी कल्पना कर लेनी चाहिए।

स्वयङ्कृतैरेव निदर्शनैरियं
मया प्रकल्पिता खलु वागलङ्कृतिः।
अतः परञ्चारुरनेकधापरो
गिरामलङ्कारविधिर्विधास्यते।९६।

अपने द्वारा ही रचित उदाहरणों से वाणी का अलङ्करण मेरे द्वारा निरूपित किया गया है। इसके अनन्तर वाणी के अन्य सुन्दर अलङ्कारों का निरूपण अनेक प्रकार से किया जायेगा।

---

१. तादवस्थ्ये च।
२. रुदन्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीयः परिच्छेदः

प्रेयो रसवदूर्जस्वि पर्यायोक्तं समाहितम् ।
द्विप्रकारमुदात्तञ्च भेदैः श्लिष्टमपि त्रिभिः ।१।

प्रेयः, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्त, समाहित, दो प्रकार का उदात्त और तीन भेदों वाला श्लेष—

अपह्नुतिं विशेषोक्तिं विरोधं तुल्ययोगिताम् ।
अप्रस्तुतप्रशंसाञ्च व्याजस्तुतिनिदर्शने ।२।

अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति और निदर्शना—

उपमारूपकञ्चान्यदुपमेयोपमामपि ।
सहोक्तिपरिवृत्ती च ससन्देहमनन्वयम् ।३।

उपमारूपक के अतिरिक्त उपमेयोपमा तथा च सहोक्ति, परिवृत्ति, ससन्देह और अनन्वय,

उत्प्रेक्षावयवञ्चान्ये संसृष्टमपि चापरे ।
भाविकत्वञ्च निजगुरलङ्कारं सुमेधसः ।४।

अन्य उत्प्रेक्षावयव को, दूसरे संसृष्टि को भी और (अन्य) सुमेधा भाविक को भी अलङ्कार मानते हैं ।

प्रेयो गृहागतं कृष्णमवादीद्विदुरो यथा ।
अद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागते ।
कालेनैषा भवेत्प्रीतिस्तवैवागमनात्पुनः ।५।

प्रेय, जैसे घर में आये हुए कृष्ण को विदुर ने कहा, "गोविन्द ! आज जो तुम्हारे द्वारा (मेरे) घर आने पर मुझे प्रीति हुई है, कालान्तर में यही प्रीति फिर तुम्हारे ही आगमन से हो ।

रसवद्दर्शितस्पष्ट[1]शृङ्गारादिरसं यथा ।
देवी समागमद्धर्ममस्करिण्यतिरोहिता[2] ।६।

---

१. दर्शितं स्पष्टं ।
२. छद्ममस्करिण्यतिरोहिते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(जहाँ) शृङ्गारादि रस स्पष्ट रूप से उद्दीप्त हो रहे हों (वहाँ) 'रसवत्' (अलङ्कार होता) है। जैसे (सहसा) रोकी गयी धर्मवेशधारिणी देवी (पार्वती) उपस्थित हुई।

ऊर्जस्वि कर्णेन यथा पार्थाय पुनरागतः।
द्विः सन्दधाति किं कर्णः शल्येत्यहिरपाकृतः।७।

ऊर्जस्वी, जैसे कर्ण के द्वारा अर्जुन पर (छोड़ा गया) (बाण) लौट आया तो "शल्य ! क्या कर्ण दो बार (बाण में) सन्धान करता है" (यह कहकर) सर्प को हटा दिया।

पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।
उवाच रत्नाहरणे चैद्यं शाङ्गंधनुर्यथा।८।

जो अन्य ही प्रकार से कथन किया जाता है, (वह) पर्यायोक्त है, जैसे— कृष्ण ने रत्नाहरण (काव्य) में शिशुपाल से कहा—

गृहेष्वव्वसु वा नान्नं भुञ्जमहे यदधीतिनः।
न भुञ्जते द्विजा[1]स्तच्च रसदाननिवृत्तये।९।

"घर में अथवा मार्ग में हम वह अन्न नहीं खाते जो वेदपाठी ब्राह्मण न खा लें" और वह विषदान के निवारण के लिए (कहा गया)।

समाहितं राजमित्रे यथा क्षत्रिययोषिताम्।
रामप्रसक्त्यै यान्तीनां पुरोऽदृश्यत नारदः।१०।

समाहित, जैसा कि राजमित्र (काव्य) में परशुराम को प्रसन्न करने के लिए जाती हुई क्षत्रियस्त्रियों को मार्ग में नारद दृष्टिगत हुए।

उदात्तं[2]शक्तिमान्रामो गुरुवाक्यानुरोधकः।
विहायोपनतं[3] राज्यं यथा वनमुपागमत्।११।

उदात्त, जैसे शक्तिशाली तथा गुरुओं के वचन का पालन करने वाला राम प्राप्त राज्य को छोड़कर वन को चला गया।

एतदेवाऽपरेन्येन व्याख्यानेनान्यथा विदुः।
नाना रत्नादियुक्तं यत्तत्किलोदात्तमुच्यते[4]।१२।

---

१. विप्रा न भुञ्जते।
२. उदात्त।
३. पवनं।
४. एतदेवापरेऽन्येन वाक्यार्थानेनान्यथा विदुः।
नानारत्नवियुक्तं यत् तत्किलोदारमुच्यते।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसे ही दूसरे (आचार्य) अन्य व्याख्यान से प्रकारान्तर से समझते हैं। (उनके अनुसार) जो नाना रत्नादि से युक्त होता है वही उदात्त कहा जाता है।

चाणक्यो नक्तमुपयान्नन्दक्रीडागृहं यया।
शशिकान्तोपलच्छन्नं विवेद पयसां कणैः[1] ।१३।

जैसे, चाणक्य रात को नन्द के क्रीडागृह में गया तो जल के कणों से उसने (उसे) चन्द्रकान्त मणियों से जड़ा हुआ समझा।

उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य साध्यते।
गुणक्रियाभ्यां नाम्ना च श्लिष्टं तदभिधीयते ।१४।

गुण, क्रिया और नाम से उपमान के साथ उपमेय का जो अभेद बताया जाता है, वह श्लिष्ट कहा जाता है।

लक्षणं रूपकेऽपीदं लक्ष्यते काममत्र तु।
इष्टः प्रयोगो युगपदुपमानोपमेययोः ।१५।

यद्यपि यह लक्षण रूपक में भी लक्षित होता है (परन्तु) वहाँ तो उपमान और उपमेय का एक साथ प्रयोग इष्ट है।

शीकराम्भोमदसृजस्तुङ्गा जलददन्तिनः।
इत्यत्र मेघकरिणां निर्देशः क्रियते समम् ।१६।

'शीकर रूपी मदजल बहाने वाले विशाल मेघरूपी हाथी' यहाँ मेघ और हाथियों का एकसाथ निर्देश किया गया है।

श्लेषादेवार्थवचसोरस्य[2] च क्रियते भिदा।
तत्सहोक्त्युपमाहेतुनिर्देशात्त्रिविधं[3] यथा ।१७।

शब्द और अर्थ में श्लेष रहने से ही उसका (रूपक से) भेद किया जाता है। वह सहोक्ति, उपमा और हेतु का निर्देश होने से तीन प्रकार का है। जैसे—

छायावन्तो गतव्यालाः स्वारोहाः फलदायिनः।
मार्गद्रुमा महान्तश्च परेषामेव भूतये ।१८।

छायायुक्त (छाँह, द्युति), व्यालरहित (सर्प, दुष्ट), स्वारोह (आसानी से चढ़ने योग्य, सरलतया प्राप्य), फलदायी (फल देने वाले, उपकारी) मार्ग के वृक्ष और महान् (लोग) दूसरों के ही कल्याण के लिए हैं। (सहोक्ति मूलक श्लिष्ट)।

---

१. गणैः।
२. यस्य।
३. क्रमशो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन्नतालोकदयिता महान्तः प्राज्यवर्षिणः ।
शमयन्ति क्षितेस्तापं सुराजानो घना इव ।१९।

उन्नत (उदार, ऊँचे), लोकप्रिय (लोकरञ्जन से, जल देने से), महान् (बड़े, विशाल), प्रचुरवर्षी (घन, जल) श्रेष्ठ राजा मेघों के समान पृथ्वी का ताप (कष्ट, गर्मी) दूर करते हैं। (उपमामूलक श्लिष्ट)।

रत्नवत्त्वादगाधत्वात्स्वमर्यादाविलङ्घनात् ।
बहुसत्त्वाश्रयत्वाच्च सदृशस्त्व[1]मुदन्वता ।२०।

रत्न युक्त होने, अगाध होने, अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन न करने तथा सत्त्व का आश्रय होने से तुम समुद्र के समान हो। (हेतुमूलक श्लिष्ट)।

अपह्नुतिरभीष्टा च[2] किञ्चिदन्तर्गतोपमा ।
भूतार्थापह्नवादस्याः क्रियते चाभिधा यथा[3] ।२१।

अपह्नुति किञ्चित् उपमा से अन्तर्हित होती है। वास्तविक अर्थ को छुपाए जाने से ही इसका (यह) नाम किया जाता है। जैसे—

नेयं विरौति भृङ्गाली मदेन मुखरा मुहुः ।
अयमाकृष्यमाणस्य[4] कन्दर्पधनुषो ध्वनिः ।२२।

यह मद से मुखर भ्रमर पंक्ति बार-बार नहीं गूंज रही। यह खींचे जाते हुए कामदेव के धनुष की ध्वनि है।

एकदेशस्य विगमे या गुणान्तरसंस्थितिः[5] ।
विशेषप्रथनायासौ विशेषोक्तिर्मता यथा[6] ।२३।

एक गुण के अभाव में (भी) जो वैशिष्ट्य की अभिवृद्धि के लिए अन्य गुण की उत्कृष्ट स्थिति (वर्णित) होती है वह विशेषोक्ति कही जाती है। जैसे—

स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः ।
हरतापि तनुं यस्य शम्भुना न हृतं बलम् ।२४।

---

१. सदृशत्व ।
२. रभीष्टात्र ।
३. भूतार्थापह्नवेनास्या निबन्धः क्रियते बुधैः । भूतार्थापह्नवादेषा क्रियतेऽस्याभिदा यथा ।
४. आक्रन्दमानस्य ।
५. गुणान्तरसंस्तुतिः ।
६. विशेषोक्तिरिति स्मृता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्कर के द्वारा जिसके शरीर का हरण करते हुए भी बल का हरण नहीं किया गया, वह कामदेव अकेला होकर भी तीनों लोकों को जीत लेता है ।

गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियाभिधा ।
या[1] विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्यथा ।२५।

वैशिष्ट्य के कथन के लिए किसी गुण अथवा क्रिया के विरुद्ध अन्य क्रिया का वर्णन किया जाता है तो उसे विरोध कहते हैं । यथा—

उपान्तरूढ़ोपवनच्छायाशीतापि भूरसौ ।
विदूरदेशानपि वः सन्तापयति विद्विषः ।२६।

सीमान्त में फैले हुए उपवनों की छाया से शीतल भी वह भूमि दूर स्थित भी तुम्हारे शत्रुओं को सन्तप्त करती है ।

न्यूनस्यापि विशिष्टेन गुणसाम्यविवक्षया ।
तुल्यकार्यक्रियायोगादित्युक्ता तुल्ययोगिता ।२७।

गुणों में साम्य की विवक्षा से न्यून (गुणवाली वस्तु) का भी विशिष्ट के समान ही कार्य और क्रिया से योग तुल्ययोगिता कहा जाता है ।

शेषो हिमगिरिस्त्वञ्च महान्तो गुरवः स्थिराः ।
यदलङ्घितमर्यादाश्चलन्तीं बिभृथ[2] क्षितिम् ।२८।

शेषनाग, हिमालय और तुम महान्, गौरवशाली (और) स्थैर्ययुक्त हो जो मर्यादा का उल्लङ्घन किये विना चञ्चल पृथ्वी को धारण कर रहे हो ।

अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः ।
अप्रस्तुतप्रशंसेति सा चैवं कथ्यते यथा[3] ।२९।

प्रकरण के अतिरिक्त वस्त्वन्तर का जो कथन है, वह 'अप्रस्तुतप्रशंसा' इस प्रकार कहा जाता है, जैसे—

प्रीणितप्रणयि स्वादु काले परिणतं बहु ।
विना पुरुषकारेण फलं पश्यत शाखिनाम् ।३०।

प्रणयी जनों को प्रसन्न करने वाले, स्वादयुक्त, परिश्रम के विना ही समय पर प्रचुर पकने वाले वृक्षों के फल को देखो ।

दूराधिकगुणस्तोत्रव्यपदेशेन तुल्यताम् ।
किञ्चिद्विधित्सोर्या[4] निन्दा व्याजस्तुतिरसौ यथा ।३१।

---

१. क्रिया० ।
२. बिभ्रति ।
३. अप्रस्तुतप्रशंसा सा त्रिविधा परिकीर्तिता ।
४. किञ्चिद्विधित्सया ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अत्यन्त गुणी की प्रशंसा के व्याज से आंशिक समानता बताने के इच्छुक के द्वारा जो निन्दा की जाती है, वह व्याजस्तुति है। जैसे—

रामः सप्ताभिनत्सालान्गिरि क्रौञ्चं भृगूत्तमः।
शतांशेनापि भवता किं तयोः सदृशं कृतम् ।३२।

राम ने सात साल (वृक्षों) को भेद दिया, परशुराम ने क्रौञ्च पर्वत को। क्या आपके द्वारा उन दोनों के शतांश के समान भी किया गया है ?

क्रिययैव विशिष्टस्य तदर्थस्यो[1]पदर्शनात्।
ज्ञेया[2] निदर्शना नाम यथेववतिभिर्विना ।३३।

यथा, इव और वति के विना क्रिया के द्वारा ही उस विशिष्ट अर्थ के निदर्शन से निदर्शना नामक (अलङ्कृति) जानी जाये।

अयं मन्दद्युतिर्भास्वानस्तं प्रति यियासति।
उदयः पतनायेति श्रीमतो बोधयन्नरान् ।३४।

अभ्युदय पतन के लिए ही है, इस प्रकार श्रीमान् जनों को बोध कराता हुआ यह मन्दकान्ति वाला सूर्य अस्ताचल की ओर जाना चाहता है।

उपमानेन तद्भावमुपमेयस्य साधयन्।
यो वदत्युपमामेतदुपमारूपकं यथा ।३५।

उपमान के साथ उपमेय की अभिन्नता को साधित करता हुआ जो सादृश्य का कथन करता है, वह उपमारूपक है। जैसे—

समग्रगगनायाममानदण्डो रथाङ्गिणः।
पादो जयति सिद्धस्त्रीमुखेन्दुनवदर्पणः ।३६।

समग्र आकाश के विस्तार का मापदण्ड, विष्णु का चरण उत्कर्ष को प्राप्त होता है जो सिद्धों की स्त्रियों के मुखचन्द्र के लिए नवीन दर्पण के समान है।

उपमानोपमेयत्वं[3] यत्र पर्यायतो भवेत्।
उपमेयोपमां नाम ब्रुवते तां[4] यथोदिताम् ।३७।

उपमान और उपमेय जहाँ पर्याय रूप से होते हैं उसे उपमेयोपमा नामक अलङ्कार कहते हैं। जैसा कि कहा गया है—

सुगन्धि नयनानन्दि मदिरामदपाटलम्।
अम्भोजमिव वक्त्रं ते त्वदास्यमिव पङ्कजम् ।३८।

---

१. क्रिययैव तदर्थस्य विशिष्टस्योपदर्शनात्।
२. इष्टा।
३. उपमानस्य तद्भावमुपमेयस्य रूपयन्। यो वदत्युपमाभेदमुपमारूपकं यथा।
४. धीरा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुगन्धित, नेत्रों को आनन्दित करने वाला, मदिरा के मद से पाटल तुम्हारा मुख कमल के समान है (और) तुम्हारे मुख के समान कमल है।

तुल्यकाले[1] क्रिये यत्र वस्तुद्वयसमाश्रये[2]।
पदेनैकेन[3] कथ्येते सहोक्तिः सा मता यथा।३९।

जहाँ दो (भिन्न) वस्तुओं में समाश्रित (परन्तु) तुल्यकालिक दो क्रियायें एक ही पद से उक्त होती हैं, वह सहोक्ति कही जाती है। जैसे—

हिमपातावलदिशो गाढ़ालिङ्गनहेतवः।
वृद्धिमायान्ति यामिन्यः कामिनां प्रीतिभिः सह।४०।

हिमपात से पङ्किल दिशाओं वाली (तथा) प्रगाढ़ आलिङ्गन की हेतुभूत रात्रियाँ कामियों की प्रीति के साथ वृद्धि को प्राप्त करती हैं।

विशिष्टस्य यदादानमन्यापोहेन वस्तुनः।
अर्थान्तरन्यासवती परिवृत्तिरसौ यथा।४१।

अन्य वस्तु के त्यागपूर्वक (अन्य) विशिष्ट (वस्तु) की जो प्राप्ति है, (यदि) अर्थान्तरन्यास से युक्त हो (तो) वह परिवृत्ति है। जैसे—

प्रदाय वित्तमर्थिभ्यः स यशोधनमादितः।
सतां विश्वजनीनानामिदमस्खलितं व्रतम्।४२।

याचकों को धन देकर उसने यशरूपी धन प्राप्त कर लिया है। सबका हित करने वाले सज्जनों का यह स्थिर व्रत है।

उपमानेन तत्त्वञ्च भेदञ्च वदतः पुनः[4]।
ससन्देहं[5] वचः स्तुत्यै ससन्देहं विदुर्यथा।४३।

(उपमेय की) प्रशंसा के लिए उपमान के साथ अभेद और पुनः भेद का कथन करते हुए सन्देहयुक्त वचन ससन्देह जाने जाते हैं। जैसे—

किमयं शशी न स दिवा विराजते
कुसुमायुधो न धनुरस्य कौसुमम्।
इति विस्मयाद्विमृशतोपि मे मति—
स्त्वयि वीक्षिते न लभतेऽर्थनिश्चयम्।४४।

---

१. काल।
२. समाश्रिते।
३. वाक्येनैकेन।
४. उपमानोपमेयस्य तत्त्वं च वदतः पुनः।
५. ससन्देह।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्या यह चन्द्रमा है ? वह तो दिन में प्रकाशित नहीं होता। क्या कामदेव है ? (परन्तु) इसका धनुष फूलों का नहीं है। इस प्रकार तुम्हें देखने पर विस्मयपूर्वक विचार करती हुई मेरी मति सत्य का विनिश्चय नहीं कर पा रही।

यत्र तेनैव तस्य स्यादुपमानोपमेयता।
असादृश्यविवक्षा[1]तस्तमित्याहुरनन्वयम्[2] ।४५।

असादृश्य की विवक्षा से जहाँ उसी के साथ उसकी उपमानता और उपमेयता (वर्णित हो), उसे अनन्वय कहते हैं।

ताम्बूलरागवलयं स्फुरद्दशनदीधिति।
इन्दीवराभनयनं तवेव वदनं तव ।४६।

ताम्बूल की लालिमा के वलय वाला, चमकते हुए दाँतों की आभा वाला, नीलकमल के समान नेत्रों वाला तुम्हारा मुख तुम्हारे ही समान है।

श्लिष्टस्यार्थेन संयुक्तः किञ्चिदुत्प्रेक्षयान्वितः।[3]
रूपकार्थेन च पुनरुत्प्रेक्षावयवो यथा ।४७।

श्लेष के अर्थ से संयुक्त, उत्प्रेक्षा से किञ्चित् अन्वित तथा च रूपक के अर्थ से (संयुक्त) उत्प्रेक्षावयव होता है। जैसे—

तुल्योदयावसानत्वाद् गतेऽस्तं प्रति भास्वति।
वासाय वासरः क्लान्तो विशतीव तमोगृहम्[4] ।४८।

उदय और अस्त समान होने के कारण सूर्य के अस्ताचल की ओर चले जाने पर क्लान्त दिवस भी निवास के लिए मानो अन्धकार रूपी गृह में प्रवेश कर रहा है।

वरा[5] विभूषा संसृष्टिर्बह्वलङ्कारयोगतः।
रचिता रत्नमालेव सा चैवमुदिता[6] यथा ।४९।

---

१. सादृश्याविवक्षातः।
२. वदन्ति तमनन्वयम्
३. किञ्चिच्चोत्प्रेक्षयान्वितः।
४. तमो गुहाम्।
५. परा।
६. चैवं कथ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनेक अलङ्कारों से युक्त होने के कारण रत्नों की माला के समान बनायी गयी संसृष्टि श्रेष्ठ आभूषण है और वह इस प्रकार कही गयी है, जैसे—

गाम्भीर्यलाघववतोर्युवयोः प्राज्यरत्नयोः ।
सुखसेव्यो जनानां त्वं दुष्टग्राहोऽम्भसां पतिः ।५०।

प्रचुर रत्नों से सम्पन्न तथा गाम्भीर्य और लाघव से युक्त तुम दोनों में (यही भेद है कि) तुम लोगों के लिए सुसेव्य हो (जबकि) समुद्र दुष्ट ग्राहों से युक्त है ।

अनलङ्कृतकान्तं ते वदनं वनजद्युति ।
निशाकृतः[1] प्रकृत्यैव चारोः का वास्त्यलङ्कृतिः ।५१।

कमल की कान्ति वाला तुम्हारा मुख विना आभूषणों के ही सुन्दर है । अथवा स्वभाव से ही सुन्दर चन्द्र का क्या अलङ्करण हो सकता है ।

अन्येषामपि कर्त्तव्या संसृष्टिरनया दिशा ।
कियद्वद्घट्टितज्ञेभ्यः शक्यं कथयितुं मया ।५२।

अन्य (अलङ्कारों) की भी इसी दिशा में संसृष्टि कर लेनी चाहिए। कल्पना के जानने वालों के लिए मेरे द्वारा कितना कहा जा सकता है ।

भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम् ।
प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यत्रार्था भूतभाविनः ।५३।

भाविकत्व, इसे प्रबन्धविषयक गुण कहते हैं, जहाँ भूत और भावी अर्थ प्रत्यक्ष के समान दृष्टिगत होते हैं ।

चित्रोदात्ताद्भुतार्थत्वं कथायाः स्वभिनीतता ।[2]
शब्दानाकुलता चेति तस्य हेतुं प्रचक्षते ।५४।

अर्थ का वैचित्र्य, औदात्त्य और अद्भुतत्व, कथा की अभिनेयता और शब्दों की स्पष्टता, ये उसके हेतु कहे जाते हैं ।

आशीरपि च केषाञ्चिदलङ्कारतया मतः[3] ।
सौहृदस्याविरोधोक्तौ प्रयोगोऽस्याश्च तद्यथा ।५५।

किन्हीं (आचार्यों) को आशीः भी अलङ्कार के रूप में मान्य है और इसका प्रयोग सौहृद की अविरोधिनी उक्ति में होता है । जैसे कि—

---

१. कृतं ।
२. स्वविनीतता ।
३. मता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्मिञ्जहीहि सुहृदि प्रणयाभ्यसूया—
माश्लिष्य गाढ़नमुमानतमादरेण ।
विन्ध्यं महानिव घनः समयेऽभिवर्ष—
न्नानन्दजैर्नयनवारिभिरुक्षतु त्वाम् ।५६।

इस मित्र के प्रति प्रणयकोप का त्याग करो, आदर पूर्वक झुके हुए इसका प्रगाढ़ आलिङ्गन करो (और) यह भी समय पर विन्ध्य पर्वत पर बरसते हुए महान् मेघ के समान तुम्हें आनन्द के कारण उत्पन्न आंसुओं से सिक्त करे।

मदान्धमातङ्गविभिन्नसाला
हतप्रवीरा द्रुतभीतपौराः ।
त्वत्तेजसा दग्धसमस्तशोभा
द्विषां पुरः पश्यतु राजलोकः ।५७।

मदान्ध हाथियों के द्वारा जिसके प्राकार तोड़ दिये गये हैं, वीर मार दिये गये हैं, भयभीत नागरिक भाग गये हैं (तथा) तुम्हारे तेज से भस्म हुई समस्त शोभा वाले शत्रुओं के नगर को (अन्य) राजवर्ग देखे ।

गिरामलङ्कारविधिः सविस्तरः
स्वयं विनिश्चित्य धिया मयोदितः ।
अनेन वागर्थविदामलङ्कृता
विभाति नारीव विदग्धमण्डना ।५८।

मेरे द्वारा स्वयं विनिश्चय करके बुद्धिपूर्वक वाणियों के अलंकरण की विधि विस्तारपूर्वक कही गयी है । इससे अर्थविदों की अलङ्कृत वाणी विभूषित नारी के समान विभावित होती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थः परिच्छेदः

अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम् ।
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धि च[1] ।१।

अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपक्रम, शब्दहीन, यतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त और विसन्धि—

देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च ।
प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहीनं दुष्टञ्च नेष्यते ।२।

देशविरोधी, कालविरोधी, कलाविरोधी, लोकविरोधी, न्यायविरोधी, और आगमविरोधी तथा प्रतिज्ञाहीन, हेतुहीन और दृष्टान्तहीन दोष (काव्य में) इष्ट नहीं है ।

अपार्थमित्यपेतार्थं स चार्थः पदवाक्ययोः ।
अर्थवान्वर्णसङ्घातः सुप्तिङन्तं पदं पुनः ।३।

अपार्थ (वह है जो) अर्थरहित हो । वह अर्थ पद और वाक्य में रहता है । (तथा च) सार्थक सुबन्त और तिङन्त वर्णसंघात पद कहलाता है ।

पदानामेव सङ्घातः सापेक्षाणां परस्परम् ।
निराकाङ्क्षञ्च तद्वाक्यमेकवस्तुनिबन्धनम् ।४।

परस्पर सापेक्ष पदों का संघात जो निराकांक्ष तथा एक ही पदार्थ का बोधक हो, वाक्य कहलाता है ।

क्रमवृत्तिषु वर्णेषु सङ्घातादि न युज्यते ।
बुद्धौ तु सम्भवत्येतदन्यत्वेऽपि प्रतिक्षणम् ।५।

क्रमशः उच्चार्यमाण वर्णों में (यद्यपि) संघात नहीं हो सकता तो भी बुद्धि में यह (समूहत्व) सम्भव है ।

धीरन्त्यशब्दविषया वृत्तवर्णा[2]हितस्मृतिः ।
वाक्यमित्याहुरपरे न शब्दाः क्षणनश्वराः ।६।

---

१. विसन्धिकम् ।
२. शब्दा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वोच्चारित वर्णों से उत्पन्न स्मृति (सहित) अन्त्य शब्दविषयक बुद्धि वाक्य है, क्षणिक शब्द नहीं, ऐसा दूसरे (विद्वान्) कहते हैं।

अत्रापि बहु वक्तव्यं जायते तत्तु नोदितम्।
गुरुभिः किं विवादेन यथाप्रकृतमुच्यते ।७।

यहाँ भी बहुत कुछ कहने योग्य है पर वह नहीं कहा गया। गुरुओं के साथ विवाद से क्या? (अब) प्रकरण के अनुसार कहते हैं—

समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थकमिष्यते।[1]
दाडिमानि दशापूपाः षडित्यादि यथोदितम् ।८।

(सार्थक पदों के होने पर भी) समुदाय के अर्थ से शून्य अपार्थक कहा जाना चाहिए। जैसे, 'दस अनार', 'छः पूए' ऐसा कहा जाता है।

विरुद्धार्थं[2] मतं व्यर्थं विरुद्धं तूपदिश्यते।
पूर्वापरार्थव्याघाताद्विपर्ययकरं यथा ।९।

विरुद्ध अर्थ वाले (पद) 'व्यर्थ' कहे जाते हैं और विरुद्ध उसे कहते हैं (जिसमें) पूर्व और अपर अर्थ के व्याघात से विपर्यय हो जाये। यथा—

सखि मानं प्रिये धेहि लघुतामस्य मा गमः।
भर्त्तुश्छन्दानुवर्त्तिन्यः प्रेम घ्नन्ति न हि स्त्रियः ।१०।

हे सखि! प्रिय के प्रति मान कर। इसके (सामने) लघुता मत दिखा। स्वामी की इच्छा का अनुवर्त्तन करने वाली स्त्रियाँ प्रेम का नाश नहीं करतीं।

उपासितगुरुत्वात्त्वं विजितेन्द्रियशत्रुषु।
श्रेयसो[3] विनयाधानमधुना तिष्ठ केवलम् ।११।

गुरुओं की उपासना के कारण तुम इन्द्रियरूपी शत्रुओं पर विजयी हो गये हो। अब बड़ों से केवल विनय का पालन सीखो।

यदभिन्नार्थमन्योन्यं तदेकार्थं प्रचक्षते।
पुनरुक्तमिदं प्राहुरन्ये शब्दार्थभेदतः ।१२।

जो परस्पर अभिन्न अर्थ वाले हों, उन्हें एकार्थ कहा जाता है। अन्य (आचार्य) इसे 'पुनरुक्त' भी कहते हैं (यह) शब्द और अर्थ भेद से (दो प्रकार का होता है)।

---

१. मितीष्यते।
२. निरुद्धार्थम्।
३. श्रेयःसु।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न शब्दपुनरुक्तं तु स्थौल्यादत्रोपवर्ण्यते ।
कथमाक्षिप्तचित्तः सन्नुक्तमेवाभिधास्यते ।१३।

स्थूल होने के कारण यहाँ शब्दपुनरुक्त वर्णित नहीं किया जा रहा। अविक्षिप्त चित्त वाला कोई कैसे कहे हुए को ही कहेगा।

भयशोकाम्यसूयासु हर्षविस्मययोरपि ।
यथाह गच्छ गच्छेति पुनरुक्तं न[1] तद्विदुः ।१४।

भय, शोक, असूया, हर्ष और विस्मय में जो हो वह पुनरुक्त नहीं माना जाता। जैसे (कोई) कहे—"गच्छ गच्छ"।

अत्रार्थपुनरुक्तं यत्तदेवैकार्थमिष्यते ।
उक्तस्य पुनराख्याने कार्यासम्भवतो यथा ।१५।

यहाँ जो अर्थ की पुनरुक्ति है, वही एकार्थ (के रूप में) इष्ट है। उक्त (शब्दों) के पुनराख्यान में तात्पर्य सम्भव नहीं है। जैसे—

तामुत्कमनसं नूनं करोति ध्वनिरम्भसाम् ।
सौधेषु घनमुक्तानां प्रणालीमुखपातिनाम् ।१६।

मेघ से भवनों पर बरसी हुई (तथा) नाली के मुख से गिरने वाले जल की ध्वनि उसे (नायिका को) निश्चय ही उन्मत्त बना रही है।

श्रुतेः सामान्यधर्माणां विशेषस्यानुदाहृत ।
अप्रतिष्ठं यदेकत्र तज्ज्ञानं[2] संशयं विदुः ।१७।

सामान्य धर्मों के श्रवण से तथा विशेष के अश्रवण से जो ज्ञान एक पक्ष में स्थित न रहे, उसे संशय कहते हैं।

ससंशयमिति प्राहुस्ततस्तज्जननं वचः ।
इष्टं निश्चितये वाक्यं न दोलायेत[3] तद्यथा ।१८।

अतः उस (संशय) के जनक वाक्य को 'ससंशय' कहेंगे। अर्थ के निर्णय के लिए विवक्षित वाक्य को दोलायमान नहीं होना चाहिए। जैसा कि—

व्यालवन्तो दुरारोहा रत्नवन्तः फलान्विताः ।
विषमा भूभृतस्तेभ्यो भयमाशु प्रमादिनाम् ।१९।

भूमृत् (राजा, पर्वत) रत्नसम्पन्न, फल से युक्त एवं विषम होते हैं। उनसे प्रमादियों को तत्क्षण ही भय प्राप्त होता है।

यथोपदेशं क्रमशो निर्देशोऽत्र क्रमो मतः ।
तदपेतं विपर्यासादित्याख्यातमपक्रमम् ।२०।

---

१. च।
२. यदत्रैतज्ज्ञानं तत्।
३. वेलायेति, वेलायति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपदेश के अनुसार क्रम से निर्देश 'क्रम' कहा जाता है। विपर्यस्त होने के कारण उस (क्रम) से रहित 'अपक्रम' कहलाता है।

विदधानौ किरीटेन्दू श्यामाभ्रहिमसच्छवी।
रथाङ्गशूले बिभ्राणौ पातां वः शम्भुशार्ङ्गिणौ।२१।

किरीट और चन्द्रमा का वहन करने वाले, श्याम मेघ तथा हिम के समान छवि वाले, चक्र और शूल का भरण करने वाले शिव और विष्णु आपकी रक्षा करें।

सूत्रकृत्पदकारेष्टप्रयोगाद्योऽन्यथा भवेत्।
तमाप्तश्रावकासिद्धेः[1] शब्दहीनं विदुर्यथा।२२।

सूत्रकार (पाणिनि) और पदकार (कात्यायन) के द्वारा इष्ट से अन्यथा प्रयोग को प्रामाणिक अनुशासकों के द्वारा सिद्ध न होने के कारण शब्दहीन कहते हैं। जैसे--

स्फुरत्तडिद्वलयिनो विततास्भो गरीयसः।
तेजस्तिरयतः सौरं घनान्पश्य दिवोऽभितः[2]।२३।

दिन के समय चमकती हुई बिजली के वलय वाले, जल के विस्तार से गुरु, सूर्य के तेज को ढकने वाले मेघों को चारों ओर देखो।

यतिश्[3]छन्दोऽधिरूढ़ानां[4] शब्दानां या विचारणा।
तदपेतं यतिभ्रष्टमिति निर्दिश्यते यथा।२४।

छन्द में प्रयुक्त शब्दों की विचारणा को 'यति' कहते हैं। उससे रहित यतिभ्रष्ट कहा जाता है। जैसे—

विद्युत्वन्तस्तमालालिसितवपुष इमे वारिवाहा ध्वनन्ति।२५।

विद्युत् से युक्त (तथा) तमाल के समान कृष्ण शरीर वाले ये मेघ ध्वनि कर रहे हैं। (यहाँ स्रग्धरा छन्द में यतिदोष है)।

गुरोर्लघोश्च वर्णस्य योऽस्थाने रचनाविधिः।
तन्न्यूनाधिकता वापि भिन्नवृत्तमिदं यथा।२६।

गुरु और लघु वर्णों का अस्थान में सन्निवेश, उनकी न्यूनता अथवा अधिकता भिन्नवृत्त (कही जाती है)। जैसे—

---

१. तमाप्तश्रावकाः सिद्धेः।
२. दिवाऽभितः।
३. यतिश्छन्दो।
४. छन्दोनिरूढ़ानाम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रमति भ्रमरमाला काननेषून्मदाऽसौ ।
विरहितरमणीकोऽहंस्यद्य गन्तुम् ।२७।

वह उन्मत भ्रमरों की पंक्ति वनों में घूम रही है। विरहितरमणी (होने के कारण) तुम आज (घर) जा सकते हो। (यहाँ मालिनी छन्द के दो चरणों में वर्णसन्निवेश दूषित है)।

कान्ते इन्दुशिरोरत्ने आदधाने उदंशुनी ।
पातां वः शम्भुशर्वाण्याविति प्राहुर्विसन्ध्यदः ।२८।

सुन्दर, चमकीले, चन्द्रमा और शिरोरत्न धारण करने वाले शम्भु और पार्वती आपकी रक्षा करें। यहाँ विसन्धि दोष कहा गया है।

या देशे द्रव्यसम्भूतिरपि वा नोपदिश्यते ।
तत्तद्विरोधि विज्ञेयं स्वभावात्तद्यथोच्यते ।२९।

देशविशेष में द्रव्यों की जो उत्पत्ति (कही गयी) है अथवा नहीं कही गयी है, उसके स्वभाव के विरोधी वर्णन को देशविरोधी कहते हैं। यथा—

मलये कन्दरोपान्तरूढ़कालागुरुद्रुमे ।
सुगन्धि कुसुमानम्रा राजन्ते देवदारवः ।३०।

मलय पर, जिसकी कन्दराओं में कालागुरु के वृक्ष उगे हुए है तथा सुगन्धित फूलों से नम्र देवदारु सुशोभित होते हैं।

षण्णामृतूनां भेदेन कालः षोढ़ेव भिद्यते ।
तद्विरोधकृदित्याहुर्विपर्यासादिदं यथा ।३१।

छः ऋतुओं के भेद से मानों काल भी छः प्रकार से विभक्त है, उसके विपर्यय से यह कालविरोध होता है, ऐसा कहते हैं। जैसे—

उद्गूढ़शिशिरासारान्प्रावृषेण्यान्नभस्वतः ।
फुल्लाः सुरभयन्तीमे चूताः काननशोभिनः ।३२।

शीतल जलकणों से भरी हुई बरसाती हवाओं को वन में शोभमान ये खिले हुए आम्र सुगन्धित बना रहे हैं।

कला सङ्कलना प्रज्ञा[1] शिल्पान्यस्याश्च गोचरः ।
विपर्यस्तं तथैवाहुस्द्विरोधकरं यथा ।३३।

सङ्कलनशील प्रज्ञा कला है और (विविध) शिल्प इसके विषय हैं। उसके विपर्यय को उसी प्रकार से कलाविरोधी कहते हैं। जैसे—

ऋषभात्पञ्चमस्तस्मा[2]त्सषड्जं धैवतं स्मृतम् ।
अयं हि मध्यमग्रामो मध्यमोत्पीडितर्षभः ।३४।

---

१. प्रज्ञाः

२. ऋषभात्पञ्चमात्तस्मात्, ऋषभात्पञ्चमं तस्मात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋषभ के अनन्तर पञ्चम, उससे षड्ज (और फिर) धैवत कहा गया है। मध्यम मे ऋषभ को उत्पोडित करना मध्यम ग्राम होता है।

इति साधारितं[1] मोहादन्यथैं[2]वावगच्छति।
अन्यास्वपि कलास्वेवमभिधेया विरोधिता।३५।

इस प्रकार के नियम को अज्ञान के कारण (यदि कोई) अन्यथा ही समझ लेता है (तो वह कलाविरोधी दोष होता है)। अन्य कलाओं में भी इसी प्रकार का विरोध समझ लेना चाहिए।

स्थास्नुजङ्गमभेदेन लोकं तत्त्वविदो विदुः।
स च तद्व्यवहारोऽत्र तद्विरोधकरं यथा।३६।

तत्त्वज्ञ लोक को स्थावर और जङ्गम के भेद से युक्त मानते हैं और वह व्यवहार यहाँ (काव्यशास्त्र में) भी है। इसका विरोध करने वाला (लोक-विरोधी होता है)।

तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदविन्दुभिः।
प्रावर्त्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनी।३७।

उन हाथियों के कपोल स्थलों से स्रवित मद की विन्दुओं से हाथी, घोड़े और रथों को वहाने वाली घोर नदी वन गयी।

धावतां सैन्यवाहानां फेनवारिमुखच्युतम्।
चकार जानुदघ्नापान् प्रतिदिङ्मुखमध्वनः।३८।

सेना के दौड़ते हुए घोड़ों के मुख से गिरे हुए फेन के जल ने प्रत्येक दिशा के मार्ग को घुटने भर पानी वाला कर दिया।

न्यायः शास्त्रं त्रिवर्गोक्तिर्दण्डनीतिश्च तां विदुः।
अतो न्यायविरोधीष्टमपेतं यत्तया यथा।३९।

त्रिवर्ग का कथन करने वाले शास्त्र और दण्डनीति को न्याय कहते हैं। अतः जो उससे विरोध करे वह न्यायविरोधी इष्ट है। जैसे—

विजिगीषुमुपन्यस्य वत्सेशं वृद्धदर्शनम्।
तस्यैव कृतिनः पश्चादभ्यधाच्चार[3]शून्यताम्।४०।

(किसी काव्य में) वत्सनरेश उदयन को विजय की इच्छा वाला और वृद्धों के समान दृष्टि वाला वताकर बाद में उसी कर्मशील को गुप्तचरों से शून्य कहा गया है।

---

१. इति सा धारितं।
२. अन्यथेव।
३. धापार।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्योधशताकीर्णं सालङ्कायननेतृकम्[1] ।
तथाविधं गजच्छद्म नाज्ञासीत्स स्वभूगतम् ।४१।

(वह उदयन) अपनी ही भूमि पर स्थित सालङ्कायन के नेतृत्व वाले, अन्तःप्रदेश में सैकड़ों योद्धाओं से युक्त उस प्रकार के हाथी के छल को भी नहीं समझ सका ।

यदि वोपेक्षितं तस्य सचिवैः स्वार्थसिद्धये ।
अहो नु मन्दिमा तेषां भक्तिर्वा नास्ति भर्तरि ।४२।

अथवा यदि उसके सचिवों के द्वारा स्वार्थसिद्धि के लिए (वह) उपेक्षित कर दिया गया तो यह उनकी मन्दबुद्धिता है अथवा स्वामी में उनकी भक्ति ही नहीं है ।

शरा दृढ़घनुर्मुक्ता मन्युमद्भिररातिभिः ।
मर्माणि परिहृत्यास्य पतिष्यन्तीति काऽनुमा ।४३।

क्रोध से युक्त शत्रुओं के द्वारा दृढ़ धनुष से छोड़े गये वाण उसके मर्मस्थल से अलग गिर रहे हैं, यह क्या कल्पना है ?

हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम ।
मातुलो भागिनेयश्च रुषा संरब्धचेतसः ।४४।

"इसके द्वारा मेरा भाई, मेरा पुत्र, मेरा पिता, मामा और भानजा मारा गया है" इस प्रकार क्रोधान्ध हृदय वाले—

अस्यन्तो विविधान्याजावायुधान्यपराधिनम् ।
एकाकिनमरण्यान्यां न हन्युर्बहवः कथम् ।४५।

युद्ध में विविध अस्त्र चलाते हुए बहुत से (योद्धा) अपराधी और जङ्गल में एकाकी (उदयन को) कैसे नहीं मार सकेंगे ।

नमोऽस्तु तेभ्यो विद्वद्भ्यो येऽभिप्रायं कवेरिमम् ।
शास्त्रलोकापबास्यैव[2] नयन्ति नयवेदिनः ।४६।

उन नीतिज्ञ विद्वानों को प्रणाम है जो कवि के इस अभिप्राय को शास्त्र और लोक की उपेक्षा कर स्वीकार करते हैं ।

सचेतसो वनेभस्य चर्मणा निर्मितस्य च ।
विशेषं वेद बालोऽपि कष्टं किं नु[3] कथं नु तत् ।४७।

सजीव जङ्गली हाथी और चर्म से निर्मित (हाथी) का वैशिष्ट्य बालक भी जानता है । क्या यह कष्टकर है ? (फिर) वह कैसे हुआ ?

---

१. नेत्रकम् ।
२. यैव ।
३. किन्तु ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आगमो धर्मशास्त्राणि लोकसीमा च तत्कृता ।
तद्विरोधि तदाचारव्यतिक्रमणतो यथा ।४८।

धर्मशास्त्र और उनके द्वारा की गयी लोक की मर्यादा आगम (है)। उसके आचार से व्यतिक्रम होने पर आगमविरोधी होता है। जैसे—

भूभृतां पीतसोमानां न्याय्ये वर्त्मनि तिष्ठताम् ।
अलङ्करिष्णुना वंशं गुरौ सति जिगीषुणा ।४९।

न्याय के मार्ग पर स्थित, सोमपायी, राजाओं के वंश के अलङ्कार-स्वरूप पिता के रहते हुए, विजय की इच्छा वाले—

अभार्योढ़ेन संस्कारमन्तरेण द्विजन्मना ।
नरवाहनदत्तेन वेश्यावान् निशि पीडितः ।५०।

अविवाहित, संस्कार के विना ही द्विजत्व धारण करने वाले नर-वाहनदत्त के द्वारा रात्रि में वेश्यावान् मार डाला गया।

न दूषणायाय[1]मुदाहृतो विधि –
र्न चाभिमानेन किमु प्रतीयते ।[2]
कृतात्मनां तत्त्वदृशाञ्च मादृशो
जनोऽभिसन्धिं क इवावभोत्स्यते ।५१।

यह रचना (दूसरों के) दोष दिखाने के लिए नहीं की गयी और न अभिमान से ही की गयी है। मेरे जैसा व्यक्ति विद्वानों और तत्त्वज्ञों के अभिप्राय को क्या समझ सकता है।

---

१. यालमुदाहृतो ।

२. प्रनीतये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चमः परिच्छेदः

अथ प्रतिज्ञाहेत्वादिहीनं दुष्टञ्च वर्ण्यते ।
समासेन यथान्यायं तन्मात्रार्थप्रतीतये ।१।

एतदनन्तर न्याय की सरणि से प्रतिज्ञा, हेतु आदि से हीन दोषों का उनके अर्थमात्र की प्रतीति के लिए संक्षेप में वर्णन किया जाता है ।

प्रायेण दुर्बोधतया शास्त्राद्बिभ्यत्यमेधसः ।
तदुपच्छन्दनार्थेष हेतुन्यायलवोच्चयः[1] ।२।

प्रायः दुर्बोधता के कारण अल्पमति जन शास्त्र से डरते हैं, उन्हीं के रञ्जन के लिए यह न्यायपद्धति के अंशों का संग्रह है ।

स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुञ्जते[2] ।
प्रथमालीढ़मधवः पिवन्ति कटु भेषजम् ।३।

मधुर काव्य के रस से मिश्रित होकर शास्त्र का भी उपयोग होता है । पहले मधु को चूसने वाले कड़वी दवा (भी) पी लेते हैं ।

न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला ।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान्कवेः ।४।

वह शब्द नहीं, वह अर्थ नहीं, वह न्याय नहीं, वह कला नहीं, जो काव्य के अङ्गभाव को प्राप्त नहीं होती । कवि का दायित्व कितना महान् है !

सत्त्वादयः प्रमाणाभ्यां प्रत्यक्षमनुमा च ते ।
असाधारणसामान्यविषयत्वं तयोः किल ।५।

(वस्तुओं की) सत्तायें दो प्रमाणों से (सिद्ध होती है) और वे प्रत्यक्ष और अनुमान हैं । उन दोनों के विषय (क्रमशः) व्यक्ति और जाति हैं ।

प्रत्यक्षं कल्पनापोढ़ं ततो[3]ऽर्थादिति केचन ।
कल्पनां नाम जात्यादियोजनां प्रतिजानते[4] ।६।

---

१. वलोच्चयः ।
२. वाक्यार्थमुपयुञ्जते ।
३. सतोऽर्था ।
४. प्रतिजन्यते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ लोग (यह कहते हैं कि) किसी पदार्थ का कल्पना से रहित (ज्ञान) प्रत्यक्ष है (जबकि वे) कल्पना को नामजात्यादि की योजना (के रूप में) मानते हैं।

समारोपः किलैतावान् सदर्थालम्बनञ्च तत्।
जात्याद्यपोहे वृत्तिः क्व क्व विशेषः कुतश्च सः।७।

इतना यह सब (जात्यादि) आरोपित ही है और इस (प्रत्यक्ष) का आलम्बन सत् होता है। (इन्हीं) जात्यादि का अपोह होने पर (प्रत्यक्ष का) विषय कहाँ होगा, उस (वस्तु विशेष का) वैशिष्ट्य क्या होगा और उसका आधार क्या होगा ?

तदपोहेषु च[1] तथा सिद्धा सा बुद्धिगोचरा।
अवस्तुकञ्चेद्वितथं प्रत्यक्षं तत्त्ववृत्ति हि।८।

उन (जात्यादि) का अपोह होने पर भी वह बुद्धिगोचर सिद्ध होती है। यदि प्रत्यक्ष को अयथार्थ मानें तो (व्यर्थ है) क्योंकि वह यथार्थ का बोधक है।

ग्राह्यग्राहकभेदेन विज्ञानांशो मतो यदि।
विज्ञानमात्रसादृश्याद् विशेषोऽस्य विकल्पना।९।

ग्राह्यग्राहक के भेद से ज्ञान (ही) यदि अभिमत हो तो ज्ञानमात्र के सादृश्य के कारण उसका वैशिष्ट्य अवास्तविक हो जायेगा।

अर्थादेवेति रूपादेस्तत एवेति नान्यतः।[2]
अन्यथा घटविज्ञानमन्येन व्यपदिश्यते।१०।

वस्तुविशेष से ही (उस वस्तु का ज्ञान होता है), अतः रूपादि का ज्ञान उस वस्तु से ही होगा, अन्य से नहीं। अन्यथा तो घट का ज्ञान अन्य (पटादि) से व्यपदिष्ट हो जायेगा।

त्रिरूपाल्लिङ्गतो ज्ञानमनुमानञ्च केचन।
तद्विदो नान्तरीयार्थदर्शनञ्चापरे[3] विदुः।११।

कुछ (आचार्यों के अनुसार) त्रिविध लिङ्ग से (साध्य का) ज्ञान अनुमान है। उसे जानने वाले अन्य विद्वान् (अनुमान को) (वस्तुओं के) नित्य सम्बन्ध का अनुभव मानते हैं।

---

१. न।
२. न्यायतः।
३. चापरं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विविधास्पद[1]धर्मेण धर्मी कृतविशेषणः ।
पक्षस्तस्य च निर्देशः प्रतिज्ञेत्यभिधीयते ।१२।

विवाद के विषय रूप धर्म के द्वारा विशेषित धर्मी पक्ष कहलाता है और उसी का निर्देश प्रतिज्ञा कही जाती है ।

तदर्थहेतुसिद्धान्तसर्वागमविरोधिनी ।
प्रसिद्ध[2]धर्मा प्रत्यक्षवाधिनी चेति दुष्यति ।१३।

तदर्थविरोधिनी, हेतुविरोधिनी, सिद्धान्तविरोधिनी, सर्वागमविरोधिनी, प्रसिद्धधर्मा और प्रत्यक्षवाधिनी (प्रतिज्ञा) दुष्ट होती है ।

तयैव हि तदर्थस्य विरोधकरणं यथा ।
यतिर्मम पिता बाल्यात्सूनुर्यस्याहमौरसः ।१४।

उसी (प्रतिज्ञा) के द्वारा उसी अर्थ का विरोध (तदर्थविरोधिनी है) जैसे, मेरे पिता बाल्य से ही सन्यासी रहे हैं, मैं जिनका औरस पुत्र हूँ ।

अस्त्यात्मा[4]प्रकृतिर्वेति ज्ञेया हेत्वपवादिनी ।
धर्मिणोऽस्याप्रसिद्धत्वात्तद्धर्मोऽपि[5] न सेत्स्यति ।१५।

"आत्मा अथवा प्रकृति है" इसे हेत्वपवादिनी प्रतिज्ञा समझना चाहिए । इस धर्मी (आत्मा वा प्रकृति) के असिद्ध होने से उसका धर्म (नित्यत्व) भी सिद्ध नहीं होगा ।

शाश्वतोऽशाश्वतो वेति प्रसिद्धे धर्मिणि ध्वनौ ।
जायते भेदविषयो विवादो वादिनोर्मिथः ।१६।

पूर्वसिद्ध धर्मी ध्वनि (शब्द) नित्य है या अनित्य, यह भेद का विषय आदियों के मध्य विवाद बन सकता है ।

स्वसिद्धान्तविरोधित्वाद्विज्ञेया[6] तद्विरोधिनी ।
कणभक्षो यथा शब्दमाचक्षीताविनश्वरम् ।१७।

अपने ही सिद्धान्त की विरोधिनी होने के कारण स्वसिद्धान्तविरोधिनी (प्रतिज्ञा) जानी जाये । जैसे कणाद शब्द को नित्य कहने लगें ।

---

१. विवादास्पद ।
२. विरुद्धधर्मा ।
३. प्रत्यक्षवादिनी ।
४. अस्यात्मा ।
५. तदर्थोऽपि ।
६. विरुद्धत्वात् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वशास्त्रविरुद्धत्वात्सर्वागमविरोधिनी ।
यथाशुचिस्तनुः स्त्रैणी प्रमाणानि न सन्ति वा[1] ।१८।

सभी शास्त्रों के विरुद्ध होने के कारण सर्वागमविरोधिनी (प्रतिज्ञा) कही जाती है। जैसे—स्त्री का शरीर पवित्र है, अथवा प्रमाण नहीं हैं।

आकुमारमसन्दिग्धधर्माहितविशेषणा ।
प्रसिद्धधर्मेति मता श्रोत्रग्राह्यो ध्वनिर्यथा ।१९।

बालक तक जिसके वैशिष्ट्य को असन्दिग्ध रूप से जानते हैं, (वह) प्रसिद्धधर्मा (प्रतिज्ञा) कही जाती है, जैसे ध्वनि कान से सुनी जाती है।

प्रत्यक्षबाधिनी तेन प्रमाणेनैव बाध्यते ।
यथा शीतोऽनलो नास्ति रूपमुष्णः क्षपाकरः[2] ।२०।

प्रत्यक्षबाधिनी (प्रतिज्ञा) उसी (प्रत्यक्ष) प्रमाण से ही बाधित हो जाती है। जैसे, शीतल अग्नि, रूप नहीं है, चन्द्र उष्ण है।

सन्द्वयोः[3] सदृशे सिद्धो व्यावृत्तस्तद्विपक्षतः ।
हेतुस्त्रिलक्षणो ज्ञेयो हेत्वाभासो विपर्ययात् ।२१।

(स्वपक्ष, परपक्ष) दोनों में स्वीकृत, सपक्ष में सिद्ध और विपक्ष से व्यावृत्त, इन तीन लक्षणों वाला हेतु जानना चाहिए। इनके विपर्यय से हेत्वाभास होता है।

सन्द्वयोरिति यः सिद्धः स्वपक्षपरपक्षयोः ।
अभिन्नलक्षणः पक्षः फलभेदादयं द्विधा ।२२।

"सन्द्वयोः" से अभिप्राय है जो स्वपक्ष परपक्ष दोनों में सिद्ध हो। एक ही स्वरूप वाला पक्ष फलभेद के कारण दो प्रकार का हो जाता है।

परपक्षानुपादानं तद्वृत्तेश्चानुदाहृतौ ।
कथमन्यतरासिद्धहेत्वाभासव्यवस्थितिः ।२३।

परपक्ष का उपादान न करने और उसमें हेतु की स्थिति न मानने पर अन्यतरासिद्ध हेत्वाभास की व्यवस्था कैसे होगी ?

साध्यधर्मानुगमतः सदृशस्तत्र यश्च सन् ।
अन्योऽप्यसावेक इव सामान्यादुपचर्यते ।२४।

साध्य (अग्नि) के धर्म से युक्त होने के कारण जो सदृश है—(सदृशः

---

१. यथा शुचिस्तनुस्त्रीणि प्रमाणानि न सन्ति वा ।
२. उष्णश्चन्द्रमा ।
३. सन्पक्षे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पक्षः सपक्षः), उसमें रहता हुआ (हेतु, "सदृशे सिद्धः" कहा जाता है)। भिन्न भी वह सजातीय होने के कारण एक के समान ही उपचरित होता है।

विपक्षस्तद्विसदृशो व्यावृत्तस्तत्र यो ह्यसन्।
इति द्व्यैकानुगतिव्यावृत्ती लक्ष्मसाधुता[1] ।२५।

विपक्ष इस (पक्ष) के समान नहीं होता, इसमें नहीं रहने के कारण वह व्यावृत्त (कहा जाता है)। इस प्रकार दो (पक्ष, सपक्ष) में अनुगति और एक (विपक्ष) में व्यावृत्ति ही हेतु की साधुता है।

साध्यसाधनधर्माभ्यां सिद्धो दृष्टान्त उच्यते।
तद्विपर्ययतो वापि तदाभस्तदवृत्तितः ।२६।

साध्य और साधन (अग्नि और धूम) इन दोनों धर्मों से सिद्ध दृष्टान्त कहा जाता है अथवा वह इनके विपर्यय से भी होता है। उनके नहीं रहने से दृष्टान्ताभास होता है।

साध्येन लिङ्गानुगतिस्तदभावे च नास्तिता।
ख्याप्यते येन दृष्टान्तः स किलान्यैर्द्विधोच्यते ।२७।

साध्य के साथ उसके लिङ्ग (साधन) का रहना और उसके अभाव में न रहना, अन्यों के द्वारा यह दो प्रकार का दृष्टान्त कहा जाता है।

दूषणं न्यूनताद्युक्तिर्न्यूनं हेत्वादिनाऽत्र[2] च।
तन्मूलत्वात्कषायाश्च न्यूनं नेष्टं प्रतिज्ञया ।२८।

न्यूनता आदि का कथन (अनुमान का) दोष है और यह न्यूनता यहाँ हेतु की (इष्ट है)। तर्क के तन्मूलक (प्रतिज्ञामूलक) होने के कारण उसकी न्यूनता अभिमत नहीं है।

जातयो दूषणाभासास्ताः साधर्म्यसमादयः[3]।
तासां प्रपञ्चो बहुधा भूयस्त्वादिह नोदितः ।२९।

दोषों के आभास को जाति कहते हैं और वे साधर्म्यसम आदि हैं। उनका प्रपञ्च अनेक प्रकार का है, (वह) विस्तृत होने के कारण यहाँ नहीं कहा गया।

अपरं वक्ष्यते न्यायलक्षणं काव्यसंश्रयम्।
इदन्तु शास्त्रगर्भेषु काव्येष्वभिहितं यथा ।३०।

(लोक सम्बन्धी) काव्य से सम्बन्धित न्याय का स्वरूप दूसरा ही है।

---

१. इति द्व्यैकानुगतिर्व्यावृत्तिर्लक्ष्मसाधुता।
२. नाऽथ च।
३. समाधयः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(वह अभी) कहा जायेगा। यह विवेचन तो शास्त्राश्रित काव्यों के लिए किया गया है। यथा,

अथ नित्याविनाभावि दृष्टञ्जगति कारणम्।
कारणञ्चेन्न तन्नित्यं नित्यञ्चेत् कारणं न तत्।३१।

संसार में कारण को नित्य और नियत कहा जाता है। परन्तु यदि (वह) कारण है तो नित्य नहीं है, नित्य है तो कारण नहीं है।

लक्ष्मप्रयोगदोषाणां भेदेनानेन[1] वर्त्मना।
सन्धादि साधनं[2] सिद्ध्यै शास्त्रेषूदितमन्यथा।३२।

इस प्रकार प्रतिज्ञा आदि साधन भेदपूर्वक लक्षण, प्रयोग और दोषों की सिद्धि के लिए शास्त्रों में अन्य (ही) प्रकार से कहे गये हैं।

तज्ज्ञैः काव्यप्रयोगेषु तत्प्रादुष्कृतमन्यथा।
तत्र लोकाश्रयं काव्यमागमास्तत्त्वदर्शिनः[3]।३३।

उसके जानने वालों के द्वारा काव्यसम्बन्धी प्रयोगों में उसका अन्य प्रकार से वर्णन हुआ है। उनके मत में काव्य लोकाश्रित होता है और आगम तत्त्वदर्शी।

असिसङ्काशमाकाशं शब्दो दूरानुपात्ययम्।
तदेव वारि[4] सिन्धूनामहो स्थेमा महार्चिषः।
रूपादीनां यथा द्रव्यमाश्रयो नश्यतीति[5] च।३४।

जैसे (लोक में) आकाश तलवार के समान है, यह शब्द दूर तक जाता है, नदियों का पानी वही है, महान् ज्योतियों का स्थैर्य अद्भुत है। (जबकि) रूपादि द्रव्याश्रित होते हैं और (उसी के अनुसार) इनका नाश भी होता है।

इष्टकार्याभ्युपगमं प्रतिज्ञां प्रतिजानते।
धर्मार्थकामकोपानामाश्रयात्सा चतुर्विधा।३५।

इष्ट कार्य के सङ्कल्प को प्रतिज्ञा कहते हैं। धर्म, अर्थ, काम और कोपाश्रया होने के कारण वह चार प्रकार की है।

जरामेष बिभर्मीति प्रतिज्ञाय पितुर्यथा।
तथैव पुरुणाभारि सा स्याद्धर्मनिबन्धनी।३६।

---

१. नानेकवर्त्मना।
२. साधना।
३. दर्शिनः।
४. वापि, सदैव वारि, तदेव वापी।
५. नश्वरीति च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यह मैं जरा को धारण करता हूँ" इस प्रकार पिता के (समक्ष) प्रतिज्ञा करके पुरु के द्वारा वैसा ही किया गया। यह धर्ममूलक (प्रतिज्ञा) है।

उपलप्स्ये स्वयं सीतामिति भर्तुर्निदेशतः।
हनूमता प्रतिज्ञाय सा ज्ञातेत्यर्थसंश्रया।३७।

"मैं स्वयं सीता का पता लगाऊंगा" इस प्रकार अपने स्वामी के निदेश से हनूमान् के द्वारा प्रतिज्ञा करके उसका पता लगाया गया। यह अर्थसंश्रया (प्रतिज्ञा) है।

आहरिष्याम्यमु[1]मद्य महासेनात्मजामिति।
कृत्वा प्रतिज्ञां वत्सेन हृतेति मदनाश्रया।३८।

"मैं आज उस महासेन की पुत्री का हरण करूंगा" (यह) प्रतिज्ञा करके वत्सराज ने (उसका) हरण किया। यह काममूलक (प्रतिज्ञा) है।

भ्रातुर्भ्रातृव्यमुन्मथ्य पास्याम्यस्यासृगाहवे।
प्रतिज्ञाय यथा भीमस्तच्चकारावशो रुषा।३९।

"मैं भाई के शत्रु का मन्थन करके युद्ध में उसका रक्त पिऊंगा", यह प्रतिज्ञा कर भीम ने क्रोध से विवश हो वैसा ही किया। (यह कोपमूलक प्रतिज्ञा है)।

कार्योऽन्यत्र प्रतिज्ञायाः प्रयोगो न कथञ्चन।
परित्यागश्च[2] कर्त्तव्यो नासां चतसृणामपि।४०।

इनके अतिरिक्त प्रतिज्ञा का प्रयोग कहीं नहीं करना चाहिए और इन चारों का परित्याग भी नहीं करना चाहिए।

प्रायोपवेशाय यथा प्रतिज्ञाय सुयोधनः।
राज्याय पुनरुत्तस्थाविति धर्मविरोधिनी।४१।

जिस प्रकार सुयोधन (आमरण) अन्न त्याग कर बैठने की प्रतिज्ञा करके राज्य के लिए फिर उठ गया, यह धर्मविरोधिनी (प्रतिज्ञा) है।

आहूतो न निवर्त्ते[3]हं द्यूतायेति युधिष्ठिरः।
कृत्वा सन्धां शकुनिना दिदेवेत्यर्थबाधिनी।४२।

द्यूत के लिए बुलाए जाने पर मैं पीछे नहीं हटूंगा। यह प्रतिज्ञा करके युधिष्ठिर ने शकुनि के साथ जुआ खेला। यह अर्थबाधिनी प्रतिज्ञा है।

अद्यारभ्य निवत्स्यामि मुनिवद्वचनादिति।
पितुः प्रियाय यां भीष्मश्चक्रे सा कामबाधिनी।४३।

---

१. अमूमद्य।
२. परित्यागस्य।
३. निवर्तेय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"आज से मैं मुनि के समान रहूँगा", इस वचन से पिता के प्रिय के लिए भीष्म ने जो प्रतिज्ञा की, वह कामबाधिनी है।

अत्याजयद्यथा रामः सर्वक्षत्रवधाश्रयाम्।
जामदग्न्यं युधा जित्वा सा ज्ञेया कोपबाधिनी।४४।

राम ने परशुराम को युद्ध में जीतकर जिस प्रकार से उसकी समस्त क्षत्रियों का वध करने की (प्रतिज्ञा को) तुड़वा दिया, वह कोपबाधिनी समझनी चाहिए।

अथाभ्युपगमप्राप्तिः सन्धाभ्युपगमाद्विना।
अनुक्तमपि यत्रार्थादभ्युपैति यथोच्यते।४५।

इसके अनन्तर प्रतिज्ञा किये बिना ही इष्ट की प्राप्ति (कही जाती है), जहाँ (शब्द से) अनुक्त होने पर भी अर्थ से ही (प्रतिज्ञा का) अवगम होता है। जैसे (यह) कहा जाता है—

किमिन्द्रियद्विषा ज्ञेयं को निराक्रियतेऽरिभिः।[1]
को वा गत्वरमर्थिभ्यो न यच्छति धनं लघु।
किमित्ययं[2] तु यः क्षेपः सौकर्यं दर्शयत्यसौ।४६।

जितेन्द्रिय को क्या जानना चाहिए? शत्रुओं के द्वारा कौन निरस्त होता है? कौन अनुदार याचकों को चञ्चल धन नहीं देता? "किम्", यह जो आक्षेप है, वह सुगमता को ही प्रकट करता है।

हेतुस्त्रिलक्ष्मैव मतः काव्येष्वपि सुमेधसाम्।
अन्वयव्यतिरेकौ हि केवलावर्थसिद्धये।४७।

सुमेधा कविओं के काव्यों में भी तीन लक्षणों वाला हेतु ही मान्य है क्योंकि अन्वयव्यतिरेक से ही अर्थ की सिद्धि होती है।

यथाभितो वनाभोगमेतदस्ति महत्सरः।
कूजनात्कुररी[3]णाञ्च कमलानाञ्च सौरभात्।४८।

जैसे, कुररियों के कूजन और कमलों की सुगन्ध से (यह) ज्ञात होता है कि वन प्रदेश के चारों ओर यह विशाल सरोवर है।

अन्यत्रनोऽपि तत्सिद्धि सम्बन्धेन करोत्ययम्।
धूमादभ्रङ्कषात्साग्नेः प्रदेशस्यानुमामिव।४९।

अन्य (पदार्थ का) धर्म भी (उससे) सम्बद्ध होने के कारण, आकाश-

---

१. निराकृतयेऽरिभिः।
२. किमत्ययम्।
३. कुरराणां च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यापी धुएँ से अग्नियुक्त प्रदेश के अनुमान के समान, उसकी सिद्धि कराता है।

अपृथक्कृतसाध्योऽपि हेतुश्चात्र प्रतीयते।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां विनैवार्थगतिर्यथा ।५०।

(जिसमें) साध्य का पृथक् निर्देश नहीं किया गया, ऐसा हेतु भी यहाँ देखा जाता है। (ऐसे में) अन्वय और व्यतिरेक के विना ही अर्थावगम हो जाता है। जैसे,

दीप्रदीपा निशा जज्ञे व्यपवृत्तदिवाकरा।
हेतुः प्रदीपदीप्तत्वमपवृत्तौ रवेरिह ।५१।

चमकते हुए दीपकों वाली रात्रि से सूर्य का अस्त होना ज्ञात होता है। यहाँ दीपकों का उद्दीप्त होना सूर्य के अस्त होने का हेतु है।

तस्यापि सुधियामिष्टा दोषाः प्रागुदितास्त्रयः।
अज्ञानसंशयज्ञानविपर्ययकृतो यथा ।५२।

विद्वानों के द्वारा उसके भी पूर्वोक्त तीन दोष कहे गये गये हैं। ये अज्ञान, संशयज्ञान और विपर्ययज्ञान को उत्पन्न करने वाले हैं। यथा (क्रमशः),

काशा हरन्ति हृदयममी कुसुमसौरभात्।
अपामम्यर्णवर्त्तित्वादेते ज्ञेयाः शरारवः ।५३।

१-ये काश अपने पुष्पों के सौरभ से हृदय का हरण करते हैं। २-जल के समीप रहने से ये पक्षी प्रतीत होते हैं।

असौ शुक्लान्तनेत्रत्वाच्चकोर इति गृह्यताम्।
तुल्यजातावदृष्टत्वात्साध्यत्यचकोरताम् ।५४।

३-नेत्रप्रान्त के शुक्ल होने के कारण उसे चकोर समझना चाहिए। तुल्य जाति में ही (इस धर्म के) अदृष्ट होने के कारण उसका चकोर न होना सिद्ध होता है।

उक्तस्यार्थस्य दृष्टान्तं प्रतिबिम्बनिदर्शनम्।
ननूपमानुमैवास्तु न हेत्वनभिधानतः ।५५।

उक्त वस्तु के समान वस्तु का निर्देश करना दृष्टान्त (कहा जाता है)। तब उपमा अनुमान ही हो? ऐसा नहीं है। (उपमा में) हेतु का अभिधान न होने के कारण।

साध्यसाधनयोर्वृत्तिरुक्ता तत्र हि नेष्यते।[1]
मुखं पद्ममिवेत्यत्र किं साध्यं किञ्च साधनम् ।५६।

---

१. साध्यसाधनयोरुक्तिरुक्तादन्यत्र नेष्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(पूर्व) प्रोक्त साध्यसाधन की स्थिति वहाँ (उपमा में) इष्ट नहीं है। 'मुख कमल के समान है,' यहाँ क्या साध्य और क्या साधन है ?

इति प्रयोगस्य यथा कलावपि भवानिह ।
श्रेयान् वृद्धानुशिष्टत्वापूर्वे कार्तयुगे[1]यथा ।५७।

(जबकि) इस प्रयोग में—जैसे, "वृद्धों के द्वारा अनुशिष्ट होने के कारण पूर्व कृतयुग के समान कलियुग में भी आप श्रेष्ठ हैं" (साध्यसाधनभाव है)।

यत्र दृष्टान्तमात्रेण व्यज्येते साध्यसाधने ।
तमाहुः शुद्धदृष्टान्तं तन्मात्राविष्कृतेर्यथा ।५८।

जहाँ दृष्टान्तमात्र से साध्य और साधन व्यक्त हो जायें उसे शुद्धदृष्टान्त कहते हैं, मात्र उसी (दृष्टान्त) का प्रतिपादन होने के कारण। जैसे—

भरतस्त्वं दिलीपस्त्वं त्वमेवैलः पुरूरवा ।
त्वमेव वीरप्रद्युम्नस्त्वमेव नरवाहनः ।५९।

तुम भरत हो, तुम दिलीप हो तुम ही इलापुत्र पुरुरवा हो। तुम्हीं वीर प्रद्युम्न हो (और) तुम्हीं नरवाहन हो।

कथमेकपदेनैव व्यज्येरन्नस्य ते गुणाः ।
इति प्रयुञ्जते सन्तः केचिद् विस्तरभीरवः ।६०।

किसी प्रकार एक पद से ही इसके वे सब गुण व्यक्त हो जायें, इस प्रकार विस्तार से डरते हुए कुछ विद्वान् ये प्रयोग करते हैं।

पदमेक परं[2] साधु नार्वाचीनं[3] निबन्धनम् ।
वैपरीत्याद् विपर्यासं कीर्तेरपि करोति तत् ।६१।

एक भी चारु पद पर्याप्त है, इसके विपरीत (अचारु) प्रबन्ध भी नहीं। (इससे) विपरीत होने के कारण वह यश को भी विपर्यस्त कर देता है।

अहृद्यमसुनिर्भेदं रसवत्त्वेऽप्यपेशलम् ।
काव्यं कपित्थ्यमामञ्च[4] केषाञ्चित्सदृशं यथा ।६२।

अहृद्य, असुनिर्भेद (जिसका अर्थ करना कठिन है) रसयुक्त होने पर भी अरमणीय कुछ लोगों का काव्य अपक्व कपित्थ के समान होता है। यथा—

प्रजाजनश्रेष्ठवरिष्ठ सूभृ-
च्छिरोर्चिताङ्घ्रेः पृथुकीर्तिधिष्ण्य ।

---

१. कृतयुगे।
२. वरं।
३. नार्वाचीन।
४. माम्रं च। मामंयत्। आमम्=अपक्वम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहिघ्नपद्मस्य जलारिधाम्न-
स्तवैव नान्यस्य सुतस्य वृत्तम् ।६३।

प्रजाजनों में श्रेष्ठ ! वरिष्ठ राजाओं के शिरों से पूजित चरणों वाले विस्तृत कीर्ति के आगार, शत्रुनाशक सेना वाले, सूर्य के समान तेजस्वी चरित्र तुम्हारे ही पुत्र का है, अन्य का नहीं ।

अंशुमद्भिश्च मणिभिः फलनिम्नैश्च शाखिभिः ।
फुल्लैश्च कुसुमैरन्यैर्वाचोऽलङ्कुरुते यथा ।६४।

भास्वर मणियों, फलों से झुके हुए वृक्षों और विकसित पुष्पों (के वर्णन) से अन्य (कविओं) के द्वारा वाणी का अलङ्करण किया जाता है । जैसे,

शुभमरकतपद्मरागचित्रे
सफलसपल्लवभूरिचारुवृत्ते ।
बहुकुसुमविभूषिते स तस्थौ
सुरमुनिसिद्धयुते सुमेरुपृष्ठे ।६५।

शुभ मरकत और पद्मराग (मणियों से) चित्रित, फल और पत्तों सहित अनेक सुन्दर वृक्षों वाले, अनेक कुसुमों से विभूषित, देवता, मुनि और सिद्धों से युक्त उस सुमेरु पर्वत के पृष्ठ पर उसने निवास किया ।

तदेभिरङ्गैर्भूष्यन्ते भूषणोपवनस्रजः ।
वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते ।६६।

इन अङ्गों से (क्रमशः) आभूषण, उपवन और मालाओं की ही शोभा होती है । वाणी में तो शब्द और अर्थ की वक्रता ही चारुत्व की हेतु है ।

विरुद्धपदमस्वर्थं बहुपूरणमाकुलम् ।
कुर्वन्ति काव्यमपरे व्यायताभीप्सया यथा ।६७।

अन्य (कवि) काव्य में विस्तार की इच्छा से विरुद्ध पद, असुन्दर अर्थ, पूरक (नु, खलु आदि) (और) कठिन (शब्दों) की योजना करते हैं । जैसे,

एलातक्कोलनागस्फुटबकुललताचन्दनस्यन्दनाढ्य-
सृक्का[1]कर्पूरचक्रागरुमनः[2]शिलाध्यामकाव्याप्ततीरः ।
शङ्खव्राताकुलान्त[3]स्तिमिमकरकुलाकीर्णवीचीप्रतानो
दध्रे यस्याम्बुराशिःशशिकुमुदसुधाक्षीरशुद्धां सुकीर्त्तिम् ।६८।

---

१. मुक्ता ।
२. गुरुमनः, गरुक ।
३. कुलोन्त ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इलायची, तक्कोल, नागकेशर, स्फुटित मौलश्री की लताओं से (युक्त), चन्दन के स्पन्दन से सम्पन्न, सृक्का, कपूरराशि, अगरु, मैनसिल आदि सुगन्धित पदार्थों से व्याप्त तीर वाले, शङ्खसमूह से परिपूर्ण, तिमि, मकर आदि से व्याप्त, लहरों के विस्तार वाले जिस समुद्र की जलराशि ने चन्द्रमा, कुमुद, अमृत तथा दुग्ध के समान शुद्ध कीर्ति को धारण किया।

इति निगदितास्तास्ता वाचामलङ्कृतयो मया
बहुविधकृतीर्दृष्ट्वाऽन्येषां स्वयं परितर्क्य च।
प्रथितवचसः सन्तोऽभिज्ञाः प्रमाणमिहापरे
गुरुतरधियामस्वाराधं मनोऽकृतबुद्धिभिः।६६।

इस प्रकार मेरे द्वारा अनेक प्रकार की कृतियों को देखकर और स्वयं विचार करके उन उन वाणी के अलङ्कारों का आख्यान किया गया है। शब्द-प्रयोग में लब्धप्रतिष्ठ, सज्जन और विद्वान् इसमें प्रमाण हैं। उत्कृष्ट बुद्धि वालों का मन सीमित बुद्धि वालों से सरलता से प्रसादित नहीं होता।

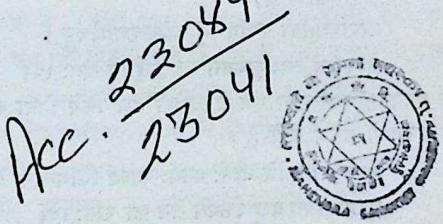

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षष्ठः परिच्छेदः

सूत्राम्भसं पदावर्त्तं पारायणरसातलम् ।
धातूणादिगणग्राहं ध्यानग्रहवृहत्प्लवम् ।१।

सूत्र रूपी जल वाले, वार्तिक रूप भँवर वाले, पारायण (भाष्य) रूप रसातल वाले, धातु, उणादि और गण (पाठ) रूप ग्रहों वाले, मनन रूप विशाल नौका वाले—

धीरैरालोकितप्रान्तममेधोभिरसूयितम् ।
सदोपभुक्तं सर्वाभिरन्यविद्याकरेणुभिः ।२।

धीर व्यक्तियों (वैयाकरणों) के द्वारा दृष्ट प्रान्तप्रदेशों वाले, बुद्धिहीनों के द्वारा निन्दित, अन्य समस्त विद्यारूपी हथिनियों के द्वारा उपभुक्त (जलावगाहन से जैसे हथिनियों की तृप्ति होती है, उसी प्रकार व्याकरण से अन्य विद्यामार्गों का पोषण होता है)—

नापारयित्वा दुर्गाधममुं व्याकरणार्णवम् ।
शब्दरत्नं स्वयङ्गम्यम्[1] लङ्कृर्त्तुमयं जनः ।३।

उस दुरवगाह व्याकरण रूप समुद्र को पार किये विना कोई शब्दरत्न का पारायण करने में समर्थ नहीं है ।

तस्य चाधिगमे यत्नः कार्यः काव्यं विधित्सता ।
परप्रत्ययतो यत्तु क्रियते तेन का रतिः ।४।

काव्यरचना के इच्छुक (कवि) को उसके अवगम के लिए प्रयत्न करना चाहिए । दूसरों के अनुभव से तो जो (काव्यप्रयोग) किया जाता है, उससे क्या आनन्द हो सकता है ।

नान्यप्रत्ययशब्दा वागाविभाति मुदे सताम् ।
परेण घृतमुक्तेव सरसा कुसुमावली ।५।

दूसरों के अनुभव से प्रयुक्त शब्दों वाली वाणी, दूसरे के द्वारा धारण करके छोड़ी गयी सरस पुष्पमाला के समान विद्वानों के आनन्द के लिए कल्पित नहीं होती ।

---

१. स्वङ्गममलङ्कर्तुं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुख्यस्तावदयं न्यायो यत्स्वशक्त्या प्रवर्त्तते ।
अन्य[1]सारस्वता नाम सन्त्यन्योक्तानुवादिनः ।६।

मुख्य न्याय तो यही है कि (कवि) अपनी शक्ति से ही (काव्यमार्ग में) प्रवृत्त हो । अन्योक्त कथनों का अनुवाद करने वाले (कवि) 'अन्यसारस्वत' होते हैं ।

प्रतीतिरर्थेषु यतस्तं शब्दं ब्रुवते परे ।
धूमभासोरपि प्राप्ता शब्दतान्यानुमां प्रति ।७।

दूसरे लोग, जिससे अर्थों की प्रतीति होती है उसे शब्द कहते हैं । (परन्तु ऐसा मानने पर तो) अन्य पदार्थ (अग्नि) की प्रतीति के प्रति धूम और प्रकाश में भी शब्दत्व प्राप्त हो जाएगा ।

नन्वकारादिवर्णानां समुदायोऽभिधेयवान् ।
अर्थप्रतीतये गीतः शब्द इत्यभिधीयते ।८।

(तो फिर) अर्थ की प्रतीति के लिए उच्चरित किया गया अकारादि वर्णों का अर्थ से युक्त समुदाय शब्द कहा जाता है ।

प्रत्येकमसमर्थानां समुदायोऽर्थवान्कथम् ।
वर्णानां क्रमवृत्तित्वान्न्याय्या नापि च संहति ।९।

प्रत्येक असमर्थ (वर्णों का) समुदाय अर्थवान् कैसे हो सकता है ? और फिर वर्णों के क्रमवर्ती होने के कारण समुदाय (की कल्पना) सङ्गत भी नहीं ।

न चापि समुदायिभ्यः समुदायोऽतिरिच्यते ।
दारु भित्तिभुवोतीत्य किमन्यत्सद्म कल्प्यते ।१०।

समुदायियों (अवयवों) से समुदाय (अवयवी) पृथक् भी नहीं होता । (जैसे) लकड़ी, दीवार और भूमि को छोड़कर भवन और किस रूप में कल्पित होता है ।

तस्मात्कूटस्थ इत्येषा शाब्दी वः कल्पना वृथा ।
प्रत्यक्षमनुमानं वा यत्र तत्परमार्थतः ।११।

इसलिए (शब्द) कूटस्थ (नित्य) है, आपकी (वैयाकरणों की) यह शब्दविषयिकी कल्पना वृथा ही है (क्योंकि) जहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान (की गति होती है) वह परमार्थ होता है ।

शपथैरपि चादेयं वचो न स्फोटवादिनाम् ।
नभःकुसुममस्तीति श्रद्दध्यात्कः सचेतनः ।१२।

---

१. अन्ये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शपथ लेकर भी स्फोटवादियों का सिद्धान्त ग्रहण करने योग्य नहीं है। आकाशकुसुम है, इस पर कौन सचेतन विश्वास करेगा।

इयन्त ईदृशा वर्णा ईदृगर्थाभिधायिनः।
व्यवहाराय लोकस्य प्रागित्थं समयः कृतः।१३।

"इतने (और) इस प्रकार के वर्ण इस प्रकार के अर्थ के अभिधायक हैं" (सृष्टि के) प्रारम्भ काल में लोकव्यवहार के लिए इस प्रकार का सङ्केत किया गया है।

स कूटस्थोऽनपायी च नादादन्यश्च कथ्यते।
मन्दाः साङ्केतिकानर्थान्मन्यन्ते पारमार्थिकान्।१४।

(परन्तु) वह (तो) नित्य और अविनाशी है तथा ध्वनि से भिन्न कहा जाता है। मन्दबुद्धि (ही) साङ्केतिक अर्थों को पारमार्थिक समझते हैं।

विनश्वरोऽस्तु नित्यो वा सम्बन्धोऽर्थेन वा सता।
नमोऽस्तु तेभ्यो विद्वद्भ्यः प्रमाणं येऽस्य निश्चितौ।१५।

(शब्द का) सत् अर्थ के साथ सम्बन्ध नित्य हो अथवा अनित्य, जो इसके निश्चय में प्रमाणभूत हैं, उन विद्वानों को नमस्कार।

अन्यापोहेन शब्दोऽर्थमाहेत्यन्ये प्रचक्षते।
अन्यापोहश्च नामान्यपदार्थापाकृतिः किल।१६।

अन्यों (बौद्धों) का कथन है कि शब्द अन्य (वस्तुओं के) अपोह से अर्थ को कहता है। अन्य के अपोह से अभिप्राय है—अन्य पदार्थों का निराकरण।

यदि गौरित्ययं शब्दः कृतार्थोऽन्यनिराकृतौ।
जनको गवि गोबुद्धेर्मृग्यतामपरो ध्वनिः।१७।

यदि 'गौ' यह शब्द अन्य (पदार्थों की) निराकृति में ही कृतार्थ हो गया तो गो (पदार्थ) में गोबुद्धि को उत्पन्न करने वाली अन्य ध्वनि ढूँढनी होगी।

अर्थज्ञानफलाः शब्दा न चैकस्य फलद्वयम्।
अपवादविधिज्ञाने फले चैकस्य वः कथम्।१८।

शब्द अर्थज्ञानरूप फल वाले हैं और एक (वस्तु) के दो फल नहीं हो सकते। अपवादविधि के ज्ञान और फल में तुम्हारे एक ही (शब्द) की (सार्थकता) कैसे हो सकती है।

पुरा गौरिति विज्ञानं गोशब्दश्रवणाद् भवेत्।
येनागोप्रतिषेधाय प्रवृत्तो गौरिति ध्वनिः।१९।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहले 'गौ' शब्द के श्रवण से 'गो' (यह पदार्थ है) ऐसा ज्ञान होता है, जिससे (उसके बाद) गोभिन्न के प्रतिषेध में 'गो' यह ध्वनि प्रवृत्त होगी।

वर्णाभेदादिदं भिन्नं वर्णाः स्वांशविकल्पतः।
के शब्दाः किञ्च तद्वाच्यमित्यहो वर्त्म दुस्तरम् ।२०।

वर्ण के भेद से शब्द भिन्न हो जाता है (और) वर्ण अपने अंशों के भेद से (भिन्न हो जाते हैं)। (तब) शब्द क्या है और उसका वाच्य क्या है? इसके विवेचन का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है।

द्रव्यक्रियाजातिगुणभेदात्तो च चतुर्विधाः।
यदृच्छाशब्दमप्यन्ये[1] डित्थादि[2] प्रतिजानते ।२१।

और वे (शब्द) द्रव्य, क्रिया, जाति और गुण के भेद से चार प्रकार के होते हैं। अन्य (विद्वान्) डित्थादि यदृच्छा शब्द को भी स्वीकार करते हैं।

नानाभाषाविषयिणामपर्यन्तार्थवर्त्तिनाम्।
इयत्ता केन वाऽमीषां विशेषादवधार्यते ।२२।

अनेक भाषाओं में वर्त्तमान और अनन्त अर्थों के विषयीभूत इन (शब्दों) की सीमा सम्पूर्ण रूप से कौन निर्धारित कर सकता है।

वक्रवाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधवः।
प्रयोक्तुं ये न युक्ताश्च तद्विवेकोऽयमुच्यते ।२३।

जो (शब्द) वक्रोक्तिनिपुण कवियों के प्रयोग के लिए उपयुक्त हैं, और जो प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं हैं, यह (संक्षेप में) उनका विवेचन किया जा रहा है।

नाप्रयुक्तं प्रयुञ्जीत चेतः संमोहकारिणम्।
तुल्यार्थत्वेऽपि हि ब्रूयात्को हन्तिं गतिवाचिनम् ।२४।

मन को भ्रमित करने वाले अप्रयुक्त (शब्द) का प्रयोग न करे। समान अर्थ होने पर भी गतिवाची हन् धातु को (काव्यव्यहार) में कौन कहेगा।

श्रौत्रादि[3] न तु दुर्बोधं न दुष्टादिमपेशलम्।
ग्राम्यं न पिण्डीशूरादि न डित्थादिमपार्थकम् ।२५।

न तो 'श्रौत्र' आदि दुर्बोध, न 'दुष्ट' आदि अपेशल, न 'पिण्डीशूर' आदि ग्राम्य और न डित्थादि अपार्थक (शब्दों का काव्य में प्रयोग करे)।

---

१. मित्यन्ये।
२. डित्थादि।
३. श्रोत्रादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाऽप्रतीतान्यथार्थत्वं धात्वनेकार्थतावशात् ।
न लेशज्ञापकाकृष्टं स हन्ति ध्याति वा यथा ।२६।

धातु के अनेकार्थक होने के कारण अप्रसिद्ध दूसरे अर्थ का (प्रयोग न करे) और न लेशमात्र ज्ञापक से आकृष्ट होकर (धातु का अन्यथा प्रयोग करे) जैसे 'स हन्ति' (में गतिवाचक √हन् का प्रयोग है) और 'स ध्याति' (में दिवादिगणीय √ध्या का गणकार्य अनित्य होने के कारण अन्यथा प्रयोग है) ।

न शिष्टैरुक्तमित्येव न तन्त्रान्तरसाधितम् ।
छन्दोवदिति चोत्सर्गान्नि चापिच्छान्दसं वदेत् ।२७।

शिष्टों के द्वारा उक्त है, केवल इसलिए (असाधु शब्दों का प्रयोग) न करे । न अन्य शास्त्रों से साधित (शब्दों का प्रयोग करे) और 'छन्दोवत्' इस नियम से वैदिक (शब्दों का) व्यवहार न करे ।

क्रमागतं श्रुतिसुखं शब्दमर्थ्यमुदीरयेत् ।
अतिशेते ह्यलङ्कारमन्यं व्यञ्जनचारुता ।२८।

पारम्परिक, श्रुतिसुखद, अर्थयुक्त शब्द का प्रयोग करे । वर्णसौन्दर्य अन्य (सभी) अलङ्कारों से उत्कृष्ट है ।

सिद्धो यश्चोपसंख्यानादिष्ट्या यश्चोपपादितः ।
तमाद्रियेत प्रायेण न तु योगविभागजम् ।२९।

जो (शब्द) उपसंख्यान (वार्त्तिक) से सिद्ध हो और जो इष्टि से उपपन्न हो उसी का प्रयोग करना चाहिए, योगविभाग से निष्पन्न (शब्द का) नहीं ।

इयं चन्द्रमुखी कन्या प्रकृत्यैव मनोहरा ।
अस्यां सुवर्णालङ्कारः पुष्णाति नितरां श्रियम् ।३०।

यह चन्द्र के समान मुख वाली कन्या प्रकृति से ही सुन्दर है । सुवर्ण के आभूषण इसके सौन्दर्य को अत्यधिक पुष्ट कर रहे हैं ।

वृद्धिपक्षं प्रयुञ्जीत सङ्क्रमेऽपि मृजेर्यथा ।
मार्जन्त्यधररागं ते पतन्तो वाष्पबिन्दवः ।३१।

सङ्क्रम (गुणवृद्धि का अभाव और प्राप्ति) होने पर भी (गुण) वृद्धिपक्ष का ही प्रयोग करे, जैसे (√मृज् से 'मार्जन्त्यधररागम्' में)। गिरती हुई आँसु की बूँदे तुम्हारे अधरराग को धो रही हैं ।

सरूपशेषं तु पुमान् स्त्रिया यत्र च शिष्यते ।
ययाह वरुणाविन्द्रौ भवौ शर्वौ मृडाविति ।३२।

'पुमान् स्त्रिया' सूत्र से जहाँ सरूपशेष (पुंवाची शब्द) अवशिष्ट रहता है, वह कहा जाना चाहिए । जैसे—वरुणौ, इन्द्रौ, भवौ, शर्वौ, मृडौ आदि ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा पटयतीत्यादि णिच्प्रातिपदिकात्ततः ।
णाविष्ठवदितीष्ट्या च तथा क्रशयतीत्यपि ।३३।

जिस प्रकार प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय करके 'पटयति' इत्यादि रूप (बनते हैं) उसी प्रकार 'णाविष्ठवत्' इस इष्टि से 'क्रशयति' इत्यादि भी (ग्राह्य हों)।

प्रयुञ्जीताव्ययीभावमदन्तं नाप्यपञ्चमी ।[1]
तृतीयासप्तमीपक्षे[2] नालुग्विषयमानयेत् ।३४।

अदन्त अव्ययीभाव का प्रयोग करना चाहिए, यद्यपि पञ्चमी में नहीं। तृतीया और सप्तमी में अलुक् विषय का प्रयोग न करे।

तिष्ठद्गुप्रभृतौ वाच्यौ नक्तंदिवसगोचरौ ।
यथा विद्वानधीतेऽसौ तिष्ठद्गु च वहद्गु च ।३५।

तिष्ठद्गु प्रभृति में रात और दिन के वाचक (तिष्ठद्गु और वहद्गु) का प्रयोग करना चाहिए। जैसे, "विद्वानधीतेऽसौ तिष्ठद्गु च वहद्गु च।" (वह विद्वान् दिन-रात पढ़ता है)।

शिष्टप्रयोगमात्रेण न्यासकारमतेन वा ।
तृचा समस्तषष्ठीकं न कथञ्चिदुदाहरेत् ।३६।

शिष्टप्रयोग मात्र से अथवा न्यासकार के मत से (प्रभावित होकर) तृच् के साथ षष्ठीसमास किसी प्रकार भी नहीं करना चाहिए—

सूत्रज्ञापकमात्रेण वृत्रहन्ता यथोदितः ।
अकेन च न कुर्वीत वृत्तिं तद्गमको यथा ।३७।

जैसे सूत्रज्ञापक मात्र से वृत्रहन्ता कहा गया है। इसी प्रकार 'अक' के साथ भी समास नहीं करना चाहिए, जैसे—तद्गमकः।

पञ्चराजीति च यथा प्रयुञ्जीत द्विगुं स्त्रियाम् ।
नपुंसकं तत्पुरुषं पुरुहूतसभं यथा ।३८।

द्विगु समास का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग करना चाहिए, जैसे पञ्चराजी और तत्पुरुष का नपुंसकलिङ्ग में, जैसे—पुरुहूतसभम्।

सर्वेभ्यश्च भृशादिभ्यो वदेल्लुप्तहलं यथा ।
प्रियोन्मनायते सा ते किं शठाभिमनायसे ।३९।

समस्त भृशादिगणीय शब्दों के हल् का लोप करना चाहिए। जैसे, प्रियोन्म-

---

१. पञ्चमि, मदान्तादप्यपञ्चमि।
२. पक्षं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नायते सा ते किं शठाभिमनायसे"। (वह तुम्हारी प्रिया उन्मत्त हो रही है शठ! किसलिए अभिमान करता है?)"

तृतीयैकवचः षष्ठ्यामामन्तञ्च वदेत्क्विपि।
ययोदितं वलभिदा सुरुचां विद्युतामिव।४०।

क्विप् (प्रत्यय) में तृतीया एकवचन और आमन्त (षष्ठी वहुवचन) का कथन होना चाहिए। जैसे 'वलभिदा' (वल का भेदन करने वाले (इन्द्र) के द्वारा) और 'सुरुचां विद्युताम्' (सुन्दर चमक वाली बिजलियों के), ऐसे प्रयोग किये जाते हैं।

असन्तमपि यद्वाक्यं तत्तथैव प्रयोजयेत्।
ययोच्यतेऽम्भसा भासा यशसाम्भसामिति।४१।

'अस्' अन्त वाले जो पद हैं उनका प्रयोग भी उसी प्रकार (३/१ तथा ६/३) होना चाहिए। जैसे—अम्भसा, भासा, यशसाम्, अम्भसाम् कहा जाये।

पुंसि स्त्रियाञ्च क्वस्वन्तमिच्छन्त्यच्छान्दसं किल।
उपेयुषामपि दिवं यथा न व्येति चारुता।४२।

क्वसु प्रत्ययान्त शब्द लौकिक भाषा में भी पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में (प्रयुक्त किये जाने चाहिएं)। जैसे (पुल्लिङ्ग में) "दिवमुपेयुषामपि चारुता न व्येति"। (यहां 'उपेयुषाम्' उप उपसर्गपूर्वक √इण् से क्वसु प्रत्ययान्त का षष्ठी वहुवचन रूप है।)

इभकुम्भनिभे[1] बाला दधुषी कञ्चुके[2] स्तने।
रतिखेदपरिश्रान्ता जहार हृदयं नृणाम्।४३।

गजकुम्भ के समान स्तन पर कञ्चुक धारण किए हुए, रतिखेद से क्लान्त वाला मनुष्यों के हृदय का हरण कर रही थी। (यहाँ 'दधुषी' क्वसु प्रत्ययान्त √धा का स्त्रीलिङ्ग रूप है)

शवलादिभ्योऽतितरां भाति णिज्विहितो यथा।
बलाकाः पश्य सुश्रोणि घनाञ्छवलयन्त्यमूः।४४।

शवल आदि शब्दों से विहित णिच् प्रत्यय अत्यन्त सुशोभित होता है। जैसे ('शवलयन्त्यमूः' में शवल से णिच् प्रत्यय है)। हे सुश्रोणि! वे बगुलियां मेघों को रङ्गबिरङ्गा बना रही हैं। (तथा)-

---

१. निभौ

२. कन्तुके, कञ्चुकौ, कञ्चके।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिशिरासारकणिकासदृशः सेतुगन्धवाट्[1] ।
त्वां वीजयति[2] सुश्रोणि रतिखेदालसेक्षणाम् ।४५।

हे सुश्रोणि ! शीतल जल की फुहारों के समान मलयपवन रतिखेद से श्रान्त दृष्टि वाली तुम्हें पंखा झल रहा है ।

एवं णिचः प्रयोगस्तु सर्वत्रालङ्कृतिः परा ।
लिङ्त्रयोपपन्नञ्च ताच्छील्यविषयं णिनिम् ।४६।

इस प्रकार णिच् का प्रयोग सर्वत्र परम शोभाधायक है । ताच्छील्यविषयक णिनि तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होना चाहिए । (यथा)—

तस्या हारी स्तनाभोगो वदनं हारि सुन्दरम् ।
हारिणी तनुरत्यन्तं कियन्न हरते मनः ।४७।

उसका मनोहारी स्तनपरिणाह, मनोहारी सुन्दर मुख, अत्यन्त मनोहारी शरीर कितना मन नहीं हरते ।

ताच्छील्यादिषु चेष्यन्ते सर्व एव तृनादयः[3] ।
विशेषेण च[4] तत्रेष्टा युच्कुरञ्वरजिष्णुचः ।४८।

ताच्छील्य आदि में तृन् आदि सभी प्रत्यय इष्ट हैं । वहाँ भी युच्, कुरच्, वरच् और इष्णुच् (प्रत्यय) विशेष रूप से इष्ट हैं ।

क्तिन्नन्तञ्च प्रयुञ्जीत सङ्कृतिः संहतिर्यथा ।
शाकारौ[5] जागुरिष्टौ च जागर्या जागरा यथा ।४९।

क्तिन्नन्त (पदों) का प्रयोग करना चाहिए, जैसे—सङ्कृतिः, संहतिः । जागृ से श और अ प्रत्यय इष्ट हैं, अतः जागर्या और जागरा (दोनों रूप निष्पन्न होते हैं) ।

उपासनेति च युचं नित्यमासेः प्रयोजयेत् ।
ल्युटञ्च कर्तृविषयं देवनो रमणो यथा ।५०।

√आस् से नित्य युच् प्रत्यय का प्रयोग करना चाहिए, जैसे—उपासना । कर्तृविषयक ल्युट् का भी (प्रयोग करना चाहिए) जैसे देवन, रमण ।

---

१. ते तु कङ्कवत् । गङ्गवत् । गाङ्गवत् । विकिरस्ते तरङ्गवत् ।
२. संवीजयति ।
३. एवात्र नादयः ।
४. विशेषेणैव ।
५. शकारौ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अण्णन्तादपि ङीबिष्टो लक्ष्मीः पौरन्दरी यथा ।
अञ्महारजना[1]ल्लाक्षारोचनाभ्यां तथा च ठक् ।५१।

अणन्त से भी (स्त्रीत्वविवक्षा में) ङीप् इष्ट है, जैसे—'पौरन्दरी लक्ष्मी' । उसी प्रकार महारजन से अञ् (तथा) लाक्षा और रोचना से ठक् (होता है) (इससे लाक्षिक और रोचनिक शब्द बनते हैं) ।

ङ्मतुबिष्टञ्च कुमुदाद्यथेयं भूः कुमुद्वती ।
ठक् चापि तेन जयतीत्याक्षिकः शास्त्रिको यथा ।५२।

कुमुद से ङ्मतुप् प्रत्यय इष्ट है, जैसे—इयं भूः कुमुद्वती' । 'तेन जयति' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय भी (इष्ट है) जैसे—आक्षिकः, शास्त्रिकः ।

हितप्रकरणे णञ्च सर्वशब्दात्प्रयुज्यते ।
ततश्छमिष्ट्या च यथा सार्वः सर्वीय इत्यपि ।५३।

हितप्रकरण में 'सर्व' शब्द से 'ण' (प्रत्यय) भी प्रयुक्त होता है । उसी से इष्टि के द्वारा छ प्रत्यय भी होता है (तथा) सार्वः, सर्वीयः ये दो रूप बनते हैं।

वदेर्दिमनिजन्तञ्च पटिमा लघिमा यथा ।
विशेषेणेयसुन्निष्टो ज्यायानाप कनीयसीम् ।५४।

इमनिच् प्रत्यय का प्रयोग करना चाहिए, जैसे पटिमा, लघिमा । ईयसुन् (प्रत्यय) विशेष रूप से इष्ट है, जैसे—"ज्यायानाप कनीयसीम्" । (बड़ी आयु वाले ने कम आयु वाली को प्राप्त किया) ।

द्वयसज्दघ्नचाविष्टौ प्रमाणविषयौ यथा ।
जानुदघ्नी सरिन्नारीनितम्बद्वयसं सरः ।५५।

प्रमाणविषय में द्वयसच् और दघ्नच् प्रत्यय इष्ट हैं, जैसे—"जानुदघ्नी सरित्,' और "नारीनितम्बद्वयसं सरः (घुटनों तक नदी और नारी के घुटनों तक गहरा सरोवर) ।

मतुप्प्रकरणे ज्योत्स्नातमिस्रास्शृङ्गिणादयः ।
इनच्च फलवर्हाभ्यां फलिनो बर्हिणो यथा ।५६।

मतुप् प्रकरण में ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिणः आदि शब्द, (जो निपात से सिद्ध होते हैं) इष्ट हैं । फल और बर्ह (शब्दों) से इनच् भी इष्ट है, जैसे फलिनः और बर्हिणः ।

इनिः प्रयुक्तः प्रायेण तथा ठंश्च मनीषिभिः ।
तत्रापि मेखलामालामायानां सुतरां मता ।५७।

---

१. अण् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(मतुवर्थ) में विद्वानों ने 'इनि' और 'ठन्' प्रत्ययों का प्रयोग प्रायः किया है। उनमें भी मेखला, माला और माया (शब्दों) से ये (प्रत्यय) अधिक अभिमत हैं।

अभ्यस्ताज्झेरदादेशे दधतीत्यादयोऽपि च।
रोदिति स्वपितीत्यादि सहेटा सार्वधातुकम् ।५८।

अभ्यस्त 'झि' से 'अत्' आदेश होने पर 'दधति' इत्यादि भी और 'इट्' से युक्त 'रोदिति', 'स्वपिति' इत्यादि सार्वधातुक (भी विद्वानों को इष्ट हैं)।

अभ्यस्तेषु प्रयोक्तव्यमदन्तं घुभृज्ञोः शतुः[1]।
असौ दधदलङ्कारं स्रजं बिभ्रच्च शोभते ।५९।

अभ्यस्त संज्ञक, घु संज्ञक और √भृ से शतृ का अदन्त करना चाहिए। जैसे 'असौ दधदलङ्कारं स्रजं बिभ्रच्च शोभते' (वह अलङ्कार धारण किये हुए और माला पहने हुए शोभित होता है) (में दधत् और बिभ्रत् का प्रयोग हुआ है)।

न तवर्गं शकारेण क्वचित्संयोगिनं वदेत्।
यथैतच्छ्यामभाति वनं वनजलोचने ।६०।

तवर्ग का शकार के साथ संयुक्त प्रयोग कहीं नहीं करना चाहिए, जैसे (एतच्छ्यामम्" में त् और श् का सन्धियुक्त प्रयोग है)। हे कमल नयने! यह श्याम वन भासित होता है।

नैकत्रौकारभूयस्त्वं गतो यातो हतो यथा।
सावर्ण्यवज्झयो हस्य[2] ब्रूयान्नान्यत्र पद्धतेः ।६१।

एक स्थान पर ओकार का बाहुल्य नहीं होना चाहिए, जैसे—'गतो यातो हतो' (में हुआ है)। झय् से परवर्ती हकार का 'पद्धति' शब्द को छोड़कर पूर्ववर्णसावर्ण्यभाव नहीं करना चाहिए।

शालातुरीयमतमेतदनुक्रमेण
को वक्ष्यतीति विरतोऽहमतो विचारात्।
शब्दार्णवस्य यदि कश्चिदुपैति पारं
भीमाम्भसश्च जलधेरिति विस्मयोऽसौ ।६२।

शालातुरीय (पाणिनि) के इस मत को क्रम से कौन कह सकता है। इसलिए मैं इस विचार से विरत हो रहा हूँ। व्याकरण रूप समुद्र और भयङ्कर जल वाले समुद्र को यदि कोई पार कर ले तो यह आश्चर्य ही है।

---

१. अदन्तञ्च विदेः शतुः।
२. सावर्ण्यावत्सयोभस्य, सावर्ण्यवत्सयोभस्य।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्यानां सततमपाश्रयोऽपरासां
तासूक्तान्न च विरुणद्धि कांश्चिदर्थान् ।
श्रद्धेयं जगति मतं हि पाणिनीयम् ।
माध्यस्थ्याद् भवति न कस्यचित्प्रमाणम् ।६३।

यह अन्य विद्याओं का अजस्र आश्रय है और उनमें उक्त विषयों का कहीं विरोध (भी) नहीं करता । (अत एव) पाणिनीय मत जगत् में श्रद्धा के योग्य है जो मध्यस्थ होने के कारण किसके लिए प्रमाण नहीं बन जाता ।

अवलोक्य मतानि सत्कवीना—
मवगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्म ।
सुजनावगमाय भामहेन
ग्रथितं रक्रिलगोमिसूनुनेदम् ।६४।

सत्कवियों के मतों का अवलोकन करके और अपनी बुद्धि से काव्य के स्वरूप का विचार करके रक्रिलगोमि के पुत्र भामह ने सज्जनों के ज्ञान के लिए यह (काव्यशास्त्र) ग्रथित किया है ।

षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्या त्वलङ्कृतिः ।
पञ्चाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः ।६५।
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येवं वस्तुपञ्चकम् ।
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैर्भामहेन क्रमेण वः ।६६।

साठ (श्लोकों से काव्य का) शरीर निर्णीत किया गया है, एक सौ साठ से अलङ्कारविवेचन, पचास से (काव्य के) दोषों का दर्शन तथा सत्तर से न्याय सम्बन्धी निर्णय (किया गया है) । साठ (श्लोकों से) शब्द की शुद्धि (निर्णीत है)। इस प्रकार भामह के द्वारा आपके लिए क्रमशः पाँच विषय छः परिच्छेदों में कहे गये हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-१

टिप्पणियाँ

प्रथम परिच्छेद

१. यह पद्य प्रकृत ग्रन्थ का मङ्गलाचरण है। इसमें मन, वाणी और शरीर के कर्मों से भगवान् शिव (सर्वज्ञ) को प्रणाम किया गया है। मानसिक कर्म से अभिप्राय स्मरणचिन्तन तथा जपादि से है। वाचिक कर्म में स्तोत्रपाठादि का ग्रहण होता है तथा शरीर कर्म प्रणिपातादि हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में शिव को प्रणाम करना सर्वथा समुचित ही है—**विद्याकामः शिवं यजेत**।

सर्वज्ञ शब्द अमरकोश में बुद्ध के पर्यायों में भी परिगणित है—**सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः**। (अ०को० १/१३) इस प्रमाण के आधार पर लम्बे समय तक भामह के बौद्ध होने का विवाद प्रबल रहा जो अन्य अन्तःसाक्ष्यों से बाधित हो जाता है।

सर्व से ण प्रत्यय होकर निष्पन्न होने वाला 'सार्व' शब्द भामह का प्रिय प्रयोग है—**हितप्रकरणे णं च सर्वशब्दात्प्रयुञ्जते**। —(का०अ० ६/५३)

सार्व के स्थान पर एक पाठ शर्व भी मिलता है।

२. यह कारिका काव्य के प्रयोजनों का निर्देश करती है। भामह प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने चतुर्वर्ग की काव्य के प्रयोजन के रूप में स्थापना की है। भामहविवरण की प्रति में इस सन्दर्भ में **धर्मादिषु मुख्येष्वपि** ये शब्द मिलते हैं। कदाचित् उद्भट धर्मादि को काव्य के मुख्य तथा अन्य को गौण प्रयोजन मानते थे। कलाओं में नैपुण्य तथा प्रीति और कीर्त्ति की प्राप्ति काव्य के अन्य प्रयोजन हैं।

भामह के अनुसार **वैचक्षण्यं कलासु च** काव्य का एक प्रयोजन है। अन्यत्र (५/४ में) **न सा कला जायते यन्न काव्याङ्गम्** इत्यादि स्थल पर उन्होंने कला को काव्य का अङ्ग भी बताया है। विविध कलाओं का कान्ता-सम्मित रीति से आख्यान काव्य में किया जाता है, अतः काव्य का रसास्वादन करते हुए सहृदय रसिक को उन कलाओं का परिज्ञान होता ही है। कला की काव्याङ्गता भामह की सरणि में ही वामन को भी अभीष्ट है। काव्य स्वयम् एक कला है और प्रत्येक कला भी काव्य का विषय बन सकती है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कला सङ्कुलना प्रज्ञा शिल्पान्यस्याश्च गोचरः (का०अ० ४/३३)। अत एव इसके निषेवण से कलाओं में निपुणता की प्राप्ति होती है।

तृतीय चरण में कीर्तिं करोति प्रीतिं च यह पाठ भी मिलता है।

चतुर्थ चरण में 'निवन्धनम्' के स्थान पर सा०द० आदि ग्रन्थों में निषेवणम् पाठ भी प्राप्त होता है। यह निश्चय ही अधिक व्यापक है क्योंकि इसमें कवि, भावक, सहृदय सभी का ग्रहण हो जाता है परन्तु उपलब्ध सभी संस्करणों में निबन्धनम् पाठ ही मिलता है। यहाँ प्रसङ्ग भी कवित्व का ही है।

काव्यशास्त्र का प्रयोजन सहृदय की काव्य में प्रवृत्ति का उपदेश करना है। अतएव यहाँ काव्य के विविध अङ्गों का निरूपण किया जाता है। परन्तु सहृदय की काव्य में प्रवृत्ति हो सके, इसलिए आचार्य प्रयोजन के माध्यम से काव्य के गौरव का वर्णन करते हैं। अतः ये वस्तुतः काव्य के प्रयोजन हैं, शास्त्र के साथ इनका साङ्कर्य नहीं होना चाहिए।

५. इस कारिका में काव्य के प्रधान हेतु प्रतिभा का महत्त्व प्रदर्शित करने के साथ-२ शास्त्रों की तुलना में काव्य की गरिमा भी बतलायी गयी है। यहाँ भामह की यह प्रबल इच्छा भी अभिव्यक्त होती है कि वे विदग्ध-गोष्ठियों में न्यायादि शास्त्रों के समकक्ष काव्य चर्चा को भी प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसी प्रकार का प्रयास अग्निपुराण (३३७/३) में भी परिलक्षित होता है—नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा। कवित्व दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।

यहाँ काव्य के प्रसिद्ध तीन हेतुओं में से प्रथम प्रतिभा का उल्लेख है। आगे ९वीं और १०वीं कारिका में व्युत्पत्ति और अभ्यास का विवेचन किया गया है। भामह इस सन्दर्भ में प्रतिभावादी प्रतीत होते हैं। कश्मीरदेशीय आचार्य प्रतिभा को ही काव्य का मूल हेतु मानते रहे हैं जबकि दक्षिण भारतीय आचार्य व्युत्पत्ति को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देते हैं। भामह तो प्रतिभा के अभाव में कवित्व की सम्भावना का ही निषेध करते हैं। हाँ, यदि जन्मजात प्रतिभा हो तो व्युत्पत्ति और अभ्यास से उसमें संस्कार अवश्य आता है।

९. वैसे तो ज्ञान का प्रत्येक कण छात्रकवियों के अध्ययन का विषय हो सकता है—न स शब्दो न तद्वाच्यं, न स न्यायो न सा कला। जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान्कवेः। तथापि इस कारिका में मुख्य विषयों का उल्लेख मात्र कर दिया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिधानार्थाः पद का व्याख्यान भामहविवरण में शब्दानामर्थाः इस प्रकार उपलब्ध हुआ है। वहाँ इस सन्दर्भ में अभिधा और गुणवृत्ति का भी उल्लेख किया गया था। पी. वी. नागनाथ शास्त्री ने अभिधान का अर्थ Nature of words (as conveying primary & secondary sense) तथा अर्थ शब्द का अर्थ meanings of words किया है।

चतुर्थ चरण में काव्यहेतवः के स्थान पर अनेक पाठभेद मिलते हैं। उपर्युक्त पाठ भामहविवरण के संस्करण में प्राप्त होता है।

१३-१५ भामह की ये तीन कारिकायें मम्मट सहित अनेक उत्तरवर्ती आचार्यों के द्वारा उद्धृत की जाती रही हैं। इनमें आचार्य ने अपने युग में प्रचलित आलङ्कारिकों के दो वर्गों की ओर सङ्केत किया है। ये दोनों ही आचार्य यह तो स्वीकार करते हैं कि अलङ्कारों से काव्य की शोभा उसी प्रकार बढ़ती है जैसे आभूषणों से स्त्री का मुख सुन्दर प्रतीत होता है परन्तु इनमें से कुछ रूपकादि अर्थालङ्कारों को काव्य का बाह्य धर्म मानते हैं। उनके अनुसार वाणी का वास्तविक अलङ्करण संज्ञा और क्रिया शब्दों के विशिष्ट प्रयोग से ही होता है। वामन ने इसके लिए पदानुपूर्वी शब्द का प्रयोग किया—किन्त्वस्ति काचिदपरैव पदानुपूर्वी, यस्यां न किञ्चिदपि किञ्चिदिवावभाति। आनन्दयत्यथ च कर्णपथं प्रयाता, चेतः सममृतवृष्टिरिव प्रविष्टा। आचार्य राजशेखर ने इसी मत के समर्थक किन्हीं मङ्गल नामक आचार्य का उल्लेख किया है। यह सिद्धान्त विशेष रूप से दक्षिण भारत के आलङ्कारिकों में प्रसिद्ध था। कश्मीरी पण्डितों का मत इसके विपरीत है। उनका यह मानना है कि इस सौशब्द्य पद्धति से अर्थ में संस्कार नहीं आ पाता, जो काव्यचारुत्व के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी है।

भामह ने शब्दतः इन दोनों परम्पराओं को समान आदर के साथ स्वीकार किया है परन्तु उनके ग्रन्थ के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि उनका अपना आग्रह भी अर्थ के प्रति ही अधिक है क्योंकि काव्य की प्राणभूता वक्रोक्ति अर्थ को ही प्रधानतया विभावित करती है—अनयार्थो विभाव्यते। हाँ, शब्दप्रयोग के प्रति भी सत्कवि को सतर्क अवश्य रहना चाहिए।

१७. प्रथम चरण में प्रायः उपलब्ध 'वृत्त' के स्थान पर 'वृत्तं' पाठ स्वीकार किया गया है। अतः इसका अन्वय इस प्रकार होगा—देवादिचरितंसि वृत्तं चोत्पाद्यवस्तु च कलाशास्त्राश्रयञ्चेति पुनश्चतुर्धा भिद्यते।

कला और शास्त्राश्रित काव्यों से भामह का वास्तविक अभिप्राय क्या है, यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता। उद्भट के टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी भामह की इस कारिका पर टिप्पणी की है। उन्होंने कलाश्रय शब्द से भरतादि के ग्रन्थ (नाट्यशास्त्र) तथा शास्त्राश्रय से व्याकरणादि का ग्रहण माना है परन्तु इन दोनों ही प्रकार के ग्रन्थों का काव्यत्व तो सिद्ध नहीं होता। आनन्दवर्धन ने एक स्थल पर महाभारत को शास्त्रकाव्य की छाया से युक्त कहा है। भट्टिकाव्य इस प्रकार की रचना अवश्य हो सकती है और यह काव्य कदाचित् भामह के समक्ष उपस्थित भी रहा हो। पाण्डित्यप्रदर्शन के उस युग में इसी प्रकार के अन्य काव्यों के अस्तित्व का भी निषेध नहीं किया जा सकता परन्तु भामह के बाद किसी और आचार्य ने काव्यभेद के रूप में इन्हें मान्यता प्रदान नहीं की।

२२-२३. नायक का उत्कर्षकथन काव्य का एक आवश्यक अङ्ग है। दुःखान्त की परम्परा भारतीय साहित्य में उपलब्ध नहीं होती। नायक अपने महनीय गुणों के कारण समस्त काव्य में व्याप्त रहता है तथा अन्त में विजय और कथा के फल को प्राप्त करता है। कथा के पूर्व और मध्यभाग में उसके गुणों का स्तवन तथा अन्त में शत्रुविजय के द्वारा उसका प्रकर्ष सूचित किया जाये, यह मार्ग सहज रूप से मधुर है। परन्तु कुछ काव्य ऐसे भी भामह को उपलब्ध थे जिनमें पहले शत्रु के गुणों का वर्णन है और अन्त में नायक की उस पर विजय प्रदर्शित की गयी है। यह मार्ग भामह को मान्य नहीं था। उन्होंने दो कारिकाओं में जमकर इस पद्धति का विरोध किया है। पहले उसके वंश, बल और ज्ञान की प्रशंसा करके पुनः उसका वध प्रदर्शित कर देना उचित नहीं है। यदि काव्य में उस चरित्र की व्यापकता अभीष्ट नहीं है तो फिर केवल स्तुति मात्र के लिए कथा के पूर्वभाग में उसका ग्रहण करना भी व्यर्थ है। दण्डी को यह मार्ग भी अच्छा लगता था—

वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनञ्च धिनोति नः॥—का०आ०, १/२२

२२वीं कारिका के प्रथम चरण में नायक शब्द प्रतिनायक का वाचक है। ऐसा माने बिना अर्थ की सङ्गति नहीं लगती।

२४. भामह के समय तक काव्यशास्त्र न केवल नाट्य से स्वतन्त्र हो गया था बल्कि नाटक को ही काव्य का एक भेद मान लिया गया था परन्तु उसका विवेचन पृथक् ग्रन्थों में ही किया जाता था। काव्य के गद्य और पद्य रूप दो ही भेद भामह को मान्य हैं। नाटक तथा द्विपदी, शम्या, रासक, स्कन्धक आदि गीतिनाट्य अभिनेयार्थ हैं।

३०. प्रकृत कारिका में यह निर्देश किया गया है कि स्वभावोक्ति और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वक्रोक्ति अलङ्कारत्व के नियामक आधार हैं। इनमें से वक्रोक्ति तो काव्य-चारुता की आधायक तथा अलङ्कार का भी प्राणभूत तत्त्व है ही जिस पर स्वयं भामह बड़े मुग्ध हैं, स्वभावोक्ति भी काव्य की वह विधा है जो अलङ्कार-शून्य होकर भी उसमें चमत्कृति का आधान करती है। का०अ० (२/९३) में भामह ने ऐसे आचार्यों का मत उद्धृत किया है जो स्वभावोक्ति को एक अलङ्कार मानते हैं। ऐसा मानने में भी कोई दोष नहीं क्योंकि अलङ्कार का उद्देश्य काव्य में चारुता उत्पन्न करना है और वह यदि वस्तु के तदवस्थ वर्णन से ही उत्पन्न हो जाये तो वह भी सर्वथा स्वागत-योग्य है।

३३. अश्मक प्रदेश विदर्भ के दक्षिण में स्थित था। उस प्रदेश के कवियों के काव्य को प्रायः 'वैदर्भ-काव्य' कहा जाता था। भामह का कथन है कि यह संज्ञा केवल यदृच्छावशात् कल्पित कर ली गयी है। किसी स्थानविशेष का ही काव्य की प्रवृत्तियों के साथ सम्बन्ध जोड़ देना केवल गतानुगतिकता ही है।

प्रो० काणे ने 'अश्मकवंश' को रघुवंश आदि की तरह एक काव्य माना है जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है (सा०द०, भूमिका, पृ० २०)।

३९. यह श्लोक नेयार्थ दोष का उदाहरण है। दोष का स्थल 'मायेव-भद्रा' यह है, जिसका अर्थ बनता है—माया के समान कल्याणकारिणी। यह स्थल सर्वथा सन्देहरहित अर्थ उपस्थित नहीं कर पाता, अतः विद्वानों की खींचतान का विषय है। भामह का कथन यह है कि 'वेणुदाकि' के सन्दर्भ में यह वाक्य आसानी से समझ में आ जाता है। परन्तु आज यह 'वेणुदाकि' का सन्दर्भ ही स्पष्ट नहीं है, अतः यह स्थिर रूप से 'नेयार्थ' बना हुआ है।

पी०वी० नागनाथशास्त्री ने तृतीय चरण में 'वेणुदारेः' पाठ माना है। वेणुदारि बाणासुर के पुत्र थे। इस असुरपुत्र ने कभी अपनी माया से लोक-कल्याण किया होगा। अतः उसके सन्दर्भ में 'मायेव भद्रा' स्थल स्पष्ट हो जाता है। श्री तातार्य ने वेणुदाकि को किसी काव्य का नायक माना है। भद्रा उनकी नायिका रही होगी जो उसके लिए माया के समान थी। श्री शङ्कर्राय शास्त्री वेणुदाकि' का अर्थ 'कृष्ण' करते हैं जो बाँसुरी बजाने के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी माया से अनेक बार लोकमङ्गल हुआ है। अतः कृष्ण का सन्दर्भ आते ही 'मायेव भद्रा' का अर्थ स्पष्ट होने लगता है।

सम्भवतः इस श्लोक में भामह ने अपने समय में प्रसिद्ध किसी काव्य के कथानक की ओर सङ्केत किया है। कोई धीरललित नायक स्वयं से भी बे-परवाह होकर बाँसुरी बजाता घूमता रहता हो, इसीलिए सम्भवतः उसका नाम भी 'वेणुदाकि' पड़ गया होगा जहाँ उसकी नायिका माया विचित्र रूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारण कर अनेक कष्टों से उसकी रक्षा करती है। परन्तु 'वेणुदाकि' पद जब तक पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो जाता तब तक 'मायेव भद्रा' की समस्या का भी अन्तिम समाधान सम्भव नहीं है।

४०. क्लिष्ट दोष वहाँ होता है जहाँ अर्थप्राप्ति में व्यवधान उपस्थित हो जाये। इसका उदाहरण है—**विजह्रुस्तस्य ताः शोकम्**। कवि इसके द्वारा यह अर्थ सम्प्रेषित करना चाहता है कि उन स्त्रियों ने उसके शोक का हरण किया। √हृ का अर्थ हरण करना ही होता है परन्तु वि उपसर्ग लग जाने से इसका अर्थ विहार करना हो जाता है। अतः अभिलषित अर्थ की प्राप्ति बाधित हो जाती है। अर्थावगम में इसका परित्याग करना पड़ता है। वाक्य में स्थित 'शोक' शब्द अर्थ की प्रतीति में सहायक होता है। भामहविवरण में उद्भट क्लिष्ट दोष के एक दूसरे अर्थ की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं। १५वीं कणिका के 'क' भाग में 'क्लिष्टं व्यवहितं' से लगभग दो पंक्ति बाद 'सम्बन्धो दूरस्थस्यापि' शब्द मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ 'व्यवहित' का एक अर्थ 'दूरस्थ' भी किया गया है। ऐसा मानने पर इसका अभिप्राय होगा वाक्य के पदों में परस्पर आसत्ति का अभाव।

क्रीडायां विकृतं तत् में अन्यार्थ दोष है। वाक्य में प्रयुक्त विकृत पद से सर्वथा विपरीत अर्थ की ही प्रतीति होती है। कवि यहाँ यह कहना चाहता है कि शोक के हरण का कार्य उन्होंने क्रीडा के द्वारा किया। यहाँ वस्तुतः विकृत के स्थान पर 'कृत' शब्द का प्रयोग होना चाहिए। परन्तु वाक्य में कोई ऐसा पद नहीं है जो विकृत शब्द से कृत अर्थ का अनुमान करा सके। अन्यार्थ दोष के सम्बन्ध में भामहविवरण में वाक्यपदीय की कारिका **अस्वगोण्यादयश्शब्दाः साधवो विषयान्तरे**, उद्धृत की गयी है। इस कारिका का अभिप्राय यह है कि अश्व, गो आदि शब्द साधु हैं परन्तु इनके स्थान पर प्रयुक्त होने वाले अस्व, गोणी आदि शब्दों को सर्वथा असाधु नहीं कहा जा सकता। किसी अन्य अर्थ के वाचक के रूप में यही शब्द साधु भी हो सकते हैं परन्तु अश्व, गो आदि अर्थों में इनका प्रयोग अन्यार्थ दोष है।

४१. जो शब्द किसी अर्थविशेष में साक्षात् प्रसिद्ध नहीं होता उससे उस अर्थ का ज्ञान नहीं हो पाता। इसका उदाहरण है—**हिमापहामित्रधर। हिममपहन्तीति (अग्निः), तस्यामित्रम् (जलम्), तद्धरतीति (जलधरो मेघः)**। इस प्रकार यह शब्द यथाकथञ्चित् मेघ अर्थ का वाचक निष्पन्न होता है। भामह के अनुसार यह अवाचक है। भोज ने इसे 'क्लिष्ट' कहा है।

४६. यह श्लोक 'गूढ़शब्दाभिधान' दोष का उदाहरण है। **असितर्ततुक् अद्रिच्छित्, स्वःक्षितां पतिः** और **अद्विदृक्** इन चार विशेषणों से यह ज्ञात होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि यहाँ भगवान् कार्त्तिकेय की स्तुति की गयी है। असितर्ति शब्द अग्नि का वाचक है—सित अर्थात् श्वेत, न सितं (कृष्णम्)। ऋति शब्द में गत्यर्थक √ऋ है, जिससे जाया जाये अर्थात् मार्ग। धूम के रूप में अग्नि का मार्ग कृष्ण वर्ण वाला होता है। अमरकोश में अग्नि के लिए कृष्णवर्त्म शब्द का प्रयोग किया गया है—**वह्निः शुष्मा कृष्णवर्त्मा शोचिष्केश उषर्बुधः** (१/४९)। तुक् शब्द √तुज् से क्विप् प्रत्यय होकर **तुज्यते जीव्यतेऽनेनेति** इस अर्थ में अपत्य का वाचक है—**तुक् तोकं तनयश्च नन्दन इति प्राज्ञैरपत्यं स्मृतम्** (हलायुध २/४९७)। कार्त्तिकेय का 'अग्निभूः' नाम अमरकोश में भी बताया गया है—**पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः** (१/१/३४)।

अद्रिच्छित् शब्द का अर्थ है—पर्वत का छेदन करने वाला। कार्त्तिकेय ने क्रौञ्च पर्वत का छेदन किया था। इसीलिए उनका एक नाम 'क्रौञ्चदारणः' भी है— **षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः** (अ०को० १/१/३५)।

'स्वःक्षितां पतिः' से अभिप्राय है—देवताओं का स्वामी। सर्वप्रथम पूजित होने के कारण वे देवों में अग्रगण्य हैं।

अद्विदृक् अर्थात् जिसके दो नेत्र न हों। वे षडानन हैं, अतः उनके बारह नेत्र हैं।

ऐसे भगवान् कार्त्तिकेय अपने रुक्ष (अमिद्भिः) तथा शुभ नेत्रों के अवलोकनों से आपके कष्टों को नष्ट करें।

जेघ्नीयिषीष्ट शब्द यङन्त प्रक्रिया में √हन् के आशीर्लिङ् प्र०पु०ए०व० का रूप है।

४८-४९. इन दो कारिकाओं में द्व्यर्थी शब्दों का संग्रह किया गया है। सामान्य अर्थ में प्रयुक्त भी इन शब्दों के श्रवणमात्र से दूसरे जुगुप्सित अर्थ की प्रतीति होने लगती है। संगृहीत शब्दों के दोनों अर्थ इस प्रकार हैं—

शब्द	सामान्य अर्थ	जुगुप्सित अर्थ
विट्	वैश्य	विष्ठा
वर्चस्	तेज	वीर्य
विष्ठित	विशेष रूप से स्थित	विष्ठा
क्लिन्न	गीला	रक्त से सना हुआ
छिन्न	कटा हुआ	मङ्गलसूत्र का टूटना
वान्त	बाहर निकला हुआ	कै (उल्टी) किया हुआ
प्रवृत्ति	प्रवृत्त होना	मासिक धर्म का स्राव
प्रचार	प्रसार	शौच की इच्छा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्द	सामान्य अर्थ	जुगुप्सित अर्थ
धर्षित	अपमानित	बलात्कृता
उद्गार	डकार (उदान वायु का निकलना)	उल्टी होना
विसर्ग	त्याग	अपान वायु का निकलना
हृद	मलत्याग	मलत्याग
यन्त्रित	निबद्ध	सम्भोग में नियन्त्रित
हिरण्यरेतस्	अग्नि	वीर्य
सम्बाध	रगड़	योनि
पेलव	कोमल	मलत्याग
उपस्थित	प्रस्तुत	लिङ्गचेतना
अण्डज	पक्षी	अण्ड=अण्डकोश
वाक्काटव	वाणी की कटुता	काट=लिङ्ग, प्रेत-वाहन (तातार्य)

५४-५५. परिस्थितिविशेष में दोष भी गुणरूप हो जाता है, यह तथ्य भामह से पूर्व विष्णुधर्मोत्तरपुराण के साक्ष्य से भी ज्ञात होता है। भामह ने इसका विश्लेषण कर इसके आधारभूत दो कारणों का आविष्कार किया है—(१) सन्निवेशविशेष, यथा श्वेत पुष्प की माला के मध्य निबद्ध नील पलाश तथा (२) आश्रय सौन्दर्य, यथा कान्ता के नेत्रों में न्यस्त मलिन अञ्जन। प्रथम का उदाहरण 'आपाण्डुगण्ड' शब्द का सहप्रयोग है। जैसे पाण्डु शब्द के सान्निध्य में स्थित गण्ड शब्द निर्दोष हो जाता है। विक्लिन्न और गण्ड दोनों ही शब्द काव्य में प्रयोग की दृष्टि से असाधु हैं परन्तु आश्रयभूत हाथियों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होकर सर्वथा प्रयोज्य हो गये हैं।

इस प्रकार के सङ्केत ही आगे जाकर दोषों की नित्यानित्य व्यवस्था करने में सहायक हुए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

१-३. अलङ्कारविवेचन से पूर्व इन तीन कारिकाओं में माधुर्य, प्रसाद और ओज का संक्षिप्त विवेचन है परन्तु न तो उन्हें अलङ्कारों में परिगणित किया गया है और न इनके लिए कहीं गुण शब्द का ही प्रयोग है। इनका स्वरूप प्रायः समास की स्थिति को लेकर ही कल्पित किया गया है। ये उस शब्दचारुता का आधान करते हैं जिससे काव्य में उनकी प्रयोग-योग्यता निष्पन्न होती है। अलङ्कारों से इनके पार्थक्य का आधार यही हो सकता है कि ये उनसे अधिक चमत्कारी हैं। इस दृष्टि से इन्हें विशिष्ट अलङ्कार भी कहा जा सकता है। ६/२८ में व्यञ्जनचारुता का उल्लेख है जो काव्य में अलङ्कारों से भी अधिक उपयोगिनी है। वहाँ भी सम्भवतः भामह का सङ्केत इन्हीं तीन विशेषताओं की ओर रहा होगा। इस कारिका में काव्य में प्रयोग-योग्य शब्द के जिन तीन गुणों का उल्लेख भामह ने किया है वे उसमें प्रसाद का आधान करते हैं। क्रमागतम् और अर्थ्यम् से शब्द की अर्थबोधकता तथा श्रुतिसुखम् से उसकी सुश्रव्यता अभीष्ट है। अस्तु, भामह के ये सङ्केत गुणों की प्रस्थापना में रसध्वनिवादियों के उपजीव्य बने, यद्यपि स्वरूप की दृष्टि से वे अब नितान्त भिन्न हो गये थे।

का० अ० के विवेचन के अनुसार ओज समस्तपदों से युक्त स्थिति है, यथा—**मन्दारकुसुमरेणुपिञ्जरितालकाः**। माधुर्य और प्रसाद से युक्त पदबन्धों में अधिक समास नहीं होते। प्रसाद में इसके अतिरिक्त सुश्रव्यता और सरलता भी होती है जिससे इसका अर्थ विद्वान् से लेकर स्त्री और बालक तक को भी स्पष्ट हो जाता है। इन दोनों के उदाहरण नहीं दिये गये।

६. उद्भट ने जो अनुप्रास की तीन वृत्तियाँ ग्राम्या, परुषा और उपनागरिका मानी हैं, ग्राम्यानुप्रास का सम्बन्ध सम्भवतः उसी ग्राम्या नामक अनुप्रासवृत्ति से है। अन्यथा ग्रामीण शब्द का अर्थ 'फूहड़' तो कथमपि नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुप्रास की तो भामह ने विशेष प्रशंसा की है—**युक्त्यानया मध्यमया जायन्ते चारवो गिरः**। फिर उसके किसी भेद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को ग्राम्य कहने का अवकाश कहाँ रहता है। पुनश्च, उसका जो उदाहरण प्रस्तुत किया गया है—"स लोलमालानीलालिकुलाकुलगलोबलः उसमें ल वर्ण की आवृत्ति है और साहित्य में लवर्ण के अनुप्रास के अनेक ललित उदाहरण प्राप्त होते हैं। उद्भट ने भी अनुप्रास की ग्राम्यावृत्ति का उदाहरण लवहुल ही दिया है।

८. यहाँ लाटानुप्रास के सन्दर्भ में उद्भट ने पुनरुक्ताभास की चर्चा उठायी है। यहाँ विशेष बात यह है कि भामह ने पुनरुक्ताभास का कहीं उल्लेख नहीं किया परन्तु उनके अनुयायी, टीकाकार और प्रशंसक उद्भट ने अलङ्कारों की सूची में सर्वप्रथम उसी का नाम लिया है। यदि यह प्रकरण पूर्णरूप से उपलब्ध होता तो इस विषय पर उद्भट के महत्त्वपूर्ण विचार ज्ञात हो सकते थे।

१९वीं कणिका की ५म पंक्ति में यमक और पुनरुक्ताभास के अन्तर की ओर सङ्केत किया गया प्रतीत होता है। यदि अर्थ भिन्न हो (शब्द अभिन्न हों) तो यमक और यदि अर्थ अभिन्न रूप से आभासित हो (शब्द भिन्न हो) तो पुनरुक्ताभास अलङ्कार होता है—**यस्यार्थभेदस्तदा यमकालङ्कारोर्थाभेदश्चेत्पुनरुक्ताभासः**। इसी कणिका की ७म पंक्ति में तीन प्रकार का पुनरुक्ताभास सङ्केतित है—**एतत्त्रितकमपि पुनरुक्ताभासम्**।

१०. श्लोक में स्थिति के आधार पर भामह ने पाँच ही प्रकार के यमक माने हैं। यद्यपि मध्यान्त यमक को बड़ी आसानी से दो भागों में विभक्त किया जा सकता था परन्तु कश्मीरी आचार्यों का प्रयास यथासम्भव यमक के विस्तार को संकुचित करने का ही रहा है जबकि दक्षिण भारतीय दण्डी बड़े मनोयोग से इसका विवेचन करते हैं। उन्होंने इसके ३१५ भेद किये हैं। भामह अनुप्रास को तो वाणी में चारुता का उत्पन्न करने वाला मानते हैं परन्तु यमक के विषय में अनेक सीमायें बाँधते हुए दिखाई देते हैं। उद्भट के द्वारा यमक का उल्लेख न किया जाना तथा दण्डी का अनुप्रास के विषय में आश्चर्यजनक मौन इसी प्रकार के सङ्केत देता है। अस्तु।

भामह ने यमक के पाँच ही भेद स्वीकार किये हैं। अन्य सन्दष्टक और समुद्ग आदि भेदों का इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है। दण्डी का सन्दष्टक आद्यन्त यमक कहा जा सकता है। भामह ने आदियमक और मध्यान्तयमक के नाम से दो भेद माने हैं। इन दोनों के मिश्रण से सन्दष्ट की स्थिति बन जाती है। समुद्गयमक पूर्वार्ध की हो उत्तरार्ध में आवृत्ति है जिसे पादाभ्यास का ही विस्तृत रूप कहा जा सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१९. रामशर्मा ने अच्युतोत्तर नामक काव्य में यमकों का निबन्धन किया है, इसका उल्लेख भामहविवरण से मिलता हैं—**रामशर्मणाच्युतोत्तरे यमकानि निबद्धा** (भा० वि०, कणिका २२, भाग क, पंक्ति ५)। वहाँ विभिन्न धात्वर्थों का चमत्कार प्रतिपादित है। भामह के अनुसार ऐसे दुरूह बन्ध नाममात्र के ही यमक हैं। इन्हें वस्तुतः प्रहेलिका कहा जाना चाहिए।

२०. भट्टिकाव्य में प्राप्य पद्य—**व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्। हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया॥** की तुलना भामह के इस श्लोक के साथ करना प्रीतिकर तो अवश्य है परन्तु किसी एक को पूर्व अथवा उत्तरवर्ती स्थिर करने के लिए केवल यही प्रमाण पर्याप्त नहीं है। श्री के० पी० त्रिवेदी तथा पी० वी० काणे ने इस प्रकार का प्रयास किया है परन्तु उनके निष्कर्ष सर्वथा विपरीत हैं।

३८. भामह से पूर्व कुछ आचार्य उपमा के निन्दा, प्रशंसा और आचिख्यासा के रूप में तीन भेद किया करते थे। भामह इन्हें अनावश्यक मानते हैं। उपमा के सामान्य गुणों का निर्देश करते हुए इन तीनों का ही कथन हो जाता है। मालोपमा में भी एक उपमेय के लिए अनेक उपमान कल्पित किये जाते हैं अतः उसमें भी स्वतन्त्र रूप से विवेचन करने योग्य कोई तत्त्व नहीं है।

यहाँ भी भामह का कश्मीरी परम्परा के प्रति आग्रह प्रकट होता है जो उपमा की तुलना में रूपक को अधिक महत्त्व देती है। उपमा अलङ्कार दाक्षिणात्य आचार्यों में अधिक प्रसिद्ध था।

३९-४० भामह ने मेधावी के द्वारा वर्णित सातों उपमादोषों को उसके प्रति आदरभाव के कारण स्वीकार कर लिया है परन्तु उनकी व्याख्या में अपनी विवेचकबुद्धि का परिचय अवश्य दिया है। असम्भव का तो उन्होंने सर्वथा निषेध ही कर दिया है क्योंकि कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति सर्वथा असम्भव वस्तु से उपमा करने नहीं बैठता। हीनता और उपमानाधिकत्व के सम्बन्ध में भी वे पूर्ण आश्वस्त नहीं हैं। उनका यह कथन कि किसी भी वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्पूर्ण सादृश्य नहीं होता, महत्त्वपूर्ण है। यथाकथमपि महाकविओं की रचनाओं को लक्षण के अनुसार संघटित कर लिया जाना चाहिए।

४५-४६. इससे पूर्व २/४३ में भामह कह चुके हैं कि किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्पूर्ण सादृश्य नहीं होता। पैंतालीसवीं कारिका के उत्तरार्ध में इसी बात को आगे बढ़ाकर टिप्पणी की गयी है कि सम्पूर्ण सादृश्य भी कहीं-कहीं देखने को मिल ही जाता है। उदाहरण के रूप में २/४६ पद्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजमित्र से उद्धृत किया गया है। उदाहृत पद्य में उपमेय केकाध्वनि तथा उपमान सती स्त्रियाँ हैं। उपमेय के तीन धर्म उपन्यस्त किये गये हैं—१. सूर्यांशुसम्मीलितलोचनेषु २. पद्मानिलनिर्मदेषु और ३. स्वगेहेषु। परन्तु उपमान का, क्योंकि कोई भी धर्म प्रदर्शित नहीं किया गया अतः उपमेय के धर्मों के साथ उनका सादृश्य प्रतिपादित नहीं हो सकता। केवल केकाध्वनि और सती स्त्रियों में उपमेयोपमानभाव प्रदर्शित करना ही कवि का अभीष्ट है। अतः हीनता जैसे दोष की सम्भावना यहाँ नहीं बनती।

८५. इससे पूर्व कारिका में अतिशयोक्ति का विषय समाप्त हो जाने पर हेतु, सूक्ष्म और लेश के खण्डन की भूमिका के रूप में यहाँ वक्रोक्ति का स्तवन हुआ है। अतः अतिशयोक्ति के साथ वक्रोक्ति का अभेदस्थापन सर्वथा अनुचित है। अतिशयोक्ति केवल एक अलङ्कार मात्र है। जबकि वक्रोक्ति सभी अलङ्कारों की प्राणभूत तथा उनमें अलंतत्त्व की आधायक है। यह वक्रोक्ति ही है जो काव्य में अर्थ को विभावित करती है। अतः कवि को उसके निर्वाह में प्रयत्नशील रहना चाहिए। हेतु, सूक्ष्म और लेश इसीलिए अलङ्कार नहीं हैं कि इनमें वक्रोक्ति का समुचित आदर नहीं होता। **गतोस्तमर्कः, भातीन्दुः, यान्ति वासाय पक्षिणः** आदि कथन तो वार्त्तामात्र हैं, अथवा इन्हें अलङ्कार्य कहा जा सकता है। ऐसे वाक्यों को अलङ्कृत करके प्रस्तुत करना ही तो कविकर्म है। यही बात भामह ने ५/६६ में कही है कि मणियों, वृक्षों और पुष्पों आदि से तो आभूषण, उद्यान और माला आदि की शोभा ही बढ़ती है, वाणी में तो अर्थ और शब्द की वक्रता से ही चारुत्व निष्पन्न होता है—**तदेभिरङ्गैर्भूष्यन्ते भूषणोपवनस्रजः। वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते**॥

८८. इस कारिका में यथासंख्य और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों का उल्लेख है। इनके सम्बन्ध में मेधावी आचार्य की अपनी स्थापनायें हैं। इनमें से प्रथम अलङ्कार की तो सम्भवतः संख्यान के नाम से उन्होंने उद्भावना ही की थी जो बाद में यथासंख्य के नाम से प्रसिद्ध हो गया। दण्डी ने इसका एक नाम क्रम भी बताया है। परन्तु उत्प्रेक्षा का उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया। इसे सम्भवतः मेधावी अलङ्कार ही नहीं मानते थे। भामह ने भी इसका जो व्याख्यानपरक उल्लेख किया है (२/९१) उसमें उपमा तथा अतिशय का योग आवश्यक है, अतः यह संसृष्टि में ही अन्तर्भूत हो सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस कारिका के उत्तरार्ध का एक पाठ "संख्यानमिति मेधाविनोत्प्रेक्षाभिहिता क्वचित्" यह भी मिलता है। इसका अर्थ होगा—मेधावी के द्वारा संख्यान का (तथा) कहीं (अन्यत्र) उत्प्रेक्षा का भी कथन हुआ है। इस वाक्य का यह अर्थ कि 'मेधावी ने उत्प्रेक्षा को कहीं संख्यान, ऐसा कहा है,' उदाहरणों से सङ्गत नहीं होता।

९३. स्वभावोक्ति की अलङ्कारता परमतानुरोध से स्वीकार की गयी है। भामह के अपने मत में तो स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति अलङ्कारत्व के नियामक आधार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीय परिच्छेद

६. इस कारिका में रसवत् अलङ्कार को स्पष्ट किया गया है—जहाँ शृङ्गारादि रस स्पष्ट रूप से प्रकट हों। उत्तरार्ध में इसका जो उदाहरण दिया गया है उसके सन्दर्भ में तातार्चार्य ने कुमारसम्भव के पञ्चम अङ्क वाली घटना का उल्लेख किया है।

श्री तातार्चार्य ने उत्तरार्ध में **'छद्ममस्करिण्यतिरोहिते'** पाठ माना है। इसका अर्थ होगा—छद्मवेश वाले धार्मिक सन्यासी के प्रकट होने पर देवी उपस्थित हुई। परन्तु प्रायः सभी संस्करणों में 'धर्ममस्करिण्यतिरोहिता' पाठ ही उपलब्ध होता है। ऐसे में इसका अन्वय इस प्रकार किया जा सकता है—**अतिरोहिता** (न तिरोहिता, न निर्गता) **धर्ममस्करिणी** (धर्मवेशधारिणी) **देवी** (पार्वती) (सहसा) **समागमत्** (उपस्थिता), जिस प्रकार (सहसा) रोक ली गयी धर्मवेशधारिणी पार्वती उपस्थित हुई।

७. यह श्लोक ऊर्जस्वी अलङ्कार का उदाहरण है, लक्षण नहीं दिया गया। दण्डी ने भी इसका केवल उदाहरण ही दिया है परन्तु उनके शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे दर्प को अभिव्यक्त करने वाली उक्ति को ऊर्जस्वी मानते थे। भामह ने यहाँ वस्तुतः उदाहरण न देकर महाभारत के उस स्थल की ओर सङ्केत किया है जहाँ इस प्रकार का भाव अभिव्यक्त हुआ है। यह वास्तव में भामह की शैली ही है। रसवत् के उदाहरण में भी उन्होंने इसी प्रकार कुमारसम्भव के पञ्चम अङ्क की घटना की ओर सङ्केत किया है।

३५,४७. उपमारूपक (३/३५) और उत्प्रेक्षावयव (३/४७) भामह के अनुसार स्वतन्त्र अलङ्कार हैं, वामन के अनुसार यही दोनों संसृष्टि के भेद हैं। दण्डी ने इनमें से प्रथम उपमारूपक को रूपक तत्त्व की महत्ता होने के कारण रूपक का एक भेद मान लिया जबकि द्वितीय उत्प्रेक्षावयव का समावेश उत्प्रेक्षा में ही कर दिया। भामह के अनुसार उपमेय को उपमान के रूप में प्रस्तुत करना उपमारूपक है। वामन के अनुसार यहाँ रूपक उपमा से जन्य होता है। क्योंकि इसका विषय रूपक से बहुत भिन्न नहीं है अतः बाद के आलङ्कारिकों ने इसका उल्लेख नहीं किया। द्वितीय, उत्प्रेक्षावयव में भी उत्प्रेक्षातत्त्व ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिक महत्वपूर्ण है। भामह इसके स्वरूप में श्लेष, उत्प्रेक्षा और रूपक का मिश्रण मानते हैं। वामन थोड़े और उदार होकर उत्प्रेक्षा के हेतुरूप में अन्य किसी भी अलङ्कार के प्रयोग को उत्प्रेक्षावयव कहते हैं।

उत्तरवर्ती परम्परा में भामह की इस स्थापना का स्वागत नहीं हो सका। स्वयम् उनके व्याख्याता उद्भट ने भी इनका उल्लेख नहीं किया। वस्तुतः संसृष्टि की कल्पना के बाद इनका पृथक् उल्लेख करना समीचीन भी नहीं है।

४९. इस कारिका में संसृष्टि अलङ्कार की प्रशंसा विशेष रूप से की गयी है। इसका कारण है—इसमें एकाधिक अलङ्कारों का योग होना। परन्तु तर्क यदि केवल यही है तो उत्प्रेक्षावयव, जिसमें श्लिष्ट, रूपक और उत्प्रेक्षा का योग होता है तथा उपमारूपक, जहाँ रूपक उपमा से जन्य होता है, का अलग से उल्लेख आश्चर्यजनक है। उनका संसृष्टि में अन्तर्भाव क्यों नहीं हो सकता। सम्भवतः, एकाधिक अलङ्कारों के एक ही छन्द में योग की जो दो स्थितियाँ बनती हैं, उनकी एक अस्पष्ट सी परिकल्पना भामह के मन में रही है जो कालान्तर में परिनिष्ठित हुई। दण्डी ने इसके दो भेदों का उल्लेख अङ्गाङ्गिभाव में अवस्थिति तथा तुल्यबलता के आधार पर किया—

अङ्गाङ्गिभावावस्थानं सर्वेषां समकक्षता।
इत्यलङ्कारसंसृष्टेर्लक्षणीया द्वयी गतिः॥ २/३६०

बाद में ये दोनों क्रमशः सङ्कर और संसृष्टि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

२२. पदकार से अभिप्राय वार्तिककार कात्यायन से है। उपलक्षण से यहाँ महाभाष्यकार का भी ग्रहण किया जाना चाहिए।

यहाँ एक पाठ **तमाप्तश्रावकाः सिद्धेः शब्दहीनं विदुर्यथा** भी प्राप्त होता है। यह पाठ मानने पर हीन शब्द का भी आदान करना पड़ता है। ऐसे में इसका अन्वय इस प्रकार होगा—**तमाप्तश्रावकाः सिद्धेः (हीनं) शब्दहीनं विदुः**।

२३. यह श्लोक शब्दहीन दोष का उदाहरण है। चारों चरणों में व्याकरण के किसी न किसी नियम का उल्लंघन है। 'वलयिनः' में इनि प्रत्यय अभिमत नहीं है, यहाँ वस्तुतः बहुव्रीहि समास होकर 'स्फुरित्तडिद्वलयाः' रूप बनना चाहिए। द्वितीय चरण में 'गरीयसः' में ईयसुन् प्रत्यय असाधु है क्योंकि यह केवल सापेक्ष स्थितियों में होता है। यहाँ इस प्रकार की कोई अपेक्षा विवक्षित नहीं है, अतः 'विततास्भोगुरवः' यह पाठ बनेगा। तिरश्चतः शब्द भी व्याकरण की दृष्टि से असम्मत है। सकारान्त तिरस् प्रातिपदिक का प्रयोग कर 'तिरस्कुर्वन्तः' ऐसा रूप बनना चाहिए। चतुर्थ चरण में 'अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि' इस वार्तिक के अनुसार द्वितीया विभक्ति होकर 'दिवमभितः' यह रूप बनना चाहिए।

यहाँ पाठान्तर 'दिवाऽभितः' भी प्राप्त होता है। ऐसा मानने पर इसका अर्थ होगा—दिन के समय चारों ओर व्याप्त मेघों को देखो। मेघों का एक विशेषण 'सूर्य के तेज को आच्छादित करने वाले' दिया गया है जो 'दिवा' पाठ मानने पर अधिक सङ्गत लगता है परन्तु 'अभितः परितः' आदि नियम के ज्ञान के अभाव में षष्ठी विभक्ति का ही भ्रम होता है और शब्दहीन दोष के प्रसङ्ग में यही प्रदर्शित करना भी आचार्य का अभीष्ट हो सकता है।

२४-२६. यहाँ यतिभ्रष्ट और भिन्नवृत्त दोषों का अलग-२ उल्लेख है। भरत ने इन दोनों को एक ही शीर्षक 'विषम' से वर्णित किया था। ८०० ई० के आचार्य वामन बड़ी तत्परता से इनकी भिन्नता का प्रतिपादन करते हैं।

२५वां श्लोक यतिभ्रष्ट का उदाहरण है। उदाहृत पद्य लग्घरा छन्द का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक पाद है। इसमें प्रत्येक सात वर्णों के पश्चात् यति होती है। इस उदाहरण में प्रथम यति 'तमाला' के लकारोत्तरवर्ती आकार पर है जो 'तमाल+असित' इस सन्धि में दीर्घ एकादेश होने पर प्राप्त होता है जबकि छन्दःशास्त्र की व्यवस्था के अनुसार यति पद की समाप्ति पर ही होनी चाहिए। तभी वह श्रुतिमधुर हो सकती है। कुछ आचार्य ऐसे स्थलों में अन्तवद्भाव मानकर उनमें यतिभ्रंश नहीं मानते।

२८. 'विसन्धि' का लक्षण नहीं किया गया परन्तु उदाहरण में विसन्धि के जो तीन स्थल--कान्ते+इन्दु, शिरोरत्ने+आदधाने, आदधाने+उदंशुनी हैं, वस्तुतः इन सभी स्थलों पर नित्य प्रकृतिभाव होने के कारण सन्धि प्राप्त ही नहीं होती। कदाचित् भामह यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि इस प्रकार के प्रकृतिभाव का निरन्तर प्रयोग विरसता उत्पन्न करता है।

३९-४६. उदयन और वासवदत्ता के आख्यान में अनेक विसङ्गतियाँ दिखाकर यहाँ न्यायविरोधी दोष का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। सम्भवतः यह सङ्केत भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण की तरफ है। वैसे यह कथानक कथा-सरित्सागर और वृहत्कथामञ्जरी आदि ग्रन्थों में भी उपलब्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चम परिच्छेद

१-४. कवि के लिए कोई विषय त्याज्य नहीं होता। प्रत्येक शब्द, अर्थ, न्याय अथवा कला काव्य का अङ्ग बन सकती है परन्तु उसका काव्यत्व उसकी अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य में निहित है। शास्त्र जैसे शुष्क विषय भी कवि की लेखनी का संस्पर्श पाकर सरस और संवेद्य हो जाते हैं, जैसे कटु औषधि भी मधु से आलीढ़ होकर सेव्य हो जाती है। अतः काव्य में वर्णित शास्त्रीय विषय के परिज्ञान के लिए कवि और आलोचक दोनों को शास्त्र के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान होन आवश्यक है। यही कारण है कि काव्य में सरलता का समर्थन करने वाला आचार्य शास्त्रीय चर्चा के व्यामोह से स्वयं को मुक्त नहीं रख पाया। इस दृष्टि से विचार करने पर भामह का पक्ष दण्डी की अपेक्षा अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है जिन्होंने शास्त्र के लिए भी ये विषय कर्कश होने के कारण अस्पृश्य मान लिये थे। अस्तु।

तर्कशास्त्र की प्रक्रिया के अनुसार प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्तहीन दोषों का विवेचन प्रसङ्गप्राप्त है परन्तु उनके अधिक विस्तार की न तो कोई उपयोगिता है और न ही आवश्यकता। केवल संक्षेप में इनका परिचयमात्र प्रस्तुत करना ही आचार्य को अभिमत है जिससे काव्य का सुकुमारमति पाठक यहीं से न्यायप्रक्रिया के आवश्यक अंश का अवलोकन कर सके।

५. इस कारिका में तीन विषय प्रतिपादित किये गये हैं—प्रमाण की उपयोगिता, भेद तथा उनका विषय।

किसी भी वस्तु की सत्ता प्रमाण से सिद्ध होती है, यही उसकी उपयोगिता है। यहाँ प्रमाण का साक्षात् लक्षण नहीं दिया गया परन्तु उपयोगितामुखेन ही उसके स्वरूप का भी प्रतिपादन हो जाता है।

बौद्ध दर्शन में प्रमाणों की संख्या दो ही मानी गयी है—प्रत्यक्ष और अनुमान। इनसे क्रमशः व्यक्ति और जाति दोनों का ज्ञान हो जाता है, अतः इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण मानने की आवश्यकता भी नहीं हैं। न्याय दर्शन में मान्य उपमान प्रमाण तो अनुमान में अन्तर्भूत हो ही जाता है, साक्षात्कृतधर्मा आप्तपुरुषों का शब्दप्रमाण भी वस्तुतः प्रत्यक्ष ही है। वा.प.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१-३७) में भतृहरि ने इस बात को इस रूप में कहा है—**आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम् । अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ।**

६. बौद्ध नाम, जाति, गुण, क्रिया और द्रव्यरूप उपाधियों को कल्पित होने के कारण अवास्तविक मानते हैं। व्यक्ति की सत्ता ही वास्तविक है क्योंकि अर्थक्रियाकारिता अर्थात् कार्य करने की योग्यता उसी में होती है। इसीलिए वह लौकिक व्यवहार का साधन है। गो आदि शब्दों का उच्चारण करने से गोव्यक्ति की ही उपस्थिति होती है, गोत्वजाति की नहीं।

नाम की योजना तो लोकव्यवहार चलाने के लिए ही की जाती है—**शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके** (यास्क) और यह प्रायः यादृच्छिक होता है—**संज्ञेच्छातो विधीयते ।** जाति में अर्थ क्रियाकारिता की सम्भावना नहीं है और नीलादि गुण तथा गमनादि क्रियायें व्यक्ति के ही आश्रित हैं, अतः वही सत् है तथा उसी का प्रत्यक्ष होता है। इसीलिए बौद्धों ने वस्तु के कल्पनारहित ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है—**प्रत्यक्षं कल्पनापोढ़म् ।** बाद में धर्मकीर्ति ने इसमें अभ्रान्तम् पद का और निवेश कर दिया—**कल्पनापोढ़मभ्रान्तं प्रत्यक्षम्** (न्यायबिन्दु) ।

७-१०. बौद्धों के अनुसार जात्यादि उपाधियाँ आरोपित हैं और व्यक्ति ही प्रत्यक्ष के द्वारा बोध्य होता है। भामह को बौद्धों का यह सिद्धान्त अभिमत नहीं है। इन चार कारिकाओं में भामह ने इस मत के चार दोष प्रदर्शित किये हैं—

जाति आदि उपाधि चतुष्टय ही दो वस्तुओं में पार्थक्य का ज्ञान कराते हैं। गो और अश्व दो भिन्न जातियों के पशु हैं। वे भिन्न गुणों से युक्त और भिन्न क्रिया का सम्पादन करने वाले हैं, अत एव उनकी संज्ञा भी भिन्न है परन्तु बौद्ध तो इन चारों उपाधियों को काल्पनिक मानकर उनका निषेध ही कर देते हैं तो फिर दो वस्तुओं का पार्थक्य किस प्रकार निष्पन्न होगा। जात्यादि के अभाव में तो वस्तु के निर्विकल्प रूप की ही उपलब्धि हो सकती है। उसके वैशिष्ट्य का ज्ञान तो इन विकल्पात्मक उपाधियों के द्वारा ही सम्भव है ।७।

यदि जात्यादि का अपोह मान भी लिया जाये तो भी उसे बुद्धिगोचर तो अवश्य ही मानना पड़ेगा क्योंकि गो शब्द का अर्थ यदि अगोव्यावृत्ति ही है तो फिर अगोव्यावृत्ति के लिए भी गोत्व का ज्ञान आवश्यक है। गोत्व का ज्ञान कराने वाले प्रत्यक्ष को इस आधार पर अयथार्थ नहीं कहा जा सकता कि वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काल्पनिक (जाति) का ज्ञान कराता है प्रत्युत गोत्वज्ञानपूर्वक गो व्यक्ति का ज्ञान कराने के कारण वह सर्वथा यथार्थविषयक ही सिद्ध होता है ।८।

तीसरे, गो व्यक्ति का ज्ञान कराने के लिए यदि अगोव्यावृत्तिज्ञान को कारण माना जाये तो इस प्रक्रिया में ज्ञान ही ग्राह्य होगा और ज्ञान ही ग्राहक । फिर इन दोनों में अन्तर ही क्या रहेगा ।९।

चौथे, लोक में यह नियम है कि किसी वस्तु का ज्ञान उसी वस्तु से होता है परन्तु अपोह की प्रक्रिया में यह लोकव्यवहार बाधित हो जाता है क्योंकि यहाँ गो व्यक्ति के ज्ञान का कारण उससे भिन्न वस्तु (अगोव्यावृत्ति) है । एक बार यदि यह अनवस्था स्वीकार कर ली जाये तो फिर ज्ञान का कोई निश्चित नियम ही नहीं रह जायेगा। ऐसे में घट का ज्ञान पट से क्यों नहीं हो सकता ? १०।

११. इस कारिका में अनुमान के दो लक्षण दिये गये हैं। प्रथम लक्षण के अनुसार त्रिविध हेतु के द्वारा साध्य का ज्ञान अनुमान है। यहाँ हेतु के तीन रूप पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति हैं।

दूसरा लक्षण सम्भवतः दिङ्नाग का है—"नान्तरीयार्थ दर्शनमनुमानम् ।" यहाँ नान्तरीय से अभिप्राय है—नित्य सम्बन्ध । धूम और अग्नि का नित्य सम्बन्ध है क्योंकि यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः । अत एव धूम को देखकर अग्नि का अनुमान होता है। अनुमान के इस लक्षण में लिङ्गकल्पना का अभाव है।

१२. धूम को देखकर वह्नि का अनुमान करने की प्रक्रिया में (है या नहीं इस) विवाद का विषय अग्नि है। अग्नि रूप धर्म से युक्त पर्वत धर्मी हुआ। उसे ही पक्ष कहते हैं। इसी पक्ष का निर्देश करने वाला वाक्य प्रतिज्ञा कहा जाता है, यथा—पर्वतो वह्निमान् ।

१५-१६. हेतुविरोधिनी प्रतिज्ञा का केवल उदाहरण दिया गया है, लक्षण नहीं। कोई भी धर्म अपने धर्मी की सिद्धि का हेतु नहीं हो सकता जैसे नित्यत्व आत्मा अथवा प्रकृति का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि वह तो स्वयं उन्हीं पर आश्रित है और जब धर्मी ही सिद्ध नहीं है तो उसका धर्म कैसे सिद्ध हो सकता है। इसके विपरीत शब्द रूप धर्मी सिद्ध है, अतः उसका धर्म नित्यत्व अथवा अनित्यत्व अवश्य विवाद का विषय बन सकता है। इस प्रकार 'अस्त्यात्मा प्रकृतिर्वा, नित्यत्वात्' यह प्रतिज्ञा हेतुविरोधिनी होगी। इसके स्थान पर 'आत्मा प्रकृतिर्वा नित्यः' इस प्रकार की प्रतिज्ञा बननी चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं, हेतुविरोधिनी प्रतिज्ञा वह है जिसकी सिद्धि वा असिद्धि का दिये गये हेतु से कोई सम्बन्ध न बैठता हो।

१८. उत्तरार्ध में एक पाठ यथा शुचिस्तनुस्त्रीणि प्रमाणानि न सन्ति वा भी प्राप्त होता है। ऐसा पाठ मानने पर अर्थ करना होगा—'शरीर पवित्र है, तीन प्रमाण अथवा (प्रमाण) नहीं है'। परन्तु 'तीन प्रमाण हैं' यह बात सभी शास्त्रों की विरोधिनी नहीं है। सांख्य दर्शन में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं—त्रिविधं प्रमाणमिष्टम्।

२२-२३ स्वपक्ष और परपक्ष से अभिप्राय वादी और प्रतिवादी से है अर्थात् हेतु ऐसा होना चाहिए जो वादी प्रतिवादी दोनों को मान्य हो। धूम के विषय में यदि दोनों एकमत होंगे तभी अग्नि के विषय में विवाद की सम्भावना बनेगी। परपक्ष में हेतु की स्थिति न मानने पर अन्यतरासिद्ध नामक हेत्वाभास की व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकेगी क्योंकि इसका अभिप्राय ही है, ऐसा हेतु जो किसी एक पक्ष में असिद्ध हो।

इसी प्रकार पक्ष भी दोनों के अनुसार एक ही होता है परन्तु फलभेद (निष्कर्ष भेद) के कारण यह भिन्न स्वरूप वाला हो जाता है। यथा, पर्वत अथवा ध्वनि के विषय में तो दोनों एकमत हैं परन्तु एक के अनुसार पर्वत वह्निमान् है अथवा ध्वनि नित्य है तथा दूसरे के अनुसार पर्वत में अग्नि नहीं है अथवा ध्वनि अनित्य है।

२६-२७ साध्य और साधन इन दोनों की स्थिति जहाँ निश्चित हो, वह दृष्टान्त कहा जाता है, यथा महानस्। यहाँ धूम और अग्नि दोनों ही देखे जाते हैं। जहाँ ये दोनों ही न रहें वह भी दृष्टान्त हो सकता है, यथा सरोवर। यहाँ न तो धूम है और न अग्नि। इसलिए इसे विपर्यय अथवा व्यतिरेक दृष्टान्त कहेंगे जबकि पूर्वोक्त अन्वय दृष्टान्त है।

जो दृष्टान्त के रूप में उपन्यस्त हो परन्तु उसमें साध्य अथवा साधन के होने की कोई सम्भावना न हो, वह दृष्टान्ताभास कहा जाता है।

२७वीं कारिका में दृष्टान्त का एक दूसरा लक्षण भी उपस्थित किया गया है। साध्य के साथ साधन का रहना और उसके अभाव में न रहना, कुछ लोग यह दो प्रकार का दृष्टान्त मानते हैं—तत्सत्त्वे तत्सत्त्वं तदभावे तदभावः।

२८. अनुमान की प्रक्रिया हेतु अथवा दृष्टान्त के दोष से दूषित हो जाती है इसलिए उनमें कोई न्यूनता नहीं होनी चाहिए परन्तु प्रतिज्ञा अनुमान की प्रक्रिया नहीं है, यह उसका आधार है। अतः प्रतिज्ञा के दोष अनुमान की प्रक्रिया के दोष नहीं है। तथापि उसका निर्दुष्ट होना इसलिए आवश्यक है कि जब मूल ही छिन्न होगा तो पत्र अथवा शाखायें कैसे हो सकती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३०-३४. इस परिच्छेद की प्रथम उनतीस कारिकाओं में किया गया न्याय का विवेचन शस्त्राश्रित काव्यों को लक्ष्य कर किया गया है। लोक में प्रतिज्ञादि से सम्बन्धित दोषों की स्थिति सर्वथा भिन्न प्रकार की है। काव्य लोकाश्रित होता है। यह लौकिक वस्तुओं को आधार बनाकर चलता है तथा अपनी अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य के द्वारा सहृदयों के हृदय में लोकोत्तर चमत्कार उत्पन्न करता है। इसके विपरीत शास्त्र में गम्भीर तत्त्वदर्शन का आग्रह होता है। यह अलग बात है कि ये शास्त्रीय विषय भी काव्यपद्धति में वर्णित होकर मधु से आलीढ़ कटु औषध के समान सुसेव्य हो जाते हैं और क्योंकि इनका स्वरूप भिन्न है, अतः आचार्य शास्त्र और काव्य के प्रयोग सम्बन्धी दोषों का विवेचन भिन्न प्रकार से किया करते हैं। इसी बात को एक उदाहरण से स्पष्ट किया गया है कि लोक में कारण को नियत और नित्य कहा जाता है परन्तु तात्त्विक दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो यह कथन युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। कोई भी वस्तु केवल कारण अथवा केवल कार्य नहीं होती। एक वस्तु से उत्पन्न होने से वह उसका कार्य तथा दूसरी वस्तु को उत्पन्न करने से उसका कारण है। प्रत्येक कार्य वस्तु का विनाश निश्चित है। नित्य तो वही हो सकता है जो न किसी से उत्पन्न हो और न किसी को उत्पन्न करे अर्थात् उसमें किसी प्रकार का विकार न हो, सर्वथा अव्यय और निर्विकार हो परन्तु कार्य रूप में परिणत होने का अर्थ ही है—विकार से युक्त होना। ऐसी स्थिति में उसे नित्य कैसे कहा जा सकता है।

३४ वीं कारिका में इसे अन्य निदर्शनों के द्वारा प्रमाणित किया गया है। आकाश तलवार के समान है, यह शब्द दूर तक जाता है, नदियों का जल वही है तथा महान् ज्योतियों का स्थैर्य अद्भुत है। ये सभी प्रयोग लोक में सामान्यतः प्रचलित होते हैं तथा उसी रूप में काव्य में भी वर्णित हो जाते हैं परन्तु शास्त्र इस प्रकार के भ्रान्त कथनों को मान्य नहीं करता। तात्त्विक दृष्टि से आकाश अवकाश अर्थात् खाली स्थान को कहते हैं, अतः उसका कोई सादृश्य क्या हो सकता है। जो दूर तक जाती है वह ध्वनि है, शब्द नहीं—**प्राकृतस्य ध्वनेः कालः शब्दस्येत्युपचर्यते** (वा०प०)। नदी को तो सरिता संज्ञा ही उसके सरकते रहने के कारण है। वह जाकर समुद्र में मिल जाती है और उसमें नया जल आ जाता है। इसी प्रकार जैसे-२ प्रकाश का आधार जलता जाता है, वैसे-२ प्रकाश भी परिवर्तित होता रहता है। दीपक की एक लौ जलकर समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर एक नयी लौ उठ खड़ी होती है। ये सब रूपादि अपने द्रव्य पर आश्रित रहते हैं और द्रव्य के नाश के साथ ही उनका भी नाश हो जाता है। अतः उन्हें नित्य रूप में वर्णित करना तात्त्विक दृष्टि से यथार्थ नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३५. यहाँ धर्म, अर्थ, काम और क्रोधमूलक चार प्रकार की प्रतिज्ञाओं का उल्लेख है। इनमें से धर्म, अर्थ और काम तो मानव जीवन के पुरुषार्थ हैं अतः उनकी प्राप्ति के लिए तो प्रतिज्ञा होनी ही चाहिए परन्तु क्रोध तो काम का ही विकार है—**कामात्क्रोधोऽभिजायते**। अतः उसका अलग से उल्लेख करना चिन्तनीय है। क्रोध यद्यपि काम का ही विकृत रूप है परन्तु उसकी चरमावस्था में व्यक्ति लौकिक लाभ की भी परवाह नहीं करता। ऐसी स्थिति में केवल कोप की ही प्रधानता होती है, अतः उसका पृथगुपादान किया गया है।

प्रतिज्ञा इष्ट कार्य का सङ्कल्प है। नायकादि साधुजन उसका पूर्ण निर्वाह करते हैं परन्तु खलादि सत्य के प्रति आग्रहशील नहीं होते। अतः स्वार्थवश वे अपनी ही की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ देते हैं। प्रतिज्ञा के बाधित होने की एक सम्भावना तब भी बनती है जब धर्म, अर्थ अथवा काम में से किसी एक की सिद्धि करने पर परिणाम के रूप में अन्य की प्राप्ति बाधित हो जाये। पितृदेवो भव इस वेदोक्त धर्म का पालन करते हुए भीष्म के द्वारा आजन्म ब्रह्मचर्यपालन की प्रतिज्ञा की गयी परन्तु इससे काम बाधित हुआ। अस्तु। अग्रिम कारिकाओं में धर्मार्थकामकोपमूलक तथा धर्मार्थकामकोपबाधिनी प्रतिज्ञाओं के उदाहरण पृथक्-२ दिये गये हैं।

३६. यहाँ महाभारत के आदिपर्व में प्राप्त पुरु के कथानक की ओर सङ्केत किया गया है। पुरु शर्मिष्ठा तथा ययाति की सन्तान थे। ययाति वृद्ध होकर भी सांसारिक भोगों से तृप्त नहीं हुए परन्तु अब इन्द्रियों के शिथिल हो जाने के कारण वे उनका भोग नहीं कर पाते थे। अतः उन्होंने अपने पुत्र पुरु से उसका यौवन माँग लिया। पुरु ने भी अपने पिता की आज्ञापालन रूप धर्म का निर्वाह करते हुए अपना यौवन उन्हें दे दिया। यहाँ पुरु ने 'पितृदेवो भव' इस श्रुति में निर्दिष्ट धर्म का निर्वाह किया है।

३७. यह प्रसङ्ग रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में प्राप्त होता है। हनुमान् की इस प्रतिज्ञा का उद्देश्य राम को उपकृत करके उसके सहयोग से बालिवध तथा सुग्रीव के लिए राज्यप्राप्ति करना था। इस प्रकार यह प्रतिज्ञा लौकिक अर्थप्राप्ति की आशा से की गयी थी।

४०. धर्म, अर्थ, काम और क्रोधमूलक ये चार प्रकार की प्रतिज्ञायें हैं और इन सभी का निर्वाह काव्य में यथासम्भव होना चाहिए। इनके अतिरिक्त किसी प्रतिज्ञा में कोई वैशिष्ट्य सम्भव नहीं है क्योंकि लोकवृत्ति से सम्बन्धित पुरुषार्थ केवल तीन ही हैं—धर्म, अर्थ और काम। कोप वस्तुतः काममूलक ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है परन्तु कभी-कभी क्रोध का ही अत्यन्य प्राकट्य होने के कारण वही प्रधान हो जाता है, अतः उसे भी पृथक् माना जा सकता है। तुरीय पुरुषार्थ मोक्ष है परन्तु उसकी प्राप्ति किसी प्रतिज्ञा के साथ जुड़ी हुई नहीं है। वह तो वस्तुतः काव्य का विषय ही नहीं बनती।

४१. यहाँ महाभारत के वनपर्व की एक घटना की ओर सङ्केत किया गया है। गन्धर्वों के साथ युद्ध में पराजित हो जाने पर जब दुर्योधन बन्दी बना लिया गया तो पाण्डवों ने उसकी सहायता कर उसे मुक्त करवा दिया। उसे अपना अपमान समझकर उसने आमरण अनशन की प्रतिज्ञा कर ली और फिर कर्णादि के समझाने पर उस प्रतिज्ञा को तोड़कर वह राज्य के लिए उठ खड़ा हुआ। इस प्रकार दुर्योधन ने स्वयं धारण की गयी प्रतिज्ञा को स्वयं तोड़कर धर्म का ही लोप किया। अतः यह धर्मबाधिनी प्रतिज्ञा है।

४२. यहाँ महाभारत के सभापर्व की कथा की ओर सङ्केत है। युधिष्ठिर की यह प्रतिज्ञा थी कि द्यूत के लिए बुलाये जाने पर वे पीछे नहीं हटेंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञा को पूर्ण भी किया परन्तु इसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में उन्हें राज्य से हाथ धोना पड़ा। अतः इस प्रतिज्ञा के कारण अर्थ का ही बाध हुआ।

४३. यह कथानक महाभारत के आदिपर्व में वर्णित है। राजा शान्तनु सत्यवती से विवाह करना चाहते थे परन्तु सत्यवती के पिता निषादराज की यह शर्त थी कि सत्यवती का पुत्र ही उनके बाद राज्य का उत्तराधिकारी हो। इसके लिए भीष्म की अनुमति आवश्यक थी क्योंकि राज्य पर वास्तविक उत्तराधिकार उन्हीं का था परन्तु उन्होंने अपने पिता के प्रिय के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की। इसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में उनकी काम-वृत्ति की तृप्ति बाधित हुई, अतः उनकी यह प्रतिज्ञा कामबाधिनी है।

४४. परशुराम की यह प्रतिज्ञा थी कि वे इस पृथ्वी को क्षत्रियरहित कर देंगे परन्तु राम ने उन्हें युद्ध में पराजित कर दिया। अतः उनकी यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकी जिससे उनका क्रोध बाधित हुआ।

४५-४६. धर्म, अर्थ, काम और कोपमूलक चार प्रकार की प्रतिज्ञाओं का निर्वाह काव्य में होना चाहिए परन्तु यह कवि की अभिव्यक्ति की शैली पर निर्भर करता है कि ये प्रतिज्ञायें कभी-२ शब्द से उक्त न होकर अर्थ से प्रतीत होती हैं। इन्हें आर्थी प्रतिज्ञा कहते हैं। जैसे, **'किमिन्द्रियद्विषा ज्ञेयम्'** ? ऐसा कहने पर यह अर्थ से ही उपात्त होता है कि मैं ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का उपाय करूँगा। इसी प्रकार **'को निरात्रियतेऽरिभिः'** तथा **'को वा गत्वर-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मार्थिभ्यो न यच्छति धनं लघु' से क्रमशः वीर और दानशील बनने की प्रतिज्ञायें व्यक्त होती हैं।

५६-५७. दृष्टान्त का लक्षण करने के बाद एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है। दृष्टान्त अनुमान का अङ्ग है। अन्वय अथवा व्यतिरेक के रूप में उसका अनुमान में प्रयोग होता है। दूसरी ओर उपमा में भी तो दृष्टान्त की ही तरह एक वस्तु के समान दूसरी वस्तु का निर्देश होता है फिर उपमा को भी अनुमान ही क्यों न मान लिया जाये ? ऐसा न मानने के दो कारण भामह ने गिनाये हैं—(१) उपमा में हेतु का कथन नहीं होता जो अनुमान की प्रक्रिया का प्रधान अङ्ग है। (२) अनुमान की प्रक्रिया में प्रोक्त साध्य और साधन का निर्देश उपमा में इष्ट नहीं है। 'मुखं पद्ममिव' यहाँ साध्यसाधन की कोई विवक्षा नहीं है जबकि 'कलावपि भवानिह श्रेयान, वृद्धानुशिष्टत्वात्, पूर्वे कार्त्तयुगे यथा' यहाँ साध्यसाधनभाव स्पष्ट है। स्तूयमान राजा आदि की श्रेष्टता साध्य, वृद्धों के द्वारा अनुशिष्ट होना साधन तथा कृतयुग के पूर्वपुरुष दृष्टान्त हैं।

उपलब्ध सभी प्रतियों में **'साध्यसाधनयोरुक्तिरुक्तादन्यत्र नेष्यते'** यह पाठ मिलता है। इससे भी अर्थ सङ्गत हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षष्ठ परिच्छेद

७. लोकव्यवहार के साधारण अर्थों की अभिव्यक्ति शब्द के अतिरिक्त अनेक माध्यमों से भी हो सकती है। इनका संग्रह इस कारिका में किया गया है—आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च। नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यते-ऽन्तर्गतं मनः॥ अग्नि की प्रतीति के लिए धूम और प्रकाश भी इसी प्रकार के साधन हैं परन्तु अर्थ के प्रत्यायक होने पर भी इन्हें शब्द नहीं कहा जा सकता। हाँ, ये अनुमान के साधन अवश्य हो सकते हैं। शब्द भाषिक अभिव्यक्ति है जो उपर्युक्त साधनों की अपेक्षा लोकव्यवहार का लघुतम उपाय है—अणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके (यास्क)। पुनश्च, शास्त्रचर्चा जैसे गम्भीर भावों को इङ्गितादि से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता परन्तु शब्द के द्वारा इनका भी प्रस्तुतीकरण सम्भव है, यही शब्द की व्यापकता है—व्याप्तिमत्त्वात्तु शब्दस्य (यास्क)।

८-१०. इन श्लोकों में मीमांसकों का मत उद्धृत कर उसका खण्डन किया गया है। भाष्यकार शबरस्वामी ने गौरित्यत्रकः शब्दः यह प्रश्न उठाकर भगवान् उपवर्ष के अनुसार इसका समाधान इस प्रकार किया है कि यहाँ गकार औकार और विसर्जनीय शब्द हैं क्योंकि लोक में श्रोत्रग्राह्य ध्वनि को ही शब्द कहा जाता है। इस मत में दो प्रकार से दोष प्रदर्शित किये गये हैं—१) प्रत्येक असमर्थ वर्ण का समुदाय अर्थवान् कैसे हो सकता है। गकार औकार अथवा विसर्जनीय में से कोई एक शब्द गौ का वाचक नहीं है फिर ये सब मिलकर 'गौ' अर्थ का अभिधान कैसे करा सकते हैं। अवयव के अतिरिक्त उसके समुदाय की कोई सत्ता नहीं होती, जैसे लकड़ी, दीवार और भूमि के अतिरिक्त भवन कुछ भी नहीं है। २) यदि दुर्जनतोष न्याय से यह मान भी लिया जाये कि गकारादि का समुदाय गो अर्थ का वाचक होता है तो भी वर्णों का समुदाय तो तभी बन सकता है जब ये युगपत् उच्चरित हों परन्तु वर्णों का उच्चारण तो क्रम से ही सम्भव है। एक वर्ण का उच्चारण करते समय दूसरे वर्ण का अस्तित्व नहीं होता और जब दूसरे वर्ण का उच्चारण होता है तो पहला वर्ण विनष्ट हो चुका होता है। अतः नष्ट उपस्थित और अनुच्चरित वर्णों के समुदाय की कल्पना न्यायसङ्गत नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११-१२. मीमांसकों का खण्डन वैयाकरणों की सरणि में किया गया है परन्तु इनका स्फोटवाद भी ग्राह्य नहीं है। वैयाकरण स्फोट को नित्य मानते हैं परन्तु यह न तो प्रत्यक्ष है, न अनुमेय। जो वस्तु प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकती वह तो आकाश कुसुम की तरह सर्वथा अमान्य है।

१३-१४. इन दो कारिकाओं में नैयायिकों के मत का उल्लेख कर उसके प्रति अनास्था व्यक्त की गयी है तथा उनके लिए अनादर सूचक "मन्दाः" विशेषण का प्रयोग किया गया है। प्राचीन नैयायिकों का यह मानना है कि ईश्वर संकेत ही शक्ति है—ईश्वरसङ्केतः शक्तिः। गदाधर आदि ने बाद में आधुनिक संकेत में भी शक्ति मान ली परन्तु इस प्रकार का संकेत तो ध्वनिरूप अनित्य शब्द के साथ ही हो सकता है। शब्द तो अनादिकाल से व्यवहार का माध्यम होने के कारण नित्य और अविनाशी है। पुनश्च नैयायिकों के द्वारा मान्य यह संकेतित शब्द तो ध्वनि है जो वास्तव में शब्द का व्यञ्जक होने के कारण उससे भिन्न है। सर्वथा भिन्न व्यङ्ग्य और व्यञ्जक (शब्द और ध्वनि) में अभेद मानना मन्दता ही है।

१६-१९. इससे पूर्व १५वीं कारिका में शब्द के द्वारा वाच्य अर्थ को सत् कहा गया है। अतः बौद्धों के अपोहवाद के खण्डन का प्रसङ्ग प्राप्त हो जाता है जो अर्थ को निषेधात्मक मानते हैं। बौद्धों का यह कथन है कि शब्द तद्भिन्न के निषेध के द्वारा अपने अर्थ को प्रकट करता है। उनके अनुसार गौ शब्द का अर्थ अगोव्यावृत्ति है। यह सिद्धान्त इन कारणों से अमान्य है—१) शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावः, इस नियम के अनुसार शब्द एक बार प्रयुक्त होने पर एक ही अर्थ की प्रतीति करा सकता है। यदि गौ शब्द अगोव्यावृत्ति में ही चरितार्थ हो गया तो फिर उससे गो अर्थ का ज्ञान कराने के लिए अन्य ही ध्वनि की आवश्यकता होगी। २) गौ शब्द के उच्चारण से अगोव्यावृत्तिपूर्वक गौ अर्थ का अभिधान भी नहीं माना जा सकता क्योंकि शब्द का फल अर्थज्ञान है और एक वस्तु के दो फल नहीं हो सकते। अतः एक शब्द से निषेध और विधिरूप दोनों अर्थ निष्पन्न नहीं हो सकते। ३) गौ शब्द के श्रवण से गो अर्थ का ज्ञान होगा, तभी तो तद्भिन्न की व्यावृत्ति का बोध हो सकता है। अतः जब एक बार विधिरूप ज्ञान हो ही गया तो फिर पहले निषेध और फिर विधिरूप अर्थ के फेर में पड़ना अनावश्यक गौरव है।

२०. शब्द के स्वरूप के सम्बन्ध में मीमांसक, वैयाकरण, नैयायिक और बौद्ध सभी के सिद्धान्तों में दोष प्रदर्शित कर देने के बाद भामह ने स्वपक्ष को प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया प्रत्युत इसके विवेचन के मार्ग को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुस्तर बताकर उसे अनुत्तरित ही छोड़ दिया है। जहाँ एक वर्ण के भिन्न हो जाने से पूरा का पूरा शब्द विपरीत अर्थ देने लगता है तथा एक अंशमात्र के भेद से वर्ण सर्वथा भिन्न हो जाते हैं, वहाँ शब्दतत्त्व का 'इदमित्थम्' के रूप में अन्तिम व्याख्यान कर पाना दुष्कर ही है।

२१. इस कारिका में शब्द के चार भेदों का उल्लेख है—द्रव्य, क्रिया, जाति और गुण। भामह का कथन है कि कुछ आचार्य यदृच्छारूप एक पाँचवां भेद भी स्वीकार करते हैं। उनके अपने मत से सम्भवतः इसका अन्तर्भाव द्रव्य शब्दों में किया जाना चाहिए।

२२-२३. शब्दप्रयोग का विषयक्षेत्र असीम है। अनेक भाषायें तथा शब्दों का अनन्त अर्थों में प्रयोग देखकर उनकी सीमा को निर्धारित कर पाना अत्यन्त कठिन है। पतञ्जलि ने पस्पशाह्निक में शब्दप्रयोग के इस विषय विस्तार की ओर संकेत किया है। पाणिनि आदि आचार्यों ने शब्दों के साधुत्व का प्रतिपादन विस्तार से किया है। इस सम्बन्ध में वही प्रमाण हैं, तथापि काव्यशास्त्र में छात्रकवियों के निमित्त प्रतीक के रूप में कुछ ऐसे प्रयोगों का उल्लेख किया गया है जो काव्य में चारुता को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। अतः भामह के इस प्रकरण को शब्दसाधुत्व न कहकर काव्यशब्दसाधुत्व का अध्याय कहना चाहिए।

२५. श्रोत्र शब्द से घन् प्रत्यय करने पर 'तदधीते', इस अर्थ में निपतित 'श्रोत्रिय' पद से पुनः **श्रोत्रियस्य यलोपश्च**, इस वार्त्तिक से अण् प्रत्यय तथा यलोप करने पर श्रौत्र शब्द निष्पन्न हुआ है। यह शब्द व्याकरण की दृष्टि से साधु है परन्तु अनतिप्रचलित नियमों से सिद्ध होने के कारण भामह उसे सुकवि के लिए प्रयोगार्ह नहीं मानते।

इसका एक पाठान्तर **श्रोत्रादि** भी प्राप्त होता है।

२९. कोई प्रतिष्ठित लेखक भी भ्रमवश अथवा प्रमादवश असाधु शब्द का प्रयोग करे तो उसका अनुकरण नहीं करना चाहिए। यहाँ शब्दों की साधुता पाणिनितन्त्र के अनुसार ही सिद्ध की जाती है। पाणिनि के अतिरिक्त ऐन्द्र, चान्द्र आदि व्याकरण सम्प्रदायों से साधित शब्दों का व्यवहार भामह को अभिप्रेत नहीं है। अपनी व्यापकता और सूक्ष्मेक्षिका के कारण पाणिनि सम्प्रदाय मान्य और प्रतिष्ठित हो गया था।

बहुलं छन्दसि, इस नियम के अनुसार वेद के सभी प्रयोग वैकल्पिक होते हैं। यथा, वेद में 'देव' के प्रथमा बहुवचन में 'देवाः' और 'देवासः' दोनों रूप प्रचलित हैं परन्तु लौकिक संस्कृत में दूसरा रूप मान्य नहीं है, अतः उसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२८. क्रमागतम् से अभिप्राय है—ऐसे शब्दों का प्रयोग जो परम्परागत हों। जो शब्द उस अर्थविशेष में प्रचलित नहीं हैं उन्हें घड़घड़कर प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। इसी बात को आचार्य ने प्रकारान्तर से इस प्रकार कहा है—**नाप्रयुक्तं प्रयुञ्जीत चेतःसंमोहकारिणम्** (६/२४)। श्रुतिकटु शब्दों के प्रयोग का निषेध प्रथम परिच्छेद (१/४७) में ही कर दिया गया है। 'अर्थ्यम्' का उल्लेख १/३५ में भी किया जा चुका है। समुदाय की अर्थशून्यता अपार्थदोष के रूप में (४/८) वर्णित है।

इन दोनों विशेषणों से शब्द की अर्थबोधकता द्योतित होती है। भामह-विवरण में इस शब्द के दो अर्थ किये गये हैं—**क्रमपरिज्ञानञ्च द्विविधम्**। कदाचित् उद्भट को इससे अपक्रम दोष का अभाव रूप अर्थ भी अभीष्ट था।

यहाँ वर्णों के श्रुतिसुखद प्रयोग पर बल दिया गया है। काव्य के उत्कर्ष का साधन होने के कारण यह भी एक प्रकार का विशिष्ट अलंकार ही है, जो सभी अन्य रूपकादि अलंकारों की अपेक्षा अतिशय से युक्त हैं। भामह ने द्वितीय परिच्छेद के प्रारम्भ में जो माधुर्य, प्रसाद और ओज का विवेचन किया है वह मूलतः पदों की समस्त अथवा असमस्त स्थिति पर ही आधारित है। विश्वनाथ आदि आचार्यों ने भी इन गुणों के स्वरूप का उल्लेख करते हुए वर्णों की स्थिति महत्त्वपूर्ण मानी है। टीकाकार उद्भट के अनुसार यद्यपि 'अजिह्मदत्' आदि श्रुतिकष्ट शब्दों के प्रयोग का निषेध पहले ही कर दिया गया है तथा यहाँ श्रुतिसुखद शब्दों में अत्यन्त आदर प्रकट करने के लिए इसका पुनः प्रकारान्तर से कथन किया गया है—**मुखेऽत्यन्तादरख्यापनार्थमिदमुक्तं श्रुतिसुखमित्य्** (कणिका ५२, क)।

अर्थ्यम् से अभिप्राय है—शब्द का अर्थ से युक्त होना। इससे डित्थ आदि अपार्थक शब्दों के प्रयोग का निषेध हो जाता है। अर्थ की प्रतीति में व्यवधान क्लिष्ट जैसे दोषों से भी आता है। इसी कणिका की अष्टम पंक्ति में वाक्यपादपूरक शब्दों के प्रयोग की भी चर्चा है—**णेपिवाक्यपादपूरणार्थं प्रयुञ्जान दृश्य**। ये भी अनर्थक निपात हैं। कदाचित् इनके प्रयोग का निषेध भी उद्भट को इष्ट है।

२९. इस कारिका में एक प्रकार से **त्रिमुनि व्याकरणम्** की अवधारणा को ही मान्यता प्रदान की गयी है। उपसंख्यान से वार्तिक तथा इष्टि से महाभाष्य अभिप्रेत है। अग्रिम श्लोक में उदाहृत 'प्रकृत्यैव मनोहरा' यह प्रयोग **'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'** इस वार्तिक से ही निष्पन्न होता है परन्तु वैयाकरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने अभीष्ट शब्द की सिद्धि के लिए पाणिनीय सूत्रों को तोड़मरोड़ देते अथवा उन्हें दूसरे सूत्रों के साथ अन्वित कर लेते हैं। इस प्रकार के प्रयास भामह की दृष्टि में प्रशस्त नहीं हैं।

३२. एकशेष प्रकरण में पठित **पुमान्स्त्रिया** १-२-६७ सूत्र से पुंवाचक और स्त्रीवाचक शब्दों के सहप्रयोग होने पर केवल पुंवाचक शब्द ही शेष रहता है, स्त्रीवाचक शब्द का लोप हो जाता है यथा, वरुणानी च वरुणश्च वरुणौ आदि। यहाँ भामह के द्वारा दिये गये सभी पाँचों उदाहरण ऐसे हैं जिनसे पतिपत्नी अर्थ निकलता है—यथाह **वरुणाविन्द्रौ भवौ शर्वौ मृडाविति**। वामन ने भामह की इस उपपत्ति को अपाणिनीय बताया है। इस प्रकरण में केवल स्त्रीत्व और पुंस्त्व अर्थ की ही प्रतीति होती है, दाम्पत्य अर्थ की नहीं क्योंकि यहाँ **'तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः'** सूत्र की अनुवृत्ति भी आ रही है।

३४. **'अव्ययादाप्सुपः'** से अव्ययीभाव समास में सुप् विभक्ति का लोप हो जाता है परन्तु अदन्त अव्ययीभाव से **'नाव्ययीभावादतोऽमत्वपञ्चम्याः'** २-४-८३ से पञ्चमी के अतिरिक्त सभी विभक्तियों में उसके स्थान पर अम् आदेश हो जाता है। तृतीया और सप्तमी में यह अम्भाव वैकल्पिक होता है। यथा 'उपकृष्णम्' इस अव्ययीभाव समास की प्रक्रिया में पञ्चमी विभक्ति में 'उपकृष्णात्' यह रूप बनेगा। इसके अतिरिक्त शेष सभी विभक्तियों में 'उपकृष्णम्' रूप बनता है। केवल तृतीया और सप्तमी में क्रमशः उपकृष्णेन तथा उपकृष्णे रूप भी विकल्प से प्राप्त होते हैं।

यहाँ भामह का यह निर्देश है कि पञ्चमी विभक्ति, जहाँ अम् भाव करना पाणिनितन्त्र के विरुद्ध है, के अतिरिक्त सभी जगह अमन्त प्रयोग ही करने चाहिएं। तृतीया और सप्तमी विभक्ति में भी, जहाँ यह व्यवस्था वैकल्पिक है, अदन्त अव्ययी-भाव ही प्रयुक्त किये जाने चाहिएं।

३६-३७. अष्टाध्यायी का सूत्र **'तृजकाभ्यां कर्तरि'** २-२-१५ तृच् और अक प्रत्ययान्त शब्दों के साथ षष्ठी समास का निषेध करता है परन्तु अनेक शिष्ट लोगों ने भी इस प्रकार के प्रयोग किये हैं। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण 'वृत्रहन्ता' है। स्वयं पाणिनि ने **'जनिकर्तुः प्रकृतिः'** १-४-३० सूत्र का निर्माण किया है, अतः ज्ञापक से भी यह समासविधि समर्थित है। अत एव न्यासकार ने भी तृच् प्रत्ययान्त शब्द के साथ षष्ठी समास का विधान किया है परन्तु भामह के अनुसार ये तीनों ही तर्क अमान्य हैं। यही स्थिति अकप्रत्ययान्त **'तद्गमकः'** आदि प्रयोगों की है। यह प्रयोग भी **'तत्प्रयोजको हेतुश्च'** १-४-५५ आदि सूत्रों से ज्ञापित है परन्तु ऐसे स्थलों में ज्ञापक मात्र के आधार पर षष्ठी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समास का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि स्पष्ट निषेध उससे अधिक बलवान् है। इसलिए ये प्रयोग अपाणिनीय हैं।

३८. सामान्यतः द्विगु समास नपुंसक होता है (स नपुंसकम् २-४-१७) तथा तत्पुरुष में उत्तरपद के अनुसार लिङ्ग निर्धारित होत है (परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २-४-२६) परन्तु 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इस वार्त्तिक से पञ्चराज आदि अकारान्त द्विगु स्त्र्यन्त होते हैं। इसी प्रकार 'सभा राजामनुष्यपूर्वा २-४-२३ सूत्र से सभा शब्दान्त तत्पुरुष नपुंसक में प्रयुक्त होते हैं, यदि पूर्व पद राजावाचक अथवा अमनुष्यवाचक हों यथा, पुरूहूतसभम्। इस प्रकार के प्रयोग अवधानपूर्वक किये जाने चाहिए।

५७. मेखला, माला और माया शब्दों से इनि प्रत्यय करने पर क्रमशः मेखलिन्, मलिन् और मायिन् तथा ठन् प्रत्यय करने पर मेखलिक, मालिक मायिक पद निष्पन्न होते हैं।

६१. **झयो होन्यतरस्याम्** ८-४-६२ सूत्र से झय् के अव्यवहित उत्तरवर्ती हकार को विकल्प से पूर्व सवर्ण हो जाता है। इससे वस्तुतः हकार के स्थान पर पूर्ववर्ण के वर्ग का चतुर्थ आदेश हो जाता है। अतः वाग्घरिः आदि रूपों की वैकल्पिक सिद्धि होती है। भामह के अनुसार ऐसे प्रयोग श्रुतिकटु होते हैं, 'पद्धति' आदि कुछ शब्दों को छोड़कर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-२

पादानुक्रमणी

अकवेः शास्त्रवेदनम्	१-३-४
अकेन च न कुर्वीत	६-३७-३
अखण्डमण्डलः क्वेन्दुः	२-४४-१
अग्राम्यशब्दमर्थ्यञ्च	१-१६-३
अङ्केष्वम्भसि योषिताम्	२-८३-४
अज्ञस्येव प्रगल्भत्वम्	१-३-३
अज्ञानसंशयज्ञान	५-५२-३
अञ्महारजनाल्लाक्षा	६-५१-३
अण्णन्तादपि ङीविष्टः	६-५१-१
अतद्गुणक्रियायोगात्	२-६१-३
अतः परं चारुरनेकधापरः	८-६६-३
अतिशेते ह्यलङ्कारम्	६ २८-३
अतो न्यायविरोधीष्टम्	४-३६-३
अतोऽभिवाञ्छता कीर्तिम्	१-८-१
अत्याजयद् यथा रामः	५-४४-१
अत्रापि बहु वक्तव्यम्	४-७-१
अत्रार्थपुनरुक्तं यत्	४-१५-१
अत्रैवान्तर्गतिमंता	२-१०-२
अथ नित्याविनाभावि	५-३१-१
अथ प्रतिज्ञाहेत्वादि	५-१-१
अथलिङ्गवचोभेदौ	२-५२-१
अथाभ्युपगमप्राप्तिः	५-४५-१
अदन्तं धुमूभ्रोः शतुः	६-५६-२
अदन्तं नाप्यपञ्चमी	६-३४-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अद्य या मम गोविन्द	३-५-३
अद्यारभ्य निवत्स्यामि	५-४३-१
अधनस्येव दातृत्वम्	१-३-१
अधरो विद्रुमच्छेद	२-५६-३
अधिकारादपेतस्य	३-२९-१
अधुना तिष्ठ केवलम्	४-११-४
अनन्तरैकान्तरयोः	२-१६-१
अनन्यमनसामपि	२-५३-२
अनयान्यदपि ज्ञेयम्	१-५७-१
अनयार्थो विभाव्यते	२-८५-२
अनलङ्कृतकान्तं ते	३-५१-१
अनिबद्धञ्च काव्यादि	१-१८-३
अनिबद्धं पुनर्गाथा	१-३०-१
अनुक्तमपि यत्रार्थात्	५-४५-३
अनुप्रासं प्रचक्षते	२-५-२
अनुप्रासः सयमकः	२-४-१
अनुमानञ्च केचन	५-११-२
अनेन वागर्थविदामलङ्कृता	३-५८-३
अन्तराले स्रजामिव	१-५४-४
अन्तरेण द्विजन्मना	४-५०-२
अन्तर्वोघशताकीर्णम्	४-४१-१
अन्यत्वेऽपि प्रतिक्षणम्	४-५-४
अन्यया घटविज्ञानम्	५-१०-३
अन्यथैवावगच्छति	४-३५-२
अन्यधर्मोऽपि तत्सिद्धिम्	५-४९-१
अन्यविद्याकरेणुभिः	६-२-४
अन्यसारस्वता [नाम	६-६-३
अन्यं व्यञ्जनचारुता	६-२८-४
अन्यापोहश्च नामान्य	६-१६-३
अन्यापोहेन वस्तुनः	३-४१-२
अन्यापोहेन शब्दोऽर्थम्	६-१६-१
अन्यार्थं विगमे यथा	१-४०-२
अन्यास्वपि कलास्वेवम्	४-३५-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्येन व्यपदिश्यते	५-१०-४
अन्ये शब्दार्थभेदतः	४-१२-४
अन्येषामपि कर्त्तव्या	३-५२-१
अन्यैः स्वचरितं तस्याम्	१-२६-१
अन्योत्कर्षाभिधित्सया	१-२२-४
अन्योप्यमावेक इव	५-२४-३
अन्वमीयन्त मृङ्गालि	२-८२-३
अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्	५-५०-३
अन्वयव्यतिरेकौ हि	५-४७-३
अपभ्रंश इति त्रिधा	१-१६-४
अपरं वक्ष्यते न्याय	५-३०-१
अपर्यन्तार्थवर्तिनाम्	६-२२-२
अपवादविधिज्ञाने	६-१८-३
अपवृत्तौ रवेरिह	५-५१-४
अपह्नुतिरभीष्टा च	३-२१-१
अपह्नुतिर्वि शेषोक्तिम्	३-२-१
अपामभ्यर्णवर्त्तित्वात्	५-५३-३
अपार्थमिव्यर्थनार्थम्	४-३-१
अपार्थं व्यर्थमेकार्थम्	४-१-१
अपां यदि त्वक् शिथिला	२-८३-१
अपि वा नोपदिश्यते	४-२६-२
अपीतमत्ताः शिखिनः	२-७८-१
अपुष्टार्थमवक्रोक्ति	१-३४-१
अपृथक्कृतसाध्योऽपि	५-५०-१
अपेतं यत्तया यथा	४-३६-४
अप्रतिष्ठं यदेकत्र	४-१७-३
अप्रस्तुतप्रशंसाञ्च	३-२-३
अप्रस्तुतप्रशंसेति	३-२६-३
अभार्योढ़ेन संस्कारम्	४-५०-१
अभिजातः कथं जनः	१-२६-४
अभिधेया विरोधिता	४-३५-४
अभिधेयैः परस्परम्	४-१७-२
अभिन्नलक्षणः पक्षः	५-२२-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिप्रायात्कवेर्नात्र	२-६०-३
अभ्यघाच्चारणान्यताम्	४-४०-४
अभ्यस्ताज्झेरदादेशे	६-५८-१
अभ्यस्तेषु प्रयोक्तव्यम्	६-५९-१
अभ्युपेतान् गुरूनपि	२-७४-२
अभ्युपैति यथोच्यते	५-४५-४
अभ्यूह्यमनया दिशा	२-९५-४
अभ्रष्टकलुषं जलम्	२-७८-४
अमिद्भिः शुभ्रदृग्दृष्टैः	१-४६-३
अमी कुसुमसौरभात्	५-५३-२
अमी नृपा दत्तसमग्रशासनाः	२-१८-१
अमुं व्याकरणार्णवम्	६-३-२
अमूनि कुर्वतेऽन्वर्थाम्	२-२६-१
अमेधोभिरसूयितम्	६-२-२
अम्भोजमिव वक्त्रं ते	३-३८-३
अयमर्थान्तरन्यासः	२-७३-३
अयमाकृष्यमाणस्य	३-२२-३
अयं पद्मासनासीनः	२-५५-१
अयं मन्दद्युतिर्भास्वान्	३-३४-१
अयं हि मध्यमग्रामः	४-३४-३
अयुक्तिमद्यथा दूताः	१-४२-१
अर्थज्ञानफलाः शब्दाः	६-१८-१
अर्थदुष्टं पुनर्ज्ञेयम्	१-५०-१
अर्थप्रतीतये गीतः	६-८-३
अर्थवान्वर्णसंघातः	४-३-३
अर्थस्य तदवस्थत्वम्	२-९३-३
अर्घ्यं न्याय्यमनाकुलम्	१-३५-२
अर्यादेवेति रूपादेः	५-१०-१
अर्थानामसघर्मणाम्	२-८९-२
अर्थान्तरन्यासवती	३-४१-३
अलङ्करिष्णुना वंशम्	४-४९-३
अलङ्कर्तुमयं जनः	६-३-४
अलङ्कारतया मतः	३-५५-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलङ्कारतया यथा	२-८१-४
अलङ्कारद्वयं विदुः	२-८८-२
अलङ्कारवदग्राम्यम्	१-३५-१
अलङ्कारं सुमेधसः	३-४-४
अलङ्काराय कल्पते	५-६६-४
अवगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्म	६-६४-२
अवलोक्य मतानि सत्कवीनाम्	६-६४-१
अवस्तुकञ्चेद्वितथम्	५-८-३
अवाचकमयुक्तिमत्	१-३७-२
अवाचोऽव्यक्तवाचश्च	१-४३-१
अवादीद् विदुरो यथा	३-५-२
अविगाह्योऽसि नारीणाम्	२-५३-१
अविवक्षितसामान्या	२-९१-१
असन्तमपि यद्वाक्यम्	६-४१-१
असभ्यवस्तुविषया	१-५०-३
असम्भवादयं युक्त्या	२-४८-३
असङ्गृहीतमप्यन्यद्	२-९५-३
असादृश्यविवक्षातः	३-४५-३
असाधारणसामान्य	५-५-३
असितत्तितुगद्रिच्छित्	१-४६-१
असिसङ्काशमाकाशम्	५-३४-१
असौ दधदलङ्कारम्	६-५९-३
असौ शुक्लान्तनेत्रत्वात्	५-५४-१
अस्तं प्रति यियासति	३-३४-२
अस्त्यात्मा प्रकृतिर्वेति	५-१५-१
अस्मिञ्जहीहि सुहृदि प्रणयाभ्यसूया	३-५६-१
अस्य च क्रियते भिदा	३-१७-२
अस्यन्तो विविधान्याजा	४-४५-१
अस्याख्यामर्थदीपनात्	२-३६-२
अस्यां सुवर्णालङ्कारः	६-३०-३
अहं त्वां यदि नेक्षेय	२-६९-१
अहिघ्नपद्मस्य जलारिधाम्नः	५-६३-३
अहो भारो महान्कवेः	५-४-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहो नु मन्दिमा तेषाम्	४-४२-३
अहो स्थेमा महार्चिषः	५-३४-४
अहृद्यमसुनिर्भेदम्	५-६२-१
अंशुमद्भिश्च मणिभिः	५-६४-१
आकुमारमसन्दिग्ध	१-१६-१
आक्रोशन्नाह्वयन्नन्यान्	२-६४-१
आक्षेप इति तं सन्तः	२-६८-३
आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासः	२-६६-१
आगमास्तत्त्वशंसिनः	५-३४-४
आगमो धर्मशास्त्राणि	४-४८-१
आचक्षीताविनश्वरम्	५-१७-४
आदधाने उदंशुनी	४-२८-२
आदिमध्यान्तयमकम्	२-६-१
आदिमध्यान्तविषयम्	२-२५-१
आदौ मध्यान्तयोर्वा स्यात्	२-१०-१
आधावन्मण्डलैर्नुदन्	२-६४-२
आधिक्यमुपमानानाम्	२-६१-१
आधिक्यं किल न ह्ययम्	२-५६-२
आनन्दजैर्नयनवारिभिरुक्षतु त्वाम्	३-५६-४
आपगेवोत्तितीर्षतः	२-५३-४
आपाण्डुगण्डमेतत्ते	१-५६-१
आमन्त्रञ्च वदेत्क्विपि	६-४०-२
आयुधान्यपराधिनम्	४-४५-२
आविद्वदङ्गनाबाल	२-३-३
आविभाति मुदे सताम्	६-५-२
आशीरपि च केषाञ्चित्	३-५५-१
आश्रयात्सा चतुर्विधा	५-३५-४
आश्रयो नश्यतीति च	५-३४-६
आश्लिष्य गाढ़ममुमानतमादरेण	३-५६-२
आस्त एव निरातङ्कम्	१-६-३
आहतुर्व्यतिरेकिणोः	२-३१-२
आहरिष्याम्यमुमद्य	५-३८-१
आहूतो न निवर्त्तेऽहम्	५-४२-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहेत्यन्ये प्रचक्षते	६-१६-२
इच्छन्त्यच्छान्दसं किल	६-४२-२
इति केचित्प्रचक्षते	२-९३-२
इति तद्भिद्यते त्रिधा	२-२५-४
इति द्व्यंकानुगति	५-२५-३
इति धर्मविरोधिनी	५-४१-४
इति निगदितास्तास्ता वाचामलङ्कृतयो मया	५-६९-१
इति निर्दिश्यते यथा	४-२४-४
इति पञ्चैव तद्यथा	२-१०-४
इति प्रयुञ्जते सन्तः	५-६०-३
इति प्रयोगस्य यथा	५-५७-१
इति प्राहुर्विसन्ध्यदः	४-२८-४
इति भर्तृनिदेशतः	५-३७-२
इति युक्त्या न युज्यते	१-४३-४
इति वाचामलङ्काराः	२-४-३
इति विस्मयाद् विमृशतो मे मतिः	३-४४-३
इति साधारितं मोहात्	४-३५-१
इतिहासाश्रयाः कथाः	१-९-२
इत्यत्र मेघकरिणाम्	३-१६-३
इत्यहो वर्त्म दुस्तरम्	६-२०-४
इत्याख्यातमपक्रमम्	४-२०-४
इत्युक्त उपमाभेदः	२-६५-१
इत्युक्ता तुल्ययोगिता	३-२७-४
इत्येतत्पञ्चधोच्यते	२-९-४
इत्येवमादि किं काव्यम्	२-८७-३
इत्येवमादिरुदिता	२-८४-१
इत्येवं वस्तुपञ्चकम्	६-६६-२
इदन्तु शास्त्रगर्भेषु	५-३०-३
इदमस्खलितं व्रतम्	३-४२-४
इनच्च फलवर्हाभ्याम्	६-५६-३
इनिः प्रयुक्तः प्रायेण	६-५७-१
इन्दीवराभनयनम्	३-४६-३
इभकुम्भनिभे बाला	६-४३-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इयत्ता केन वामीषाम्	६-२२-३
इयदेवास्त्वतोऽन्येन	२-६९-३
इयन्त ईदृशा वर्णाः	६-१३-१
इयं चन्द्रमुखी कन्या	६-३०-१
इष्टकार्याभ्युपगमम्	५-३५-१
इष्टञ्चातिशयार्थत्वम्	२-५०-३
इष्टं निश्चितये वाक्यम्	४-१८-३
इष्टः प्रयोगो युगपत्	३-१५-३
इष्टा वाचामलङ्कृतिः	१-३६-४
इष्ट्या यश्चोपपादितः	६-२९-२
इहेच्छन्त्यपरे यथा	२-८-२
ईदृगर्थाभिधायिनः	६-१३-२
उक्तमेवाभिधास्यते	४-१३-४
उक्तस्य पुनराख्याने	४-१५-३
उक्तस्यार्थस्य दृष्टान्तम्	५-५५-१
उक्तं तदभिनेयार्थम्	१-२४-३
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैः	६-६६-३
उक्ता तत्र हि नेष्यते	५-५६-२
उक्तार्थस्य प्रयोगो हि	२-६२-३
उक्तोऽन्यैस्तस्य विस्तरः	१-२४-४
उच्यते काममस्तीदम्	२-५७-१
उच्येते सविपर्ययौ	२-५२-२
उत्प्रेक्षातिशयान्विता	२-९१-४
उत्प्रेक्षावयवो यथा	३-४७-४
उत्प्रेक्षावयवञ्चान्ये	३-४-१
उत्सवः सुधियामेव	२-२०-३
उदयः पतनायेति	३-३४-३
उदात्तं शक्तिमान् रामः	३-११-१
उदूढ़शिशिरासारान्	४-३२-१
उन्नतालोकदयिता	३-१९-१
उन्मत्त इव भाषते	१-४४-२
उपकाराय कल्पते	१-४५-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपन्यसनमन्यस्य	२-७१-१
उपमादेरलङ्कारात्	२-६५-३
उपमानवतोऽर्थस्य	२-७५-१
उपमानाधिकत्वञ्च	२-३६-३
उपमानेन तत्त्वञ्च	३-४३-१
उपमानेन तद्भावम्	३-३५-१
उपमानेन यत्तत्त्वम्	२-२१-१
उपमानेन यत्तत्त्वम्	३-१४-१
उपमानोपमेयता	३-४५-२
उपमानोपमेयत्वम्	३-३७-१
उपमानोपमेययोः	३-१५-४
उपमारूपकञ्चान्यत्	३-३-१
उपमारूपकं यथा	३-३५-४
उपमासु प्रयुज्यते	२-४३-४
उपमेस्य यत्साम्यम्	२-३०-३
उपमेयस्य रूप्यते	२-२१-२
उपमेयस्य साधयन्	३-३५-२
उपमेयस्य साध्यते	३-१४-२
उपमेयोपमामपि	३-३-२
उपमेयोपमां नाम	३-३७-३
उपमोत्प्रेक्षयोर्यथा	२-५०-४
उपलप्स्ये स्वयं सीताम्	५-३७-१
उपान्तरूढ़ोपवन	३-२६-१
उपासनेति च युचम्	६-५०-१
उपासितगुरुत्वात्त्वम्	४-११-१
उपेयुषामपि दिवम्	१-६-१
उपेयुषामपि दिवम्	६-४२-३
उवाच रत्नाहरणे	३-८-३
ऊर्जस्वि कर्णेन यथा	३-७-१
ऋषभात्पञ्चमस्तस्मात्	४-३४-१
एकदेशविवर्ति च	२-२२-२
एकदेशस्य विगमे	३-२३-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकरूपतया शेषाः	२-६७-३
एकवस्तुनिबन्धनम्	४-४-४
एकस्यैव व्यवस्थत्वात्	२-२५-३
एकाकिनमरण्यान्याम्	४-४५-३
एकान्तशुभ्रश्यामे तु	२-७६-३
एकेनैवोपमानेन	२-६२-१
एतत्तच्चोच्यते यथा	२-२२-४
एतदस्ति महत्सरः	५-४८-२
एतदेवापरेऽन्येन	३-१२-१
एतद्ग्राह्यंसुरभि कुसुमं ग्राम्यमेतन्निषेयम्	१-५६-१
एते ज्ञेयाः शरारवः	५-५३-४
एलातक्कोलनागस्फुटबकुलताचन्दनस्यन्दनाढ्य	५-६८-१
एवं णिचः प्रयोगस्तु	६-४६-१
एवं पादान्तयोरपि	२-१६-२
एष भाति मतङ्गजः	२-५१-२
कणभक्षो यथा शब्दम्	५-१७-३
कथञ्चित्स्वाभिसन्धिना	१-३८-४
कथनैः कैश्चिदङ्किता	१-२७-२
कथमन्यतरासिद्ध	५-२३-३
कथमाक्षिप्तचित्तः सन्	४-१३-३
कथमेकपदेनैव	५-६०-१
कथं दूत्यं प्रपद्येरन्	१-४३-३
कथं पातोऽम्बुधाराणाम्	२-४८-१
कथं सोऽसम्भवो मतः	२-५०-२
कथापभ्रंशभाक्तया	१-२८-४
कथायाः स्वभिनीतता	३-५४-२
कदाचिदप्यप्रतिबद्धशासनाः	२-१५-२
कन्दर्पधनुषो ध्वनिः	३-२२-४
कन्याहरणसङ्ग्राम	१-२७-३
कमलानाञ्च सौरभात्	५-४८-४
कमलेन विकासिना	२-५६-२
करिणां मदवारिभिः	१-५७-४
करोति ध्वनिरम्भसाम्	४-१६-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलावपि भवानिह	५-५७-४
कलाशास्त्राश्रयञ्चेति	१-१७-३
कला सङ्कलनाप्रज्ञा	४-३३-१
कल्पनादुष्टमित्यपि	१-४७-२
कल्पनां नाम जात्यादि	५-६-३
कवयो न प्रयुञ्जते	१-३७-४
कवेरभिप्रायकृतैः	१-२७-१
कष्टं किं नु कथं नु तत्	४-४७-४
कस्यचित्प्रतिभावतः	१-८-४
कः कुर्यादुपमां कृती	२-४६-२
का निशा शशिना विना	१-४-२
कान्तं काव्यमयं वपुः	१-६-४
कान्ताविलोचनन्यस्तम्	१-५५-३
कान्तिर्वाप्युग्रतापि वा	२-६४-४
कान्ते इन्दुशिरोरत्ने	४-२८-१
कामिनां प्रीतिभिः सह	३-४०-४
कारणञ्चेन्न तन्नित्यम्	५-८१-३
कार्यः काव्यक्रियादरः	१-१०-४
कार्यः काव्यं विधित्सता	६-४-२
कार्यासम्भवतो यथा	४-१५-४
कार्योऽन्यत्र प्रतिज्ञायाः	५-४०-१
कालः पोढ़ेव भिद्यते	४-३१-२
कालेनैषा भवेत्प्रीतिः	३-५-५
काले परिणतं वहु	३-३०-२
काले माव्यर्थशंसि च	१-२६-४
काव्यं कपित्थमामञ्च	५-६२-३
काव्यं तु जायते जातु	१-५-३
काव्यं मधुरमिष्यते	२-३-२
काव्यान्यपि यदीमानि	२-२०-१
काव्यालङ्कार इत्येष	१-१-३
काव्येष्वपि सुमेधसाम्	५-४७-२
काव्येष्वभिहितं यथा	५-३०-४
काशा हरन्ति हृदयम्	५-५३-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किञ्च काव्यानि नेयानि	२-४५-१
किञ्चिच्चोपमया सह	२-९१-२
किञ्चिदन्तर्गतोपमा	३-२१-२
किञ्चिदाश्रयसौन्दर्यात्	१-५५-१
किञ्चिदुत्प्रेक्षयान्वितः	३-४७-२
किञ्चिद् विधित्सोर्या निन्दा	३-३१-३
किन्तया चिन्तया कान्ते	२-५-३
किन्तयोः सदृशं कृतम्	३-३२-४
किन्तु स्त्रीपुंसयोरयम्	२-५७-२
किमन्यत्सद्म कल्प्यते	६-१०-४
किमयं शशी न स दिवा विराजते	३-४४-१
किमित्ययं तु यः क्षेपः	५-४६-५
किमिन्द्रियद्विषा ज्ञेयम्	५-४६-१
किमुक्तेनाप्रियेण ते	२-६९-४
कियदुद्घट्टितज्ञेभ्यः	३-५२-३
कियन्तः सन्ति गुणिनः	२-३६-१
कियन्तो वाघ्वशाखिनः	२-३६-४
कियन्न हरते मनः	६-४७-४
किं शठाभिमनायसे	६-३९-९
किंशुकव्यपदेशेन	२-९२-१
किं साध्यं किञ्च साधनम्	५-५७-२
कीदृशी वाग्विदग्धता	१-४-४
कीर्तेरपि करोति तत्	५-६१-४
कुकवित्वं पुनः साक्षात्	१-१२-३
कुर्वन्ति काव्यमपरे	५-६७-३
कुर्वीत शशलक्ष्मणः	२-४९-४
कुलाकुलगलोबलः	२-६-४
कुसुमायुधो न धनुरस्य कौसुमम्	३-४४-२
कूजनात्कुररीणाञ्च	५-४८-३
कृच्छ्रेण पुनरुन्नतिः	१-५१-४
कृतागसां मार्गभिदाञ्च शासनाः	२-१५-३
कृतात्मनां तत्त्वदृशाञ्च मादृशः	४-५१-३
कृतार्थोऽन्यनिराकृतौ	६-१७-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृत्वा क्लेशान्तं याति वर्त्म प्रशान्तम्	२-१२-२
कृत्वा तद्विदुपासनाम्	१-१०-२
कृत्वा प्रतिज्ञां वत्सेन	५-३८-३
कृत्वा सन्धां शकुनिना	५-४२-३
कृत्स्नञ्च सर्वपादेषु	२-१६-३
केका विनेशुश्शिखिनां मुखेषु	२-४६-४
केचिदोजोऽभिधित्सन्तः	२-२-१
केचिद्विस्तरभीरवः	५-६०-४
केवलावर्थसिद्धये	५-४७-४
केवलं श्रुतिपेशलम्	१-३४-४
के शब्दाः किञ्च तद्वाच्यम्	६-२०-३
केषाञ्चित्सदृशं यथा	५-६२-४
को नाम वह्निनौपम्यम्	२-४६-३
को निराक्रियतेऽरिभिः	५-४६-२
कोलङ्कारोऽनया विना	२-८५-४
को वक्ष्यतीति विरतोऽहमतो विचारात्	६-६२-२
को वा गत्वरमर्थिभ्यः	५-४६-३
को वा हेतुरलं सिन्धोः	२-७०-३
को हन्तिं गतिवाचिनम्	६-२४-४
क्तिन्नन्तञ्च प्रयुञ्जीत	६-४६-१
क्रमवृत्तिषु वर्णेषु	४-५-१
क्रमशो योऽनुनिर्देशः	२-८६-३
क्रमागतं श्रुतिसुखम्	६-२८-१
क्रियते चाभिधा यथा	३-२१-४
क्रियते तेन का रतिः	६-४-४
क्रिययैव विशिष्टस्य	३-३३-१
क्रियायाः प्रतिषेधे या	२-७७-१
क्रीडायां विकृतञ्च तत्	१-४०-४
क्लिष्टं व्यवहितं विद्यात्	१-४०-१
क्लीबस्येवास्त्रकौशलम्	१-३-२
क्व कान्ताननमद्युति	२-४४-२
क्वचित्संयोगिनं वदेत्	६-६०-२
क्वचिदग्रे प्रसरता	२-५४-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्वचिदापत्य निघ्नता	२-५४-२
क्व विशेषः कुतश्च सः	५-७-४
क्षणमप्युत्सुका ततः	२-६६-२
ख्याप्यते येन दृष्टान्तः	५-२७-३
गजानां मदबिन्दुभिः	४-३७-२
गण्डमप्यपरे किल	१-५३-४
गण्डः साधु ययोदितम्	१-५६-४
गतानुगतिकन्यायात्	१-३३-३
गतेऽस्तं प्रति भास्वति	३-४८-२
गतो यातो हतो यथा	६-६१-२
गतोऽस्तमर्को भातीन्दुः	२-८७-१
गद्यं पद्यञ्च तद्द्विधा	१-१६-२
गद्येन युक्तोदात्तार्था	१-२५-३
गरीयानेव हि गुरून्	२-७४-३
गाढ़ालिङ्गनहेतवः	३-४०-२
गाम्भीर्यलाघववतोः	३-५०-१
गा वारयति दण्डेन	२-९४-३
गिरामलङ्कारविधिर्विधास्यते	२-९६-४
गिरामलङ्कारविधिः सविस्तरः	३-५८-१
गिरिं क्रौञ्चं मृगोत्तमः	३-३२-२
गुणक्रियाभ्यां नाम्ना च	३-१४-३
गुणलेशेन सोपमा	२-३०-४
गुणसाम्यप्रतीतितः	२-३४-४
गुणसाम्यविवक्षया	३-२७-२
गुणस्य वा क्रियाया वा	३-२५-१
गुणातिशययोगतः	२-८४-२
गुणानां समतां दृष्ट्वा	२-२१-३
गुणोऽत्र व्यतिरिच्यते	२-३५-२
गुरुतरधियामस्वाराधं मनोऽकृतबुद्धिभिः	५-६९-४
गुरुभिः किं विवादेन	४-७-३
गुरुमर्थं न पुष्यति	२-६२-४
गुरुवच्चानुशास्ति नः	२-३३-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुवाक्यानुरोधकः	३-११-२
गुरूपदेशादध्येतुम्	१-५-१
गुरोर्लघोश्च वर्णस्य	४-२६-१
गुरौ सति जिगीषुणा	४-४६-४
गूढ़शब्दाभिधानञ्च	१-३७-३
गूढ़शब्दाभिधानञ्च	१-४५-१
गृहेष्वध्वसु वा नान्नम्	३-६-१
गोक्षीरकुन्दहलिनाम्	२-६१-३
गोशब्दश्रवणाद्भवेत्	६-१६-२
गौडीयमपि साधीयः	१-३५-१
गौडीयमिदमेतत्तु	१-३२-१
ग्रथितं रक्तिलगोमिसूनुनेदम्	६-६४-४
ग्रहैरपि गजादीनाम्	२-६४-१
ग्राम्यं न पिण्डीशूरादिम्	६-२५-३
ग्राम्यानुप्रासमन्यत्तु	२-६-१
ग्राह्यग्राहकभेदेन	५-६-१
घनाघनानीलघनाघनालकाम्	२-१४-३
घनाञ्छबलयन्त्यमूः	६-४४-४
घनान्पश्य दिवोऽभितः	४-२३-४
चकार जानुदघ्नापान्	४-३८-३
चकोर इति गृह्यताम्	५-५४-२
चक्रवाकशुकादयः	१-४२-४
चक्रवाको विराजते	२-५५-२
चक्रे सा कामबाधिनी	५-४३-४
चतुर्धा भिद्यते पुनः	१-१७-४
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि	१-२१-१
चन्द्रभासा तिरोहिताः	२-८२-२
चन्द्रश्चन्द्रमुखोदितः	२-८-४
चर्मणा निर्मितस्य च	४-४७-२
चलन्तीं बिभृथ क्षितिम्	३-२८-४
चाणक्यो नक्तमुपयात्	३-१३-१
चारोः का वास्त्यलङ्कृतिः	३-५१-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्रं यन्न तवोद्धतिः	२-७०-२
चित्रोदात्ताद्भुतार्थत्वम्	३-५४-१
चीरीमतीररण्यानीः	२-२६-१
चूताः काननशोभिनः	४-३३-४
चेतः संमोहकारिणम्	६-२४-२
चैद्यं शार्ङ्गधनुर्यथा	३-८-४
च्युता स्यात्फणिनामिव	२-८३-२
छन्दोवदिति चोत्सर्गात्	६-२७-३
छायावन्तो गतव्यालाः	३-१८-१
छायाशीतापि भूरसौ	३-२६-२
छिन्नवान्तप्रवृत्तयः	१-४८-२
जगन्ति कुसुमायुधः	३-२४-२
जनको गवि गोबुद्धेः	६-१७-३
जनोऽभिसन्धिं क इवावभोत्स्यते	४-५१-४
जरामेष विभर्मीति	५-३६-१
जलभृन्मारुतेन्दवः	१-४२-२
जहार हृदयं नृणाम्	६-४३-४
जागर्या जागरा यथा	६-४६-४
जाज्वल्यमाना इव वारिधाराः	२-४७-३
जातयो दूषणाभासाः	५-२६-१
जातस्तरुरयञ्चोच्चैः	२-८०-३
जाता त्वपि गृहागते	३-५-४
जाति व्याधीनां दुर्दमानामधीनाम्	२-१२-३
जात्याद्यपोहे वृत्तिः क्व	५-७-२
जानुदघ्नी सरिन्नारी	६-५५-३
जामदग्न्यं युधा जित्वा	५-४४-३
जायते चारुता गिराम्	१-३६-२
जायते तत्तु नोदितम्	४-७-२
जायते भेदविषयः	५-१६-३
जायते यन्त काव्याङ्गम्	५-४-३
जायन्ते चारवो गिरः	२-७-४
ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः	२-७१-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञेया निदर्शना नाम	३-३३-३
ज्ञेया विभावनैवासौ	२-७७-३
ज्ञेया हेत्वपवादिनी	५-१५-२
ज्यायानाप कनीयसीम्	६-५४-४
ज्वलन्तीनां विवस्वतः	२-४८-२
ठक् चापि तेन जयती-	६-५२-३
डित्स्थादिप्रतिजानते	६-२१-४
डिम्भः शस्यावतारणीः	२-९४-४
ड्मतुविष्टञ्च कुमुदात्	६-५२-१
णाविष्ठवदितीष्ट्या च	६-३३-३
णिच् प्रातिपदिकात्ततः	६-३३-२
त एत उपमादोषाः	२-४०-१
तच्चकारावशो रुषा	५-३९-४
तज्ज्ञानं संशयं विदुः	४-१७-४
तज्ज्ञैः काव्यप्रयोगेषु	५-३३-१
तडिद्वलयकक्ष्याणाम्	२-२४-१
तत एवेति नान्यतः	५-१०-२
ततश्छमिष्ट्या च यथा	६-५३-३
ततस्तज्जननं वचः	४-१८-२
ततोऽर्थादिति केचन	५-६-२
तत्किलोदात्तमुच्यते	३-१२-४
तत्तथैव प्रयोजयेत्	६-४१-२
तत्तद्विरोधि विज्ञेयम्	४-२९-३
तत्पुनः पञ्चधोच्यते	१-१८-४
तत्प्रादुष्कृतमन्यथा	५-३३-२
तत्फलस्य विभावना	२-७७-२
तत्र लोकाश्रयं काव्यम्	५-३३-३
तत्राक्षेपो द्विधा मतः	२-६७-२
तत्रापि मेखलामाला	६-५७-३
तत्रासम्भविनार्थेन	२-४९-१
तत्सामानविशेषणः	२-७९-२
तत्सहोक्त्युपमाहेतु	३-१७-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा क्रशयतीत्यपि	६-३३-४
तथा ठंश्च मनीषिभिः	६-५७-२
तथापि तेषां तैरस्ति	२-६४-३
तथा भवतु भूम्नेदम्	१-४४-३
तथा भ्रमरहारीत	१-४२-३
तथाविधं गजच्छद्म	४-४१-३
तथैव पुरुगाभारि	५-३६-३
तथैवाख्यायिकाकथे	१-१८-२
तदपार्थकमिष्यते	४-८-२
तदपेतं यतिभ्रष्टम्	४-२४-३
तदपेतं विपर्यासात्	४-२०-३
तदपोहेषु च तथा	५-८-१
तदभावे च नास्तिता	५-२७-२
तदर्थस्योपदर्शनात्	३-३३-२
तदर्थहेतुसिद्धान्त	५-१३-१
तदाभस्तदवृत्तितः	५-२६-४
तदा शुक्लांशुकानि स्युः	२-८३-३
तदाहुः कल्पनादुष्टम्	१-५२-३
तदुपच्छन्दनायैषः	५-२-३
तदेकार्थं प्रचक्षते	४-१२-२
तदेतदाहुः सौशब्द्यम्	१-१५-१
तदेभिरङ्गैर्मूष्यन्ते	५-६६-१
तदेव च किल ज्यायः	१-३१-३
तदेव वारि सिन्धूनाम्	५-३४-३
तदेवैकार्थमिष्यते	४-१५-२
तद्धर्मोऽपि न सेत्स्यति	५-१५-४
तद्वदेवाभिधीयते	२-३३-२
तद्विदो नान्तरीयार्थ	५-११-३
तद्विपर्ययतो वापि	५-२६-३
तद्विरोधकरं यथा	४-३३-४
तद्विरोधकरं यथा	४-३६-४
तद्विरोधकृदित्याहुः	४-३१-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद्विरोधितदाचार	४-४८-३
तद्विवेकोऽयमुच्यते	६-२३-४
तद्वृत्तेश्चानुदाहृतौ	५-२३-२
तन्न्यूनाधिकता वापि	४-२६-३
तन्मात्रार्थप्रतीतये	५-१-४
तन्मात्राविष्कृतेर्यथा	५-५८-४
तन्मूलत्वात्कथायाश्च	५-२८-३
तन्वी श्यामा लता यथा	२-३१-४
तमाद्रियेत प्रायेण	६-२९-३
तमाप्तश्रावकासिद्धेः	४-२२-३
तमाहुः शुद्धदृष्टान्तम्	५-५८-३
तमित्याहुरनन्वयम्	३-४५-४
तमिस्राभृङ्गिणादयः	६-५६-२
तयैव हि तदर्थस्य	५-१४-१
तरुमारुह्य सर्वतः	२-९२-२
तर्कयेत्तां ययागमम्	२-८४-४
तवेव वदनं तव	३-४६-४
तवैव नान्यस्य सुतस्य वृत्तम्	५-६३-४
तवैवागमनात्पुनः	३-५-६
तस्मात्कूटस्थ इत्येषा	६-११-१
तस्य चाधिगमे यत्नः	६-४-१
तस्य हेतुं प्रचक्षते	३-५४-४
तस्यान्यैर्बहुधोच्यते	१-१३-८
तस्यापि सुधियामिष्टाः	५-५२-१
तस्या हारी स्तनाभोगः	६-४७-१
तस्याः कैश्चिन्महात्मभिः	२-३७-२
तस्यैव कृतिनः पश्चात्	४-४०-३
तं शब्दं ब्रुवते परे	६-७-२
ताच्छील्यविषयं णिनिम्	६-४६-४
ताच्छील्यादिषु चेष्यन्ते	६-४८-१
तामुत्कमनसं नूनम्	४-१६-१
ताम्बूलरागवलयम्	३-४६-१
तावत्किलायमध्यास्ते	१-७-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तासां प्रपञ्चो बहुधा	५-२९-३
ताः साधर्म्यसमादयः	५-२९-२
तासूक्तान्न च विरुणद्धि कांश्चिदर्थान्	६-६३-२
तिष्ठद्गु च वहद्गु च	६-३५-४
तिष्ठद्गु प्रमृतौ वाच्यौ	६-३५-१
तुङ्गा जलददन्तिनः	२-२३-२
तुङ्गा जलददन्तिनः	३-१६-२
तुल्यकार्यक्रियायोगात्	३-२७-३
तुल्यकाले क्रिये यत्र	३-३९-१
तुल्यजातावदृष्टत्वात्	५-५४-३
तुल्यश्रुतीनां भिन्नानाम्	२-१७-१
तुल्यार्थत्वेऽपि हि ब्रूयात्	६-२४-३
तुल्योदयावसानत्वात्	३-४८-१
तृचा समस्तषष्ठीकम्	६-३६-३
तृतीया सप्तमीपक्षे	६-३४-३
तृतीयैकवचः षष्ठ्याम्	६-४०-१
तेजस्तिरयतः सौरम्	४-२३-३
तेनासदृशतापि च	२-३९-४
तेनासम्भव उच्यते	२-४८-४
तेषां कटतटभ्रष्टैः	४-३७-१
त्र्याक्षिकः शास्त्रिको यथा	६-५२-४
त्रयमप्युच्यते यथा	२-५२-४
त्रयमप्युदितं ननु	२-३८-२
त्रयाणामपि नेष्यते	२-५७-४
त्रिधा दीपकमिष्यते	२-२५-२
त्रिधा निर्दिश्यते यथा	२-२६-४
त्रिभिर्निदर्शनैश्चेदम्	२-२६-३
त्रिरूपाल्लिङ्गतो ज्ञानम्	५-११-१
त्वत्तेजसा दग्धसमस्तशोभा	३-५७-३
त्वदास्यमिव पङ्कजम्	३-३८-४
त्वमेव नरवाहनः	५-५९-४
त्वमेव वीरप्रद्युम्नः	५-५९-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वमेत्रैलः पुरूरवा ५-५६-२
त्वया भिन्नं द्विषां बलम् २-५४-४
त्वयि वीक्षिते न लभतेऽर्थनिश्चयम् ३-४४-४
त्वां वीजयति सुश्रोणि ६-४५-३
दग्धादग्धमरण्यान्याः २-६२-३
दण्डनीतिं च तां विदुः ४-३६-२
दधतीत्यादयोऽपि च ६-५८-२
दधुषी कञ्चुकं स्तने ६-४३-२
दध्रे यस्याम्बुराशिः शशिकुमुद्सुधाक्षीरशुद्धां सुकीर्तिम् ५-६८-४
दर्शनञ्चापरे विदुः ५-११-४
दर्शितं किल कार्मुकम् २-४२-२
दाडिमानि दशापूपाः ४-८-३
दारुभित्तिमुवोतीत्य ६-१०-३
दिदेवेत्यर्थबाधिनी ५-४२-४
दिनार्द्धभाजः परिवेषिणोऽर्कात् २-४७-४
दिशायुक्तमसाध्वपि १-५७-२
दिशोऽनुत्कण्ठिताकुलाः २-७८-२
दीनेषु पद्मानिलनिर्मदेषु २-४६-२
दीप्रदीपा निशा जज्ञे ५-५१-१
दुनोति मम तां प्रियाम् २-२४-४
दुरुक्तमपि शोभते १-५४-२
दुष्कृतं साधु तादृशम् २-१६-४
दुष्टग्राहोऽम्भसां पतिः ३-५०-४
दुस्सुतेनेव निन्द्यते १-११-४
दूरदेशविचारिणः १-४३-२
दूराधिकगुणस्तोत्र ३-३१-१
दूर्वाकाण्डमिव श्यामम् २-३१-३
दूषणं न्यूनताद्युक्तिः ५-२८-१
दृष्टं वा सर्वसारूप्यम् २-४५-३
दृष्टिं दृष्टिसुखां धेहि २-८-३
देवनो रमणो यथा ६-५०-४
देवी समागमद्धर्म ३-६-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देशकालकलालोक	४-२-१
देशकालक्रियादिभिः	२-३०-२
दोषाः प्रागुदितास्त्रयः	५-५२-२
दृष्टञ्जगति कारणम्	५-३१-२
द्यूतायेति युधिष्ठिरः	५-४२-२
द्रव्यक्रियाजातिगुण	६-२१-१
द्वयसज्दघ्नचाविष्टौ	६-५५-१
द्विजातिवदधीतेऽसौ	२-३३-३
द्विधा रूपकमुद्दिष्टम्	२-२२-३
द्विप्रकारमुदात्तञ्च	३-१-३
द्विरदानाञ्चतुश्शती	१-५८-२
द्विषां पुरः पश्यतु राजलोकः	३-५७-४
द्विषो जेष्नीयिषीष्ट वः	१-४६-४
द्विः सन्दधाति किं कर्णः	३-७-३
धत्ते शोभामसाध्वपि	१-५५-२
धत्ते शोभां विरचितमिदं स्थानमस्यैतदस्य	१-५९-२
धर्मार्थकामकोपानाम्	५-३५-३
धर्मार्थकाममोक्षेषु	१-२-१
धर्माहितविशेषणा	५-१९-२
धर्मिणोऽस्याप्रसिद्धत्वात्	५-१५-३
धर्मीकृतविशेषणः	५-१२-२
धातूणादिगणग्राहम्	६-१-३
धात्वनेकार्थतावशात्	६-२६-२
धावतां सैन्यवाहानाम्	४-३८-१
धीखेदार्यैव विस्तरः	२-९५-२
धीरन्त्यशब्दविषया	४-६-१
धीरैरालोकितप्रान्तम्	६-२-१
धूमभासोरपि प्राप्ता	६-७०३
धूमादभ्रङ्कषात्साग्नेः	५-४९-३
ध्यानग्रहबृहत्त्वम्	६-१-४
न कथञ्चिदुदाहरेत्	६-३६-४
न कान्तमपि निर्भूषम्	१-१३-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नक्तं दिवसगोचरौ	६-३५-२
न चापिच्छान्दसं वदेत्	६-२७-४
न चापि समुदायिभ्यः	६-१०-१
न चाप्यसदृशाक्षरा	२-७-२
न चाभिमानेन किमु प्रतीयते	४-५१-२
न चाभ्युदयभाक्तस्य	१-२३-३
न चैकस्य फलद्वयम्	६-१८-२
न ज्यायान्विस्तरो मुधा	२-३८-४
न डित्थादिमपार्थकम्	६-२५-४
न तदिच्छन्ति कृतिनः	१-५३-३
न तन्त्रान्तरसाधितम्	६-२७-१
न तवर्गं शकारेण	६-६०-१
न तस्यैव वधं ब्रूयात्	१-२२-३
न तु योगविभागजम्	६-२९-४
न ते धीर्धीर भोगेषु	२-१३-१
न दुष्टादिमपेशलम्	६-२५-२
न दूषणायायमुदाहृतो विधिः	४-५१-१
न दोलायेत तद्यथा	४-१८-४
न निगाद्यमवद्यवत्	१-११-२
न नितान्तादिमात्रेण	१-३६-१
ननु सादृश्यमुच्यते	२-६२-२
ननूपमानुमैवास्तु	५-५५-३
ननूपमीयते पाणिः	२-५६-१
नन्दक्रीडागृहं यथा	३-१३-२
नन्वकारादिवर्णानाम्	६-८-१
न पदानि प्रयुञ्जते	२-१-४
नपुंसकं तत्पुरुषम्	६-३८-४
न प्रयोज्यं कथञ्चन	१-४५-२
नभः कुसुममस्तीति	६-१२-३
नभः खण्डमिवोज्झितम्	२-५१-४
न भुञ्जते द्विजास्तच्च	३-९-३
नमोऽस्तु तेभ्यो विद्वद्भ्यः	४-४६-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमोऽस्तु तेभ्यो विद्वद्भ्यः	६-१५-३
न यच्छति धनं लघु	५-४६-४
न यन्ति नयवेदिनः	४-४६-४
न यन्ति वचनाद्विना	१-३६-४
नरवाहनदत्तेन	४-५०-३
न लेशज्ञापकाकृष्टम्	६-२६-३
न वक्त्रापरवक्त्राभ्याम्	१-२८-१
न शब्दपुनरुक्तं तु	४-१३-१
न शब्दाः क्षणनश्वराः	४-६-४
न शिष्टैरुक्तमित्येव	६-२७-१
न स न्यायो न सा कला	५-४-२
न सर्वंसारूप्यमिति	२-६०-१
न स व्यापितयेष्यते	१-२३-२
न स शब्दो न तद्वाच्यम्	५-४-१
न ह्यन्युर्वहवः कथम्	४-४५-४
न हेत्वनभिधानतः	५-३५-४
नाकवित्वमधर्माय	१-१२-१
नाज्ञासीत्स स्वभूगतम्	४-४१-४
नाटकं द्विपदीशम्या	१-२४-१
नातिव्याख्येयमृद्धिमत्	१-२०-४
नादादन्यश्च कथ्यते	६-१४-२
नानाख्येयममेधसाम्	१-३३-४
नानाधात्वर्थगम्भीरा	२-१६-१
नाना भाषाविषयिणाम्	६-२२-१
नाना रत्नादियुक्तं तत्	३-१२-३
नानार्थवन्तोऽनुप्रासाः	२-७-१
नान्यप्रत्ययशब्दा वाक्	६-५-१
नापारयित्वा दुर्गाधम्	६-३-१
नाप्रतीतान्यथार्थत्वम्	६-२६-१
नाप्रयुक्तं प्रयुञ्जीत	६-२४-१
नाभिधानं प्रतीयते	१-४१-४
नायकं प्रागुपन्यस्य	१-२२-१
नायकाभ्युदयैश्च यत्	१-२०-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नायकेन तु नोच्यते	१-२६-२
नायकेन स्वचेष्टितम्	१-२६-२
नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी	१-१५-२
नार्वाचीनं निबन्धनं	५-६१-२
नालङ्कारतया मतः	२-८६-२
नालुप्तविषयमानयेत्	६-३४-४
नासां चतसृणामपि	५-४०-४
नास्ति भावस्य कस्यचित्	२-४३-२
नितम्बद्वयसं सरः	६-५५-४
नितान्तेति यथोदितम्	२-५-४
नित्यमासेः प्रयोजयेत्	६-५०-२
नित्यञ्चेत्कारणं न तत्	५-३१-४
निन्दाप्रशंसाचिख्यासा	२-३७-३
निमित्ततो वचो यत्तु	२-८१-१
निराकाङ्क्षञ्च तद्वाक्यम्	४-४-३
निर्दिष्ट उपमेयेऽर्थे	२-५६-३
निर्देक्ष्यन्ते यथाक्रमम्	२-६७-४
निर्देशः क्रियते समम्	३-१६-४
निर्देशात्त्रिविधं यथा	३-१७-४
निर्देशोऽत्र क्रमो मतः	४-२०-२
निर्यान्तो मदयन्तीमे	२-८३-३
निशाकृतः प्रकृत्यैव	३-५१-३
निष्पेतुरास्यादिव तस्य दीप्ताः	२-४७-१
नीपोऽविलिप्तसुरभिः	२-७८-३
नीलं पलाशमाबद्धम्	१-५४-३
नेत्रे ते ताम्रराजिनी	२-७६-२
नेयं विरौति भृङ्गाली	३-२२-१
नेयार्थं क्लिष्टमन्यार्थम्	१-३७-१
नेयार्थं नीयते युक्तः	१-३८-१
नैकत्रौकारभूयस्त्वम्	६१-६-१
नोत्प्रेक्षाभिहिता क्वचित्	२-८८-४
न्यायः शास्त्रं त्रिवर्गोक्तिः	४-३६-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न्यायागमविरोधि च	४-२-२
न्याय्यं नाधिकता भवेत्	२-६१-२
न्याय्या नापि च संहतिः	६-९-४
न्याय्ये वर्त्मनि तिष्ठताम्	४-४९-२
न्यासकारमतेन वा	६-३६-२
न्यूनस्यापि विशिष्टेन	३-२७-१
न्यूनं नेष्टं प्रतिज्ञया	५-२८-४
न्यूनं हेत्वादिनात्र च	५-२८-२
पक्षस्तस्य च निर्देशः	५-१२-३
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तम्	१-२०-३
पञ्चराजीति च यथा	६-३८-१
पञ्चाशता दोषदृष्टिः	६-६५-३
पञ्चैवान्यैरुदाहृता	२-४-४
पटिमा लघिमा यथा	६-५४-२
पतनञ्जायतेऽवश्यम्	१-५१-३
पतन्तो वाष्पबिन्दवः	६-३१-४
पतिष्यन्तीति काऽनुमा	४-४३-४
पदद्वयस्य सन्धाने	१-५२-१
पदमेकं परं साधु	५-६१-१
पदानामेव सङ्घातः	४-४-१
पदार्थापाकृतिः किल	६-१६-४
पदेनैकेन कथ्येते	३-३९-३
पद्मेन्दुमृगमातङ्ग	२-९०-१
पयोमुचां ध्वनिर्धीरः	२-२४-३
परपक्षानुपादानम्	५-२३-१
परप्रत्ययतो यत्तु	६-४-३
परानीकानि भीमानि	२-७२-१
परित्यागश्च कर्त्तव्यः	५-४०-३
परिवृत्तिरसौ यथा	३-४१-४
परेण धृतमुक्तेव	६-५-३
परेषामेव भूतये	३-१८-४
पर्यायोक्तं यदन्येन	३-८-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर्यायोक्तं समाहितम्	३-१-२
पश्यतीव विभावसुः	२-९२-४
पातां वः शम्भुशर्व्ण्यौ	४-२८-३
पातां वः शम्भुशार्ङ्गिणौ	४-२१-४
पाततश्च नभस्वता	२-८०-४
पादाभ्यासं तथावली	२-९-२
पादो जयति सिद्धस्त्री	३-३६-३
पारायणरसातलम्	६-१-२
पार्थाय पुनरागतः	३-७-२
पास्याम्यस्यासृगाहवे	५-३९-२
पितुः प्रियाय यां भीष्मः	५-४३-३
पितृक्रमाघ्यासिततादृशासनाः	२-१५-४
पिबन्ति कटुभेषजम्	५-३-४
पुञ्जीभूतमिव ध्वान्तम्	२-५१-१
पुण्डरीकासितोत्पले	२-७६-४
पुनरुक्तमिदं प्राहुः	४-१२-३
पुनरुक्तं न तद्विदुः	४-१४-४
पुरा गौरिति विज्ञानम्	६-१९-१
पुरूहूतसमं यथा	६-३८-४
पुरोऽदृश्यत नारद	३-१०-४
पुष्णाति नितरां श्रियम्	६-३०-४
पुंसामात्मैव शंसति	२-७२-४
पुंसि स्त्रियाञ्च क्वस्वन्तम्	६-४२-१
पुंस्कोकिलकलापिनः	२-९०-२
पूर्वापरार्थव्याघातात्	४-९-३
पूर्वार्थानुगतो यदि	२-७१-४
पूर्वे कार्तयुगे यथा	५-५७-४
पेलवोपस्थिताण्डजाः	१-४९-२
प्रकारेणाभिधीयते	३-८-२
प्रकृत्यैव मनोहरा	६-३०-२
प्रचारवर्षितोद्गार	१-४८-३
प्रजाजनश्रेष्ठवरिष्ठभूभृतू	५-६३-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रणम्य सार्वं सर्वज्ञं	१-१-१
प्रणालीमुखपातिनाम्	४-१६-४
प्रतिज्ञाय पितुर्यथा	५-३६-२
प्रतिज्ञाय यथा भीमः	३-३६-३
प्रतिज्ञाय सुयोधनः	५-४१-२
प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्त	४-२-३
प्रतिज्ञां प्रतिजानते	५-३५-२
प्रतिज्ञेत्यभिधीयते	५-१२-४
प्रतिदिङ्मुखमध्वनः	४-३८-४
प्रतिबिम्बनिदर्शनम्	५-५५-२
प्रतिवस्तूपमोच्यते	२-३४-२
प्रतिषेध इवेष्टस्य	२-६८-१
प्रतीतशब्दमोजस्वि	२-१८-१
प्रतीतार्थं प्रसादवत्	२-३-४
प्रतीतिरर्थेषु यतः	६-७-१
प्रत्यक्षबाधिनी तेन	५-२०-१
प्रत्यक्षमनुमा च ते	५-५-२
प्रत्यक्षमनुमानं वा	६-११-२
प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्	५-६-१
प्रत्यक्षं तत्त्ववृत्ति हि	५-८-४
प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते	३-५३-३
प्रत्येकमसमर्थानाम्	६-९-१
प्रथनादुक्तसिद्धये	२-७३-२
प्रथमालीढ़मघवः	५-३-३
प्रथितवचसः सन्तोऽभिज्ञाः प्रमाणमिहापरे	५-६९-३
प्रदाय वित्तमर्थिभ्यः	३-४२-१
प्रदेशस्यानुमामिव	५-५०-२
प्रबन्धविषयं गुणम्	३-५३-२
प्रमाणविषयौ यथा	६-५५-२
प्रमाणं येऽस्य निश्चितौ	६-१५-४
प्रमाणानि न सन्ति वा	५-१८-४
प्रमाणेनैव बाध्यते	५-२०-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयुञ्जीत द्विगुं स्त्रियाम्	६-३८-२
प्रयुञ्जीताव्ययीभावम्	६-३४-१
प्रयोक्तुं ये न युक्ताश्च	६-२३-३
प्रयोगं प्रति साधवः	६-२३-२
प्रयोगाद्योऽन्यथा भवेत्	४-२२-२
प्रयोगो न कथञ्चन	५-४०-२
प्रयोगोऽस्याश्च तद्यथा	३-५५-४
प्रवृत्तदानार्द्रकटा मतङ्गजा	२-६३-२
प्रवासिनाञ्च चेतांसि	२-२९-३
प्रवृत्तौ गौरिति ध्वनिः	६-१९-४
प्रसन्नमृजुकोमलम्	१-३४-२
प्रसादञ्च सुमेधसः	२-१-२
प्रसादि स्वभिधानञ्च	२-१८-३
प्रसिद्धधर्मा प्रत्यक्ष	५-१३-३
प्रसिद्धधर्मेति मता	५-१९-३
प्रसिद्धे धर्मिणि ध्वनौ	५-१६-२
प्रहेलिका सा ह्युदिता	२-१९-३
प्रागित्थं समयः कृतः	६-१३-४
प्रायेण दुर्बोधतया	५-२-१
प्रायोपवेशाय यथा	५-४१-१
प्रावर्त्तत नदी घोरा	४-३७-३
प्रावृषेण्यान् नभस्वतः	४-३२-२
प्रियामिमामुत्सुकयन्ति यन्ति च	२-१४-४
प्रियोन्मनायते सा ते	६-३९-३
प्रीणित प्रणयि स्वादु	३-३०-१
प्रीतिं करोति कीर्तिञ्च	१-२-३
प्रेम घ्नन्ति न हि स्त्रियः	४-१०-४
प्रेयो गृहागतं कृष्णम्	३-५-१
प्रेयो रसवदूर्जस्वि	३-१-१
फलनिम्नैश्च शाखिभि	५-६४-२
फलभेदादयं द्विधा	५-२२-४
फलं पश्यत शाखिनाम्	३-३०-४
फलिनो बर्हिणो यथा	६-५६-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फले चैकस्य वः कथम्	६-१८-४
फुल्लाः सुरभयन्तीमे	४-३२-३
फुल्लैश्च कुसुमैरन्यैः	५-६४-३
फेनवारिमुखच्युतम्	४-३८-२
बभूदिवीवामलविग्रहा ग्रहाः	२-६३-४
बलाकामालभारिणाम्	२-२४-२
बलाकाः पश्य सुश्रोणि	६-४४-३
बहुकुसुमविभूषिते स तस्थौ	५-६५-३
बहुपूरणमाकुलम्	५-६७-२
बहुविधकृतीर्दृष्ट्वाऽन्येषां स्वयं परितर्क्य च	५-६९-२
बहुसत्त्वाश्रयत्वाच्च	३-२०-३
बह्वलङ्कारयोगतः	३-४९-२
बाधिनी चेति दुष्यति	५-१३-४
बाह्यमाचक्षते परे	१-१४-२
बिभर्तिप्रणयागतान्	२-७४-४
बिभ्रत्सलीलं शशिभासमब्जम्	२-४१-२
बुद्धौ तु सम्भवत्येतत्	४-५-३
ब्रुवते तां यथोदिताम्	३-३७-४
ब्रूयान्नान्यत्र पद्धतेः	६-६१-४
भक्तिर्वा नास्ति भर्तरि	४-४२-४
भयमाशु प्रमादिनाम्	४-१९-४
भयशोकाभ्यसूयासु	४-१४-१
भरतस्त्वं दिलीपस्त्वम्	५-५९-१
भर्तुश्छन्दानुवर्तिन्यः	४-१०-३
भवौ शर्वौ मृडाविति	६-३२-४
भातिणिज्विहितो यथा	६-४४-२
भामहेन क्रमेण वः	६-६६-४
भाविकत्वञ्च निजगुः	३-४-३
भाविकत्वमिति प्राहुः	३-५३-१
भासा बिम्बफलेन च	२-५६-४
भिन्नवृत्तमिदं यथा	४-२६-४
भिन्नवृत्तं विसन्धि च	४-१-४
भिन्नं गेयमिवेदं तु	१-३४-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीमाम्भसश्च जलधेः	६-६२-४
भुञ्ज्महे यदधीतिनः	३-९-२
भूतार्थापह्नवादस्याः	३-२१-३
भूधराणामुपत्यकाः	२-२८-४
भूमृतां पीतसोमानाम्	४-४९-१
भूयसामुपदिष्टानाम्	२-८९-१
भूयसार्थोपदेशकृत्	१-२१-२
भूयस्त्वादिह नोदितः	५-२९-४
भूषणोपवनस्रजः	५-६६-२
भेदञ्च वदतः पुनः	३-४३-२
भेदात्ते च चतुर्विधाः	६-२१-२
भेदादत्राभिधीयते	२-३७-४
भेदादिष्टं द्वयं तु नः	१-१५-४
भेदेनानेन वर्त्मना	५-८२-२
भेदैः श्लिष्टमपि त्रिभिः	३-१-४
भ्रमति भ्रमरमाला काननेषून्मदासौ	४-२७-१
भ्रातुर्भ्रातृष्यमुन्मथ्य	५-३९-१
मतुप्प्रकरणे ज्योत्स्ना	६-५६-१
मदक्लिन्नकपोलानाम्	१-५८-१
मदान्धमातङ्गविभिन्नसाला	३-५७-१
मदिरामदपाटलम्	३-३८-२
मदेन मुखरा मुहुः	३-२२-२
मदो जनयति प्रीतिम्	२-२७-१
मध्यमोत्पीडितर्षभः	४-३४-४
मनोज्ञभीमं वपुराप कृष्णः	२-५८-२
मनोवाक्कायकर्मभिः	१-१-२
मन्तव्याः काव्यहेतवः	१-९-४
मन्त्रदूतप्रयाणाजि	१-२०-१
मन्दाः साङ्केतिकानर्थान्	६-१४-३
मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं ताम्	२-८१-३
मन्यन्ते पारमार्थिकान्	६-१४-४
मन्यन्ते सुधियोपरे	१-३१-२
मन्यन्ते सुधियोऽपरे	२-६-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्युमद्भिररातिभि	४-४३-२
मम पुत्रः पिता मम	४-४-२
मया प्रक्लृप्ता खलु वागलङ्कृतिः	२-९६-२
मर्माणि परिहृत्यास्य	४-४३-३
मलये कन्दरोपान्त	४-३०-१
मलीमसमिवाञ्जनम्	१-५५-४
मस्करिण्यतिरोहिता	३-६-४
महताञ्च महच्च यत्	१-१९-२
महान्तः प्राज्यवर्षिणः	३-१९-२
महान्तो गुरवः स्थिराः	३-२८-२
महासेनात्मजामिति	५-३८-३
मातुलो भागिनेयश्च	४-४४-३
माधुर्यमभिवाञ्छन्तः	२-१-१
माध्यस्थ्याद् भवति न कस्यचित्प्रमाणम्	६-६३-४
मानदण्डो रथाङ्गिनः	३-३६-२
मायानां सुतरां मता	६-५७-४
मायेव भद्रेति यथा	१-३९-१
मार्गद्रुमा महान्तश्च	३-१८-३
मार्जन्त्यधररागं ते	६-३१-३
मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालाम्	१-५९-३
मालिनीरंशुकमृतः	२-२८-१
मालोपमादिः सर्वोऽपि	२-३८-३
मुखं पद्ममिवेत्यत्र	५-५७-१
मुखेन्दुनवदर्पणः	३-३६-४
मुख्यस्तावदयं न्यायः	६-६-१
मुधादौ ग्रहणं स्तवे	१-२३-४
मुनिवद् वचनादिति	५-४३-२
मुनीनपि हरन्त्येते	२-१३-३
मृग्यतामपरो ध्वनिः	६-१७-४
मृतिमाहुर्मनीषिणः	१-१२-४
यतिर्मम पिता बाल्यात्	५-१४-३
यतिश्छन्दोऽधिरूढ़ानाम्	४-२४-१
यत्किञ्चित्कान्तिसामान्यात्	२-४४-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत्नो विदितवेद्येन	१-८-३
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः	२-८५-३
यत्र तत्परमार्थतः	६-११-४
यत्र तेनैव तस्य स्यात्	३-४५-१
यत्र दृष्टान्तमात्रेण	५-५८-१
यत्र पर्यायतो भवेत्	३-३७-२
यत्रार्था भूतभाविनः	३-५३-४
यत्रोक्ते गम्यतेऽन्योऽर्थः	२-७९-१
यत्रोक्ते जायते मतिः	१-५०-२
यत्स्वशक्त्या प्रवर्त्तते	६-६-२
यथा कमलपत्राक्षी	२-३२-३
यथाक्षत्रिययोषिताम्	३-१०-२
यथाजिह्मदित्यादि	१-५३-१
यथा तद्वदसाधीयः	१-५८-३
यथा न व्येति चारुता	६-४२-४
यथा पटयतीत्यादि	६-३३-१
यथाप्रकृतमुच्यते	४-७-४
यथाबुद्धि विधास्यते	१-१-४
यथाभितो वनाभोगम्	५-४८-३
यथामन्दारकुसुम	२-२-३
यथा वनमुपागमत्	३-११-४
यथा विक्लिन्नगण्डानाम्	१-५७-३
यथाविद्वानधीतेऽसौ	६-३५-३
यथाशीतोऽनलो नास्ति	५-२०-३
यथा शुचिस्तनुः स्त्रैणी	५-१८-३
यथा सङ्ख्यमथोत्प्रेक्षाम्	२-८८-१
यथासङ्ख्यं तदुच्यते	२-८९-४
यथाह गच्छ गच्छेति	४-१४-३
यथाह वरुणाविन्द्रो	६-३२-३
यथेयं भूः कुमुद्वती	६-५२-२
यथेववतिभिर्विना	३-३३-४
यथेवशब्दौ सादृश्यम्	२-३१-१
यथेवानभिधानेऽपि	२-३४-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथैतच्छ्याममाभाति	६-६०-३
यथोच्यतेऽम्भसा भासा	६-४१-३
यथोदितं बलभिदा	६-४०-३
यथोपदेशं क्रमशः	४-२०-१
यथोपपत्ति कृतिभिः	२-४३-३
यदनिष्टं प्रकल्पते	१-५२-२
यदभिन्नार्थमन्योन्यम्	४-१२-१
यदर्थस्योदितादृते	२-७१-२
यदलङ्घितमर्यादाः	३-२८-३
यदि काव्यशरीरस्य	१-२३-१
यदि गौरित्ययं शब्दः	६-१७-१
यदि चोत्कण्ठया यत्तत्	१-४४-१
यदि वोपेक्षितं तस्य	४-४२-१
यदि सादृश्यमुच्यते	२-६४-२
यदुक्तं त्रिप्रकारत्वम्	२-३७-१
यदुप्रवीरः प्रगृहीतशार्ङ्गः	२-४१-३
यदृच्छाशब्दमप्यन्ये	६-२१-३
यद्विशेषनिदर्शनम्	२-७५-२
यमकव्यपदेशिनी	२-१९-२
यमकं कृतिनां मतम्	२-१८-४
यमक तन्निगद्यते	२-१७-४
यशसामम्भसामिति	६-४१-४
यस्यातिशयवानर्थः	२-५०-१
यस्यार्थः कृतिभिर्बलात्	१-३८-२
या गुणान्तरसंस्थितिः	३-२३-२
या देशे द्रव्यसम्भूति	४-२९-१
यान्ति वासाय पक्षिणः	२-८७-२
यावत्कीर्तिरनश्वरी	१-७-२
या विशेषाभिधानाय	३-२५-३
युक्तं लोकस्वभावेन	१-२१-३
युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या	१-३०-३
युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि	१-२८-२
युक्त्यानया मध्यमया	२-७-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युगादौ भगवान्ब्रह्मा	२-५५-३
युत्कुरज्वरजिष्णुचः	६-४८-४
युवयोः प्राज्यरत्नयोः	३-५०-२
येनागोप्रतिषेधाय	६-१६-३
येऽभिप्रायं कवेरिमम्	४-४६-२
योजनां प्रतिजानते	५-६-४
योज्यं काव्येष्ववहितधिया तद्वदेवाभिधानम्	१-५६-४
यो वदत्युपमामेतत्	३-३५-३
यो विशेषाभिधित्सया	२-६८-२
योऽस्थाने रचनाविधिः	४-२६-२
रचिता रत्नमालेव	३-४६-३
रतिखेदपरिश्रान्ता	६-४३-३
रतिखेदालसेक्षणाम्	६-४५-४
रत्नवत्त्वादगाधत्वात्	३-२०-१
रत्नवन्तः फलान्विताः	५-१६-२
रथाङ्गशूले विभ्राणौ	४-२१-३
रमणीयेषु सङ्गता	२-१३-२
रमणी येषु सङ्गता	२-१३-४
रसदाननिवृत्तये	३-६-४
रसवत्त्वेऽप्यपेशलम्	५-६२-२
रसवद्दर्शितस्पष्ट	३-६-१
रसैश्च सकलैः पृथक्	१-२१-४
रहिता सत्कवित्वेन	१-४-३
राजता राजतामृता	२-११-२
राजन्ते देवदारवः	४-३०-४
राजमित्रे ययोदितम्	२-४५-४
राज्याय पुनरुत्तस्थौ	५-४१-३
रामप्रसक्त्यै यान्तीनाम्	३-१०-३
रामशर्माच्युतोत्तरे	२-१६-४
रामः सप्ताभिनत्सालान्	३-३२-१
रासकस्कन्धकादि यत्	१-२४-२
रुणद्धि रोदसी चास्य	१-७-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुषा संरब्धचेतसः	४-४४-४
रूढ़कालागुरुद्रुमे	४-३०-२
रूपकं दीपकोपमे	२-४-२
रूपकं नाम तद्विदुः	२-२१-४
रूपकादिमलङ्कारम्	१-१४-१
रूपकादिरलङ्कारः	१-१३-१
रूपकार्थेन च पुनः	३-४७-३
रूपमुष्णः क्षपाकरः	५-२०-४
रूपादीनां यथा द्रव्यम्	५-३४-५
रेणुपिञ्जरितालका	२-२-४
रोचनाम्यां तथा च ठक्	६-५१-४
रोदिति स्वपितीत्यादि	६-५८-३
लक्षणेन महात्मनाम्	२-४५-२
लक्षणं काव्यसंश्रयम्	५-३०-२
लक्षणं रूपकेऽपीदम्	३-१५-१
लक्ष्यप्रयोगदोषागाम्	५-३२-१
लक्ष्मीः पौरन्दरी यथा	६-५१-२
लघुतामस्य मा गमः	४-१०-२
लक्ष्यते काममत्र तु	३-१५-२
लाटीयमप्यनुप्रासम्	२-८-१
लिङ्गत्रयोपपन्नञ्च	६-४६-३
लोकसीमा च तत्कृता	४-४८-२
लोकातिक्रान्तगोचरम्	२-८१-२
लोको युक्तिः कलाश्चेति	१-९-३
लोकं तत्त्वविदो विदुः	४-३६-२
ल्युटञ्च कर्तृविषयम्	६-५०-३
वक्त्रकान्तीक्षणगति	२-९०-३
वक्त्रञ्चापरवक्त्रञ्च	१-२६-३
वक्रवाचां कवीनां ये	६-२३-१
वक्राभिधेयशब्दोक्ति	१-३६-३
वक्रोक्त्यनभिधानतः	२-८६-४
वक्ष्यते चापरः पुनः	२-६५-२
वक्ष्यमाणोक्तविषयः	२-६७-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वचोभेदो विपर्ययः	२-३९-२
वचो न स्फोटवादिनाम्	६-१२-२
वत्तिनापि क्रियासाम्यम्	२-३३-१
वत्सेशं वृद्धदर्शनम्	४-४०-२
वदनं वनजद्युति	३-५१-२
वदनं वनजेक्षणे	५-५६-२
वदनं हारि सुन्दरम्	६-४७-२
वदेदिमनिजन्तञ्च	६-५४-१
वदेल्लुप्तहलं यथा	६-३९-२
वनं वनजलोचने	६-६०-४
वनेऽथ तस्मिन्वनितानुयायिनः	२-६३-१
वरा विभूषा संसृष्टिः	३-४९-१
वर्णभेदादिदं भिन्नम्	६-२०-१
वर्णानां क्रमवृत्तित्वात्	६-९-३
वर्णानां यः पुनर्वादः	२-१७-३
वर्णाः स्वांशविकल्पतः	६-२०-२
वर्ण्यन्तेऽत्र च ते पृथक्	२-४०-४
वस्तुद्वयसमाश्रये	३-३९-२
वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः	३-२९-२
वहन्ति गिरयो मेघान्	२-७४-१
वंशवीर्यश्रुतादिभिः	१-२२-२
वाक्काटवादयश्चेति	१-४९-३
वाक्यमित्याहुरपरे	४-६-३
वाचा सप्तच्छदद्रुमाः	२-८२-४
वाचां दोषं चतुर्विधम्	५-४७-४
वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम्	१-१४-४
वाचोऽलङ्कुरुते यथा	५-६४-४
वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिः	५-६६-३
वाच्यो वा जलजोऽत्र तु	२-५९-४
वाञ्छञ्ज्यायस्त्वं छिन्धि मुक्तानयस्त्वम्	२-१२-४
वाणीवाग्नैस्त्वया जिताः	२-९०-४
वार्त्तमिनां प्रचक्षते	२-८७-४
वासश्शङ्खानुपादानात्	२-४२-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासाय वासरः क्लान्तः	३-४८-३
विकारकरणं प्रति	२-७०-४
विचित्रबर्हाभरणाश्च बर्हिणः	२-६३-३
विजह्रुस्तस्य ताः शोकम्	१-४०-३
विजिगीषुमुपन्यस्य	४-४०-१
विजितेन्द्रियशत्रुषु	४-११-२
विज्ञानमात्रसादृश्यात्	५-९-३
विज्ञानांशो मतो यदि	५-९-२
विज्ञेया तद्विरोधिनी	५-१७-२
विड्वर्चोविष्ठितक्लिन्न	१-४८-१
विततम्भो गरीयसः	४-२३-२
विदधानौ किरीटेन्दू	४-२१-१
विदूरदेशानपि वः	३-२९-३
विद्यानां सततमाश्रयोऽपरासाम्	६-६३-१
विद्युत्वन्तस्तमालालिसितवपुष इमे वारिवाहा ध्वनन्ति	४-२५-१
विधिर्नाभिमतोऽन्यैस्तु	२-५७-३
विधेयः काव्यलक्षणः	१-८-४
विधेया जलजे मतिः	२-६०-४
विनयेन विना का श्रीः	१-४-१
विनश्वरोऽस्तु नित्यो वा	६-१५-१
विना पुरुषकारेण	३-३०-३
विना यथैवशब्दाभ्याम्	२-३२-१
विनिर्मित्सुरिव प्रजाः	२-५५-४
विनैवार्थगतिर्यथा	५-५०-४
विन्ध्यं महानिव घनः समयेऽभिवर्षन्	३-५६-३
विपक्षस्तद्विसदृशः	५-२५-१
विपर्ययकरं यथा	४-९-४
विपर्ययकृतो यथा	५-५२-४
विपर्यस्तं तथैवाहुः	४-३३-३
विपर्यासादिदं यथा	४-३१-४
विप्रलम्भोदयान्विता	१-२७-४
विभाति नारीव विदग्धमण्डना	३-५८-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभाति वनिताननम्	१-१३-४
विरहितरमणीकोऽर्हस्यद्य गन्तुम्	४-२७-२
विरुद्धपदमस्वर्थम्	५-६७-१
विरुद्धं तूपदिश्यते	४-६-२
विरुद्धान्यक्रियाभिधा	३-२५-२
विरुद्धार्थं मतं व्यर्थम्	४-६-१
विरुद्धेनोपमानेन	२-३०-१
विरोधकरणं यथा	५-१४-२
विरोधं तं विदुर्यथा	३-२५-४
विरोधं तुल्ययोगिताम्	३-२-२
विरोधेऽपि तयोर्यथा	२-३५-४
विलक्ष्मणा हि काव्येन	१-११-३
विलोक्यान्यनिबन्धांश्च	१-१०-३
विवादो वादिनोर्मिथः	५-१६-४
विविक्षोर्नं तव व्यथा	२-७२-२
विविधास्पदधर्मेण	५-१२-१
विवेद पयसां कणैः	३-१३-४
विशतीव तमोगृहम्	३-४८-४
विशिष्टस्य यदादानम्	३-४१-१
विशुद्ध्या सदृशं यच्च	२-६१-४
विशेषप्रथनायासौ	३-२३-३
विशेषस्यानुदाहृते	४-१७-२
विशेषादवधार्यते	६-२२-४
विशेषापादनाद्यथा	२-७५-४
विशेषण च तत्रेष्टाः	६-४८-३
विशेषेणेयसुन्निष्टः	६-५४-३
विशेषोक्तिर्मता यथा	३-२३-४
विशेषोऽन्योऽभिधीयते	२-६५-४
विशेषोऽस्य विकल्पना	५-६-४
विशेषं वेद बालोऽपि	४-४७-३
विषमा भूभृतस्तेभ्यः	४-१६-३
विषमोपलभिन्नोर्मि	२-५३-३
विषयत्वं तयोः किल	५-५-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विसर्गहृदयन्त्रिता	१-४८-४
विस्तरेणोदितो विधिः	२-६०-२
विहायोपनतं राज्यम्	३-११-३
वृत्तमाख्यायते तस्याम्	१-२६-१
वृत्तं देवादिचरित	१-१७-१
वृत्रहन्ता यथोदितः	६-३७-२
वृद्धिपक्षं प्रयुञ्जीत	६-३१-१
वृद्धिमायान्ति यामिन्यः	३-४०-३
वेणुदाकेरिति च ताम्	१-३६-३
वेश्यायान् निशि पीडितः	४-५०-४
वैचक्षण्यं कलासु च	१-२-२
वैदर्भमन्यदस्तीति	१-३१-१
वैदर्भमिति किं पृथक्	१-३२-२
वैदर्भमिति नान्यथा	१-३५-४
वैपरीत्याद् विपर्यासम्	५-६१-३
व्यज्येते साध्यसाधने	५-५८-२
व्यज्येरन्नस्य ते गुणाः	५-६०-२
व्यतिक्रमणतो यथा	४-४८-४
व्यतिरेकं तमिच्छन्ति	२-७५-३
व्यतिरेको विभावना	२-६६-२
व्यपदेशेन तुल्यताम्	३-३१-२
व्यपवृत्तदिवाकरा	५-५१-२
व्यवहाराय लोकस्य	६-१३-३
व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्	२-२०-२
व्याख्यानेनान्यथा विदुः	३-१२-२
व्याजस्तुतिनिदर्शने	३-२-४
व्याजस्तुतिरसौ यथा	३-३१-४
व्याधये दण्डनाय वा	१-१२-२
व्याप्तं व्योमेत्यवाचकम्	१-४१-२
व्यायताभीप्सया यथा	५-६७-४
व्यालवन्तो दुरारोहाः	४-१६-१
व्यावृत्तस्तत्र यो ह्यसन्	५-२५-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यावृत्तस्तद्विपक्षतः	५-२१-२
व्यावृत्ती लक्ष्मसाधुता	५-२५-४
वृत्तवर्णाहितस्मृतिः	४-६-२
वृत्ति तद्गमको यथा	६-३७-४
शक्यं कथयितुं मया	३-५२-४
शक्रकार्मुकवारणाः	२-२३-४
शक्रचापग्रहादत्र	२-४२-१
शङ्खव्राताकुलान्तस्तिमिकरकुलाकीर्णवीचीप्रतानः	५-६८-३
शतषष्ट्या त्वलङ्कृति	६-६५-२
शतह्रदेन्द्रायुधवान्निशायाम्	२-५८-३
शतांशेनापि भवता	३-३६-३
शपथैरपि चादेयम्	६-१२-१
शबलादिभ्योऽतितराम्	६-४४-१
शब्द इत्यभिधीयते	६-८-४
शब्दतान्यानुमां प्रति	६-७-४
शब्दन्यायानुपारूढ़	१-३८-३
शब्दमर्थ्यमुदीरयेत्	६-२८-२
शब्दरत्नं स्वयङ्गम्यम्	६-३-३
शब्दश्छन्दोऽभिनार्थाः	१-९-१
शब्दहीनं यतिभ्रष्टम्	४-१-३
शब्दहीनं विदुर्यथा	४-२२-४
शब्दानाकुलता चेति	३-५४-३
शब्दानां या विचारणा	४-२४-२
शब्दाभिधेयालङ्कार	१-१५-३
शब्दाभिधेये विज्ञाय	१-१०-१
शब्दार्णवस्य यदि कश्चिदुपैति पारम्	६-६२-३
शब्दार्थपदवृत्तिना	१-२५-२
शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्	१-१६-१
शब्दैस्तद्वाचिभिर्यथा	१-५०-४
शब्दो दूरानुपात्ययम्	५-३४-२
शमयन्ति क्षितेस्तापम्	३-१९-३
शम्भुना न हृतं बलम्	३-२४-४
शरा दृढ़घनुर्मुक्ताः	४-४३-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शरा धनुर्मण्डलमध्यभाजः	२-४७-२
शल्येत्यहिरपाकृतः	३-७-४
शशाङ्कवदनेति च	२-३२-४
शशिकान्तोपलच्छन्नम्	३-१३-३
शशिनैवोपमीयते	२-४४-४
शशिनो ग्रहणादेतत्	२-५६-१
शंसन्ति द्विविधं यथा	२-६८-४
शंसि चोत्पाद्यवस्तु च	१-१७-२
शाकारौ जागुरिष्टौ च	६-४६-३
शाब्दी वः कल्पना वृथा	६-११-२
शालातुरीयमतमेतदनुक्रमेण	६-६२-१
शाश्वतोऽशाश्वतो वेति	५-१६-१
शास्त्रमप्युपयुञ्जते	५-३-२
शास्त्रलोकापवास्यैवम्	४-४६-३
शास्त्रं जडधियोऽप्यलम्	१-५-२
शास्त्राद्विभ्यत्यमेधसः	५-२-२
शास्त्रेषूदितमन्यथा	५-३२-४
शिरोऽर्चिताङ्घ्रे पृथुकीर्तिधिष्ण्य	५-६३-२
शिल्पान्यस्याश्च गोचरः	४-३३-२
शिशिरासारकणिकाम्	६-४५-१
शिष्टप्रयोगमात्रेण	६-३६-१
शीकराम्भोमदसृजः	२-२३-१
शीकराम्भोमदसृजः	३-१६-१
शुचिरन्तं निनीषति	२-२६-४
शुनेव सारङ्गकुलम्	२-५४-३
शुभमरकतपद्मरागचित्रे	५-६५-१
शृङ्गारादिरसं यथा	३-६-२
शेषो हिमगिरिस्तवञ्च	३-२८-१
श्यामाभ्रहिमसच्छवी	४-२१-२
श्रद्दध्यात् कः सचेतनः	६-१२-४
श्रद्धेयं जगति मतं हि पाणिनीयम्	६-६३-३
श्रव्यं नातिसमस्तार्थम्	२-३-१
श्रीमतो बोधयन्नरान्	३-३४-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रुतिकष्टञ्च तद्विदुः	१-५३-२
श्रुतिकष्टं तथैवाहुः	१-४७-३
श्रुतिदुष्टा मता गिरः	१-४६-४
श्रुतिदुष्टार्थदुष्टे च	१-४७-१
श्रुतेः सामान्यधर्माणाम्	४-१७-१
श्रेयसो विनयाधानम्	४-११-३
श्रेयान्वृद्धानुशिष्टत्वात्	५-५७-३
श्रोत्रग्राह्यो ध्वनिर्यथा	५-१६-४
श्रौत्रादि न तु दुर्बोधम्	६-२५-१
श्लिष्टस्यार्थेन संयुक्तः	३-४७-१
श्लिष्टं तदभिधीयते	३-१४-४
श्लेषादेवार्थवचसोः	३-१७-१
श्लोकमात्रादि तत्पुनः	१-३०-२
षडलङ्कृतयोऽपराः	२-६६-४
षडित्यादि यथोदितम्	४-८-४
षण्णामृतूनां भेदेन	४-३१-१
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यात्	६-६६-१
षष्ट्या शरीरं निर्णीतम्	६-६५-१
स एकस्त्रीणि जयति	३-२४-१
स किलान्यैर्द्विधोच्यते	५-२७-४
स कूटस्थोऽनपायी च	६-१४-१
सखि मानं प्रिये धेहि	४-१०-१
सङ्क्रमेऽपि मृजेर्यथा	६-३१-२
सङ्ख्यानमिति मेधावी	२-८८-३
सङ्गतं सङ्गतं जनम्	२-११-४
सङ्गतिः संहतिर्यथा	६-४६-२
सङ्गमात्पाण्डुशब्दस्य	१-५६-३
सङ्घातादि न युज्यते	४-५-२
स च तद्व्यवहारोऽत्र	४-३६-३
स चार्थः पदवाक्ययोः	४-३-२
सचिवैः स्वार्थसिद्धये	४-४२-२
सचेतसो वनेभस्य	४-४७-१
सतां विश्वजनीनानाम्	३-४२-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्त्वादयः प्रमाणाभ्याम्	५-५-१
सदर्थमपि नापरम्	१-३१-४
सदर्थालम्बनञ्च तत्	५-७-२
सदृशः सेतुगन्धवाट्	६-४५-२
सदशस्तत्र यश्च सन्	५-२४-२
सदृशस्त्वमुदन्वता	३-२०-४
सदोपभुक्तं सर्वाभिः	६-२-३
सन्तापयति विद्विषः	३-२६-४
सन्त्यन्योक्तानुवादिनः	६-६-४
सन्दष्टकसमुद्गादेः	२-१०-१
सन्द्वयोरिति यः सिद्धः	५-२२-१
सन्द्वयोः सदृशे सिद्धः	५-२१-१
सन्धादि साधनं सिद्ध्यै	५-३२-३
सन्धाम्युपगमाद् विना	५-४५-२
सन्निबन्धविधायिनाम्	१-६-२
सन्निवेषविशेषात्तु	१-५४-१
स पीतवासाः प्रगृहीतशार्ङ्गः	२-५८-१
सप्तत्या न्यायनिर्णयः	६-६५-४
सप्त मेधाविनोदिताः	२-४०-२
स प्रियासङ्गमोत्कण्ठाम्	२-२७-३
सफलसपल्लवभूरिचारुवृत्तो	५-६५-२
समग्रगगनायाम	३-३६-१
समस्तपादयमकम्	२-९-३
समस्तवस्तुविषयम्	२-२२-१
समस्यन्ति बहून्यपि	२-२-२
समाधौ सुलभे सति	२-७७-४
समानवस्तुन्यासेन	२-३४-१
स मारुताकम्पितपीतवासा	२-४१-१
समारोपः किलैतावान्	५-७-१
समासवन्ति भूयांसि	२-१-३
समासातिशयोक्ती च	२-६६-३
समासाभिहिता परा	२-३२-२
समासेन यथान्यायम्	५-१-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समासेनोदितमिदम्	२-९५-१
समाहितं राजमित्रे	३-१०-१
समुदायाभिधानस्य	२-८६-३
समुदायार्थशून्यं यत्	४-८-१
समुदायोऽतिरिच्यते	६-१०-२
समुदायोऽभिधेयवान्	६-८-२
समुदायोऽर्थवान्कथम्	६-९-२
सम्बन्धेन करोत्ययम्	५-४९-४
सम्बन्धोऽर्थेन वा सता	६-१५-२
स यशोधनमादितः	३-४२-२
सरसा कुसुमावली	६-५-४
सरः शरत्प्रसन्नाम्भः	२-५१-३
सरितश्शुष्यदम्भसः	२-२९-२
सरूपवर्णविन्यासम्	२-५-१
सरूपशेषं तु पुमान्	६-३२-१
सर्गबन्धोऽभिनेयार्थम्	१-१८-१
सर्गबन्धो महाकाव्यम्	१-१९-१
सर्व एव तृनादयः	६-४८-२
सर्वक्षत्रवधाश्रयाम्	५-४४--
सर्वत्रालङ्कृतिः परा	६-४६-२
सर्वथा पदमप्येकम्	१-११-१
सर्वमेवैतदिष्यते	१-३०-४
सर्वशब्दात्प्रयुञ्जते	६-५३ २
सर्वशास्त्रविरुद्धत्वात्	५-१८-१
सर्वागमविरोधिनी	५-१३-२
सर्वागमविरोधिनी	५-१८-२
सर्वं सर्वेण सारूप्यम्	२-४३-१
सर्वेभ्यश्च भृशादिभ्यः	६-३९-१
सर्वेवातिशयोक्तिस्तु	२-८४-३
स लोलमालानीलालि	२-६-३
स शौर्याभरणो यथा	१-५२-४
सषड्जं धैवतं स्मृतम्	४-३४-२
ससन्देहमनन्वयम्	३-३-४
ससन्देहं वचः स्तुत्यै	३-४३-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ससन्देहं विदुर्यथा	३-४३-४
स साम्यमापादयति	२-३५-०
ससंशयमपक्रमम्	४-०-२
ससंशयमिति प्राहुः	४-१८-१
स हन्ति ध्याति वा यथा	६-२६-४
सहितं सहितं कर्त्तुम्	२-११-३
सहेटा सार्वधातुकम्	६-५८-४
सहोक्तिपरिवृत्ती च	३-३-३
सहोक्तिः सा मता यथा	३-३६-४
संक्षिप्तार्थतया यथा	२-७६-४
संसृज्यमानश्शशिनेव मेघः	२-५८-४
संसृष्टमपि चापरे	३-४-२
संसृष्टिरनया दिशा	३-५२-२
संस्कृतं प्राकृतञ्चान्यत्	१-१६-३
संस्कृतानाकुलश्रव्य	१-२५-१
संस्कृताऽसंस्कृता चेष्टा	१-२८-३
साक्षादरूढं वाच्येऽर्थे	१-४१-३
सा चासाध्वी प्रकल्पना	१-३६-२
सा चैवमुदिता यथा	१-४६-४
सा चैवं कथ्यते यथा	३-२६-४
सा ज्ञातेत्यर्थसंश्रया	५-३७-४
सा ज्ञेया कोपबाधिनी	५-४४-४
साधयत्यचकोरताम्	५-५४-४
साधीयश्च प्रयोजयेत्	१-५८-४
साधुकाव्यनिबन्धनम्	१-२-४
साधुना साधुना तेन	२-११-१
साधु वाऽसाधु वाऽऽगमि	२-७२-३
साधुः संसाराद्बिभ्यदस्मादसाराद्	२-१२-१
साधु साधारणत्वादि	२-३५-१
साधु साधारणश्रियः	२-३६-२
साध्यधर्मानुगमतः	५-२४-१
साध्यसाधनधर्माभ्याम्	५-२६-१
साध्यसाधनयोर्वृत्तिः	५-५६-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साध्येन लिङ्गानुगतिः	५-२७-१
साध्यः स्वर्गेहेष्विव भर्तृहीनाः	२-४६-३
सानङ्गं मानभङ्गुरम्	२-२७-२
सापेक्षाणां परस्परम्	४-४-२
सामान्यगुणनिर्देशात्	२-३८-१
सामान्यादुपचर्यते	५-२४-४
सार्वः सर्वीय इत्यपि	६-५३-४
सालङ्कायननेतृकम्	४-४१-२
सालङ्कारं सदाश्रयम्	१-१६-४
सावर्ण्यवज्झयो हस्य	६-६१-३
सा समासोक्तिरुद्दिष्टा	२-७६-३
सासह्यां मनसश्चुचम्	२-२९-४
सा स्याद्धमनिबन्धनी	५-३६-४
सितासिताक्षीं सुपयोधराघराम्	२-१४-१
सितासिते पक्ष्मवती	२-७६-१
सिद्धा सा बुद्धिगोचरा	५-८-२
सिद्धो दृष्टान्त उच्यते	५-२६-२
सिद्धो यश्चोपसंख्यानात्	६-२६-१
सुकृती वैवुधं पदम्	१-७-४
सुखसेव्यो जनानां त्वम्	३-५०-३
सुगन्धि कुसुमानना	४-३०-३
सुगन्धि नयनानन्दि	३-३८-१
सुजनावगमाय भामहेन	६-६४-३
सुतरां व्यज्यते यथा	२-७३-४
सुधियामपि नैवेदम्	१-४५-३
सुपां तिङाञ्च व्युत्पत्तिम्	१-१४-३
सुप्तिङन्तं पदं पुनः	४-३-४
सुमेधोभिः प्रयुज्यते	१-४४-४
सुरमुनिसिद्धयुते सुमेरुपृष्ठे	५-६५-४
सुराजानो घना इव	३-१६-४
सुरुचां विद्युतामिव	६-४०-४
सुश्लिष्टपदसन्धि च	२-१८-२
सुसम्मदां व्यक्तमदां ललामदाम्	२-१४-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्रकृत्पदकारेष्ट	४-२२-१
सूत्रज्ञापकमात्रेण	६-३७-१
सूत्राम्भसं पदावर्त्तम्	६-१-१
सूनुर्यस्याहमौरसः	५-१४-४
सूर्यांशुसम्मीलितलोचनेषु	२-४६-१
सुक्काकर्पूरचक्रागरुमनःशिलाध्यामकाव्याप्ततीरः	५-६८-२
सेन्द्रायुधो मेघ इवावभासे	२-४१-४
सैषा सर्वैव वक्रोक्तिः	२-८५-१
सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता	१-२५-४
सोदाहरणलक्षमाणः	२-४०-३
सौकर्यं दर्शयत्यसौ	५-४६-६
सौधेषु घनमुक्तानाम्	४-१६-३
सौहृदस्याविरोधोक्तौ	३-५५-३
स्कन्धवानृजुरव्यालः	२-८०-१
स्तब्धस्य विवरैषिणः	१-५१-२
स्त्रिया यत्र च शिष्यते	६-३२-५
स्त्रियोऽलङ्कुरुते मधु	२-२८-२
स्थास्नुजङ्गमभेदेन	४-३६-१
स्थिरोऽनेकमहाफलः	२-८०-२
स्थेयसीमामुवः स्थितेः	१-८-२
स्थौल्यादत्रोपवर्ण्यते	४-१३-२
स्फुरत्तडिद्वलयिनः	४-२३-१
स्फुरद्दशनदीधितिः	३-४६-२
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यात्	१-२९-३
स्वपुष्पच्छविहारिण्या	२-८२-१
स्वभावात्तद्वयथोच्यते	४-२९-४
स्वभावोक्तिरलङ्कार	२-९३-१
स्वभावोऽभिहितो यथा	२-९३-४
स्वमर्यादाविलङ्घनात्	३-२०-२
स्वयङ्कृतैरेव निदर्शनैरियम्	२-९६-१
स्वयं विनिश्चित्य धिया मयोदितः	३-५८-२
स्वविक्रमाक्रान्तभुवः	२-७०-१
स्वसिद्धान्तविरोधित्वात्	५-१७-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वःक्षितां पतिरद्विदृक्	१-४६-२
स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रम्	५-३-१
स्वादुपाकफलानम्राः	२-३६-३
स्वारोहाः फलदायिनः	३-१८-२
स्रजं बिभ्रच्च शोभते	६-५६-४
हतप्रवीरा द्रुतभीतपौराः	३-५७-२
हतोऽनेन मम भ्राता	४-४४-१
हनूमता प्रतिज्ञाय	५-३७-३
हन्त दुर्मेधसो हताः	२-२०-४
हन्तुमेव प्रवृत्तस्य	१-५१-१
हरतापि तनुं यस्य	३-२४-३
हर्षविस्मययोरपि	४-१४-२
हस्त्यश्वरथवाहिनी	४-३७-४
हारिणी तनुरत्यन्तम्	६-४७-३
हारीतशुकवाचश्च	२-२८-३
हितप्रकरणे णञ्च	६-५३-१
हिमपातावलिदिशः	३-४०-१
हिमापहामित्रधरैः	१-४१-१
हिरण्यरेताः सम्बाधः	१-४६-१
हि शब्देनापि हेत्वर्थं	२-७३-१
हीनतासम्भवोलिङ्ग	२-३६-१
हीनमित्यभिधीयते	२-४२-४
हीनं दुष्टञ्च नेष्यते	४-२-४
हीनं दुष्टञ्च वर्ण्यते	५-१-२
हीनाधिकत्वात्स द्वेधा	२-५२-३
हृतेति मदनाश्रया	५-३८-४
हेतुन्यायलबोच्चयः	५-२-४
हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ	२-८६-१
हेतुश्चात्र प्रतीयते	५-५०-२
हेतुस्त्रिलक्षणो ज्ञेयः	५-२१-३
हेतुस्त्रिलक्ष्मैव मतः	५-४७-१
हेतुः प्रदीपदीपत्वम्	५-५१-३
हेत्वाभासव्यवस्थितिः	५-२३-४
हेत्वाभासो विपर्ययात्	५-२१-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-३

काव्यालङ्कार में उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकार

रामशर्मा—का.अ. २/१९ में रामशर्मा और उनके अच्युतोत्तर नामक काव्य का उल्लेख है। उद्भट का कथन है कि इसमें यमक के विभिन्न रूपों को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया था—**रामशर्मणाच्युतोत्तरे यमकानि निबद्धा०।** भामह स्वयम् इस प्रकार के बन्धों के विरोधी थे जहाँ धात्वर्थों के चमत्कार को प्रदर्शित कर काव्य को दुर्बोध बना दिया जाता है। इन्हें वस्तुतः यमक न कहकर प्रहेलिका कहा जाना चाहिए।

२/५८ पद्य उपमादोषों के प्रसङ्ग में (उपमानाधिकत्व दोष का उदाहरण) उद्धृत है। इसके लेखक भी रामशर्मा बताये गये हैं परन्तु भामह के द्वारा दोनों ही स्थलों पर इनका खण्डनपरक उल्लेख महत्त्वपूर्ण है।

दूसरी ओर, दण्डी के टीकाकार रत्नश्रीज्ञान ने रामशर्मा का उल्लेख काव्यालङ्कार के लेखक के रूप में किया है—**पूर्वसूरिभिराद्यैराचार्यैः रामशर्मादिभिः काव्यालङ्कारकारैः**। बौद्ध अलङ्कारशास्त्र के ग्रन्थ सुबोधालङ्कार में भी प्रामाणिक आचार्य के रूप में किन्हीं रामशर्मा का स्मरण किया गया है—**रामशर्माद्यलङ्कारा: सन्ति सन्तः पुरातनाः।**

मेधावी— भामह ने मेधावी का उल्लेख दो स्थलों (२/४० और २/८८) पर किया है। सात उपमादोषों का उल्लेख मेधावी के प्रामाण्य पर किया गया है। रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु ने भी यह प्रकरण मेधावी के अनुकरण पर लिखा है। उनसे तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उनके प्रायः सभी लक्षण और सम्भवतः उदाहरण भी मेधावी से लिये गये हैं।

यथासंख्य का उल्लेख मेधावी ने संख्यान नाम से किया था। सम्भवतः वे इसके प्रवर्त्तक भी रहे हों परन्तु उत्प्रेक्षा का उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया।

अन्यत्र भी इनका उल्लेख कवि और आचार्य दोनों ही रूपों में उपलब्ध होता है। राजशेखर के अनुसार ये जात्यन्ध कवि थे—**मेधाविरुद्रकुमारदासादयो जात्यन्धाः कवयः श्रूयन्ते।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजमित्रम्—का.अ. में इसका उल्लेख दो स्थलों (२/४५ तथा ३/१०) पर हुआ है। २/४६ पद्य राजमित्र से ही उद्धृत है। २/४५ में इस पर प्रशंसापरक टिप्पणी की गयी है। ३/१० में इसके कथानक की ओर संकेत है जिसे समाहित अलङ्कार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखक का नाम अज्ञात है।

शाखवर्धन—असम्भव नामक उपमादोष के प्रसङ्ग में उद्धृत पद्य (२/४७) को शाखवर्धन की रचना बताया गया है। इनकी कृति का नाम अज्ञात है।

रत्नाहरणम्—का.अ. ३/८ में इस काव्य के कथानक की ओर सङ्केत पर्यायोक्त अलङ्कार के उदाहरण के सन्दर्भ में किया गया है। इनके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है।

कणभक्ष—कणभक्ष से अभिप्राय वैशेषिक दर्शन के प्रवर्त्तक आचार्य कणाद से है।

पाणिनि—वैयाकरण आचार्य पाणिनि का उल्लेख तीन स्थलों (४/२२, ६/६२ तथा ६/६३) पर किया गया है। ४/२२ में उनका सूत्रकार तथा ६/६२ में सालातुरीय के नाम से स्मरण है। ६/६३ में इनके मत के प्रति श्रद्धा प्रकट की गयी है।

पदकार—पदकार से अभिप्राय वार्त्तिककार कात्यायन से है। इन्हें भी पाणिनि के समान आदरणीय माना गया है। इनका उल्लेख ४/२२ में हुआ है।

न्यासकार—का.अ. ६/३६ में न्यासकार के द्वारा अनुमत होने पर भी तृच् प्रत्ययान्त के साथ षष्ठी समास न करने का विधान है।

अश्मकवंश—का०अ० १/३३ में उल्लिखित 'अश्मकवंश' को प्रो० काणे ने रघुवंश आदि की तरह एक काव्य माना है, जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। (सा०द०, भूमिका, पृ० २०)। (पृ० ११७ पर इस कारिका पर टिप्पणी भी देखें)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-४

काव्यालङ्कार में आये हुए सुभाषित

१. अधनस्येव दातृत्वं क्लीवस्येवास्त्रकौशलम् ।
अज्ञस्येव प्रगल्भत्वमकवेः शास्त्रवेदनम् ।।१/३

२. विनयेन विना का श्रीः ।१/४

३. रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता ।१/४

४. काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः ।१/५

५. विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते ।१/११

६. कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ।१/१२

७. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानन्म् ।१/१३

८. स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथञ्जनः ।१/२९

९. संज्ञेच्छातो विधीयते । १/३३

१०. सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते ।
नीलं पलाशमावद्धमन्तराले स्रजामिव ।१/५४

११. किञ्चिदाश्रयसौन्दर्याद्धत्ते शोभामसाध्वपि ।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ।१/५५

१२. मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालां,
योज्यं काव्येष्ववहितधिया तद्वदेवाभिधानम् ।१/५९

१३. युक्त्यानया मध्यमया जायन्ते चारवो गिरः ।२/७

१४. साधुः संसाराद्बिभ्यदस्मादसारात्
कृत्वा क्लेशान्तं याति वर्त्म प्रशान्तम् ।२/१२

१५. मुनीनपि हरन्त्येते रमणी येषु सङ्गता ।२/१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६. काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत् ।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ।।२/२०

१७. मदो जनयति प्रीतिं सानङ्गं मानभङ्गुरम् ।
स प्रियासङ्गमोत्कण्ठां सासह्यां मनसश्शुचम् ।२/२७

१८. कियन्तः सन्ति गुणिनः साधु साधारणश्रियः ।
स्वादुपाकफलानम्राः कियन्तो वाध्वशाखिनः ।।२/३६

१९. न ज्यायान्विस्तरो मुधा ।२/३८

२०. सर्वं सर्वेण सारूप्यं नास्ति भावस्य कस्यचित् ।२/४३

२१. को वा हेतुरलं सिन्धोर्विकारकरणं प्रति ।२/७०

२२. साधु वासाधु वाऽऽगामि पुंसामात्मैव शंसति ।२/७२

२३. गरीयानेव हि गुरून्विमर्ति प्रणयागतान् ।२/७४

२४. धीखेदायैव विस्तरः ।२/९५

२५. छायावन्तो गतव्यालाः स्वारोहाः फलदायिनः ।
मार्गद्रुमा महान्तश्च परेषामेव भूतये ।३/१८

२६. शमयन्ति क्षितेस्तापं सुराजानो घना इव ।३/१९

२७. उदयः पतनायेति ।३/३४

२८. चारोः का वास्त्यलङ्कृतिः ।३/५१

२९. गुरुभिः किं विवादेन ।४/७

३०. भर्तुश्छन्दानुवर्त्तिन्यः प्रेम घ्नन्ति न हि स्त्रियः ।४/१०

३१. श्रेयसो विनयाधानम् । ४/११

३२. व्यालवन्तो दुरारोहाः रत्नवन्तः फलान्विताः ।
विषमा भूमृतस्तेभ्यो भयमाशु प्रमादिनाम् । ४/१९

३३. कला सङ्कलनाप्रज्ञा शिल्पान्यस्याश्च गोचरः । ४/३३

३४. न्यायः शास्त्रं त्रिवर्गोक्तिर्दण्डनीतिं च तां विदुः ।४/३९

३५. आगमो धर्मशास्त्राणि लोकसीमा च तत्कृता ।४/४८

३६. प्रायेण दुर्बोधतया शास्त्राद्बिभ्यत्यमेधसः ।५/२

३७. प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटु भेषजम् ।५/३

३८. अहो भारो महान्कवेः ।५/४

३९. कारणञ्चेन्न तन्नित्यं नित्यञ्चेत्कारणं न तत् ।५/३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४०. लोकाश्रयं काव्यम्, आगमास्तत्त्वशंसिनः ।५/३३
४१. गुरुतरधियामस्वाराधं मनोऽकृतबुद्धिभिः ।५/६९
४२. परप्रत्ययतो यत्तु क्रियते तेन का रतिः ।६/४
४३. नान्यप्रत्ययशब्दा वागाविभाति मुदे सताम् ।
परेण घृतमुक्तेव सरसा कुसुमावली ।।६/५
४४. अर्थज्ञानफलाः शब्दाः ।६/१८
४५. न चैकस्य फलद्वयम् ।६/१८
४६. अतिशेते ह्यलङ्कारमन्यं व्यञ्जनचारुता । ६/२८
४७. शब्दार्णवस्य यदि कश्चिदुपैति पारं,
भीमाम्भसश्च जलधेरिति विस्मयोऽसौ ।६/६२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-५

भामहविवरण

कणिका १

(क)

१.] ×ज्ज्योतिर्भासिताल् क [
२.] रः क्रियायां च [
३.] ॥ ओं प्रणम्य सार्वं [१, १] [
४.] आजनद×

(ख)

४.] × त्र इत्य् [
५.] मोक्षेषु वैचक्षण्यं [१, २, ॥ [
६.] चनात् | न ह्यन्यार्थल [
७.] × स्या[1]स्य प्रयोजनव [
८.] मोक्षेषु वैचक्ष [१, २][1][

कणिका ८

(क)

१.] धर्मादिषु मुख्येष्वपि [
२.] व्याख्यानं श्रेयः प्र [
३.] प्रयोजनेन × । [

(ख)

६.] द् . व्याख्यायत् [
७.] सत्कवेः काव्यानि कु [
८.] किञ्चिदत्रासम्बद्धम् ए . [

---

१. द्या ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ९

(क)

१.] था | ना दानेन न मान[1] . [
२.] वाच शब्दयोगिनो य [
३.] भिधाव्यापारः क्वचिद् . [
४.] शब्दशास्त्रैरिति [
५.] च्छ्ब्दशास्त्रं सकृच्छ्रुत्वा य् . बहु [
६.] शास्त्रश्रवणमन्तरेण [
७.] पतिकाव्यकरणस्य | अ [
८.] स् . [

(ख)

१.] तत्रापि उक्तः नमस्तुङ्ग × [
२.] वर × राणाद्विगमो × [
३.] × . त् . गत ×× त्र सुशत्रुम् . ह् . [
४.] तेऽर्थेषु सत्युद्धि . द्धि [
५.] परिपुष्टस्तु | अ . य् . हा [
६.] : याम[2]याम् अशेषं ज्योत्स्न [
७.] रम्भेति श्लोकः अत्र [
८.] र्थः न चात्रेदं वक्तव्यस् . [

कणिका १०

(क)

१. ××××परिज्ञाने प्रयतितव्यमित्यलमतिप्रसङ्गेन ।×त्रश× षु [

---

१. ये भोज द्वारा उद्धृत पद्य के प्रारम्भिक शब्द हैं। पूर्ण पद्य इस प्रकार है—न दानेन न मानेन न शाठ्येन न सेवया। न शास्त्रेण न हृदयास्ताः सर्वथा किमिव स्त्रियः॥ शृ०प्र०, पृ० २४६। वहाँ यह श्लोक ऐसे अभिधीयमानार्थ के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है जो न तो विधिरूप है न निषेधरूप। (अविधिनिषेधरूप) पृ० २७१ भी देखें। यही पद्य पाठान्तर के साथ हितापदेश में भी आया है—न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शस्त्रेण न शास्त्रेण विषमाः सर्वथा स्त्रियः॥

२. 'म' यह अक्षर सन्दिग्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२. हासाश्रयः कथाः । लोको युवितः कलाश्चेति मन्तव्याः काव्यहेतवः [१, ६] । एषां काव्यो × [

३. ××× अभिधानार्थः[1] शब्दानामर्थाः यैर्.र्.×स्य . एतदेवमुक्त × अत्र पद [

४. युज्यमानत्वाच्छब्दार्थानासम्वनिनो[2] लभ्यत . इत्यभिधानग्रहण ×× .f × इ [

५. पर्वतादेति देवदत्तः एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपीति[3] गुणवृत्ति ×× [

६. निरस्तधैर्यं राघेयमाराधितजामदाग्न्यम् । असंस्तुतेषु प्रसभं भयेषु जायेत[4] ।

७. कर्तृभेदान्नास्ति क्त्वाप्रत्ययः अथ पक्षपतनक्रियातो ××× क्रिया ××× त्वं तदा [

८. घटते षष्ठ्यभिहितस्य कर्त्तुः पक्षपातक्रिययैव सम्बन्ध इष्यते । न निरीक्षण क्रियया [

(ख)

१. असम्भविनां × त. इयनिवन्धपर्यालोचनेन मतान्यवगम्य [[5]

२. क्षणं काव्य ××× गिन् . ×× सानाम् । तेनाशोभनं काव्यं ××××××× प्रधान् . [

३. × मवाद्य . ××× विलक्षमणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते [१, ११] प्र××××ङ्क . ×मपि प [

४. णा न काव्य् . ×दुस्सुतेनेव कुपुत्रेणेव निन्द्यते क × न × . इ [

५. दण्डनाय वा । कुकवित्वं पुनस्साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः] १, १२] । काव्य [

---

१. 'अभिधानार्थाः' होना चाहिए ।

२. 'असम्बन्धिनो' होना चाहिए ।

३. यह एक प्रसिद्ध पद्य है जो सर्वप्रथम रामायण (सुन्दरकाण्ड ५/३४) में उपलब्ध होता है । पद्य का पूर्वार्ध यह है—कल्याणि वत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा ।

४. यह भारवि (३/२१) से उद्धृत है—निरीक्ष्य संरम्भनिरस्तधैर्यं राघेय-माराधितजामदग्न्यम् । असंस्तुतेषु प्रसभं भयेषु जायते मृत्योरपि पक्षपातः ॥

५. यह १, १० पर व्याख्यान है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६. × × × तेन च कविश्रियते सर्वेषामुत्पद्यन्तरमेव × × [
७. × × मरणं पण्डिताः प्रवदन्ति । असाधुनि हि क् . [
८. काव्यनिबन्धन एवादरः कर्त्तव्यः स च × × पदार्थ [

कणिका ११

(क)

१.] जातः कथञ्चन ।। १, २६ ।। अ [
२.] न हि जातो नायकः प्राप्त [
३.] था या धीरप्रशान्तो नायक . त् . ख्यायिक् . [
४.] गाम्भीर्यगुणोत्कर्षेण । यस्य × [

(ख)

. . .

२.]हाक्र × [
३.] कय [
४.] × म् आत्मनि × × य × × वक्षिप्त [
५.] दयाधारितप्रशान्तो ग [
६.] × र . पीत्कारशब्दचकि [
७.] वितकु × हलाघट्टः[1] [
८.] × सामेकवाक्यन्त्वेकल [

कणिका १२

(क)

१.] वैदर्भं तदत्येवमेवापि [
२.] वृत्तयः काव्यस्य । कोमल् . [
३.] कापि कोमलैः उ [
४.] तेन वैदना[2]बन्ध, इ
५.] यणा नैव च [
६.] चर्यन्ते । ते [

(ख)

३.] . आदिना प्र [
४.] . य् . उहतानुरूपा [
५.] . देवता अग्निशिखे [

१. पाठ अनिश्चित । वितकु द्भू/तू हलापट्टः/घट्/
२. वैदर्भा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६.] ख्येनाभिसम्बद्धो न चो [
७.] पम् एष यो उत्तर [
८.] भ्राणां[२] वा योग्यतयोपमा [

कणिका १३

(क)

१.] थक् । गतानु १, ३२ [
२.] ध्यप्रभेदा . य् . [
३.] यं जामाद् . [

(ख)

६.] द् एतत् [
७.] दर्भ ×× . इ . इ . [
८.] द् अनपेतान्य [

कणिका १४

(क)

१. यमिदमेतत्तु [
२. यक्करणमुक्तं दे [
३. ×× वैदर्भम् १, ३२ ? इति । पृ [
४. ××××× : प्रभेदं ×[
५. ×× कवंश्यादि वैदर्भमिति कथ्यते । [१, ३३]
६. ×××× : किन्त्वश्मकं दैवर्भे[१] ये [
७. ×× कामं तथास्तु प्रायेण संज्ञे ॥ १, ३३ ॥ [
८. ×× दिरूपाश्रयिणां काव्यस्य [

(ख)

१. ×× प्र . इ × घ्रीयात् । तस्मात् [
२. ×× तत्रेदमाह ॥ अपुष्टार्थं [१, ३४][
३. ×× त् । यश्चाभिघास्यमानः एतद्वि [
४. ×××× लङ्कृतिः अ [
५. ×××× वन्धं तथा [

---

१. त्राणाम्
२. वैदर्भे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६. × × × श्रुति × चजा [
७. लं गौडीयमपि [१, ३५]
८. आदेरवान्तरव [

कणिका १५

(क)

३.] शेषेण प[1] [
४.] . र् . र्योपदसन्निधि [
५.] क्लिष्टं व्यवहितम् [१, ४०] दोषा इति [
६.] सम्बन्धिसन्निधाने [
७.] हरणं प्रतिलोम्य् . [
८.] सम्बन्धो दूरस्थस्यापि त [

(ख)

१.] रिसमाप्तेस्तथा च ज [
२.] याद्युपमादोष [
३.] मपि हि चत्वार्युपमा [
४.] रणीयः स च पञ्च [
५.] वा । तत्राद्ये . इ [
६.] णे[2] × × × [

कणिका १६

(क)

१.]ववचिल्लक्षणमात्रं ववचिदुदाहरण . [
२. तदन्यार्थं ननु नैव[3] शब्द . × न् . य् . न्त् . [
३.]अश्वगोण्यादयश्शब्दास्साधवो विषयान्तर[4] इता [
४.] प्रेप्यप्रयोगात् । अ . इ यदोषम् . . य् . × पा . ओ [
५.] सौ पुनश्शब्दार्थसम्बन्धप्रवृत्ताव् . [
६.] ह्रू् [१, ४०] इत्येतच् . यमाणमुपसर्गं × × × × × त्व × क्त् . पे × [

---

१. शेषेणोप, शेषेणोपमा
२. णो
३. नैवं
४. इसका स्रोत वा . प . १/१४६ है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७.] × । प्रागुक्तानां च निपातत्त्वमुपसर्ग × × × × × × × वीत [

८.] × हम् . × × . ई × प्रसिद्धार्थप × . । . × × × × × × × : अन्य [

(ख)

१.] दोषता । अवाचकव्याख्यानार्थमाह [

२.]इति हिमापहो वह्निः तस्यामित्रस्तोय × × × × र्ण् . × × [

३.] मति । अपार्थदोषादस्याविशेष . × × × × × रूढ़ं वाच्येर्थे [१, ४१] [

४.] च् . × । अत एव न प्रहेलिकाशावश्यप्रयोगो न विहन्य [

५.] वः । तत्रा[1]भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः [१, ४२ [जलभ्यन्मा × [

६.] आर्थं हि दूतसं × प × न्न् . चेते मे दोषविशेषा × × [

७.] ।। अथाचो[2] जलभ्यत्प्रमृत्य[3] . × × व्यक्तवा [

८.] ण् कमिहानेन युक्तिमतो [

कणिका १९

(केवल एक मुख)

१.]प[

२.]पूर्व . र् . त् . भूयस्त्व × × ण् . विन्यास × × हृदय[

३.]र् इत्याह । लाटीयमप्यनुप्रासमिहेच्छन्त्यपरे यथा | दृष्टिं दृष्टिसुखां धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोदितः [२, ८] [

४.]णां विन्यास् . म् . × . य् . र्थः दृष्टि दृष्टिसुखां धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुख इत्युदाहरणम् । हे चन्द्रमुखे [

५.] . ो वा यस्यार्थभेदस्तदा यमकालङ्कारोर्थाभेदश्चेत्[4] पुनरुक्ताभासः नैतद् ए [

६.] . आ . आसा × यथा | नररुधिररक्तनय × मितिशयशितिक × विग्रहां बन्दे णा [

---

१. तथा
२. अवाचो
३. जलमृत्प्रमृत०
४. यमकालङ्कारार्थानां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७.] . यानर्थक: एतत्त्रितकमपि पुनरुक्ताभासं यथा । तथाभरणा-भरणा × × यु [

८.] द्वयोरेकार्थस्स्वरव्यञ्जन समुदाययोस्स्वयं पुनरनर्थवैरूपौ च तत्रापि पुनरुक्ता [

कणिका २०

(क)

१.] सन्दष्टकादिनामान्तरकरणम् . × × × × × प्रमेद् . × क्ष् [

२.] घुना साधुना तेन राजता राजताभृता । सहितं सहितं कर्त्तुं [२, ११] [

३.] तावत्तच्छि × × सितासै [

(ख)

६.] त् . . य् . दोष × [

७.] क्षत:' अन्तेनादियमने × × × × × . य् . स् . . उ × त् . [

८.] क् . भूसृतिवारिशाङ्गं गाङ्गं नात्र कि × × × × × यैकया व: भय [

कणिका २१

(क)

१.] . तत् । प्रथमद्वितीयपादाभ्यासोदाहरण [

२.] भ्यासोदाहरणं . र् . व . र्घे य् . घ् . पुनरप्यनुसङ्गलं प्र × × सैनिकयासुरशे × य [२

३.] भ्यासोदाहरम् । रत्नाली ⏑ भिमते —स्तुव ⏑ रद्व्रैस्स-द्वेषाननलसमान . आ × तो—सद्वेषान् ⏑ ⏑ ⏑ [३

४.] ण × धिपसावितरेणुकरेण व: । करिवरै: ककुभस् सभयं श्रिश्रता: तदवलोक्य चने . उ [४

५.] यक्षोभिदुरालोके कोपधामरणाद् ऋ . भ् × यशोभिदु रालोक् . कोप् . [

६.] × × × लङ्कृते विविधमार्गे तव वृषभोचित-घरेसुम् · [

---

१. कृत:

२. सम्भवत: द्रुतविलम्बित छन्द का भाग है । सङ्गलं— संसलं ?

३. ते ? सम्भवत: प्रहर्षिणी छन्द है ।

४. सम्भवत: द्रुतविलम्बित छन्द का भाग है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७.] त्मनो मृतिपृथुलघम्नो[1] । सत्यपि पिबति घ [
८.] पादाम्थासोदाहरणम् परम ×न् . [
९.] पुरुषेन राजता शोभमानेन राज [[2]

(ख)

१.] वतं त्रिशिखमश्रृङ्गलं दधत् स [[3]
२.] सो×जाल××विसर्पिभिश्शासन स् . राणा×न×च [
३.] दृश्यन्ते यथा ।। यमलमाहुर् . ×जयत्प्रय् . [
४.] ×कृत×विवेश दूरावदातभवनेस् . ‿ ‿ खण्डमौलो [[4]
५.] दनुम् . कुअमस[5]××××या । सन्ध्या यातिशुशुभे प्रकाशया-
प्रेत××रु [
६.] स्य यः पा×वस्थानकृताव्रि×××परिमेयः अथ कथंचित्
परिच्छेत्तुं . व . य् . × : तदास्य [
७.] । मुनीनपि हरन्त्येते रमणीयेषु सङ्गता [२,१३] । तत्रयुक्पा [
८.] वारण×न्धवताम्[6] . ×××युक्पादस्योदाहरण [

कणिका २२

(क)

१.] त् . मतत् न यमकलक्षणं प्रागुक्तं परिसमाप्त . इ××××
××काल×र [
२.] शब्दमोजस्वीति त×नयासुवृत्ति[7] . ो×××न्वव यमक ××
×:कर [
३.] . इ××××××. क् . पो××यन्नत××××××सर्वो
न भवतीत्याह ।। नानाधा [२, १९] [
४.] दूष्य×××××××× . यु×पदपदार्थसम्बन्धा [
५.] रामशर्मणाच्युत्तोतरे यमकानि निबद्धा [

---

१. धाम्नो, धाम्ने ।
२. का. अ. २।११
३. सम्भवतः रुचिरा छन्द का भाग है ।
४. सम्भवतः वसन्ततिलका का भाग है । दूर—सूर ।
५. कुअम पाठ स्पष्ट है । सम्भवतः प्राकृत छन्द का शब्द है ।
६. न्ध ? ।
७. 'वृत्ति' क बाद तीन अक्षर लगभग नष्ट ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६.] ××च्यावितरामशर्माच्युतोत्तरे ॥ यमकव्यपदेशिनी प्रहेलिका [

७.] ××दूष्यन्ते । अत्यन्तगूढ़ार्थतया स्वनिमित्तम् नानाघात्वर्थं गम्भीरा [२, १६] [

८.] साधारणमित्त्थंभूतं काव्यमचारु प्रत्यस्तमितलघुप्रयत्नतर [

(ख)

१.] शास्त्रवत् । उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥ [२, २०] यदि काव्य×अरि [

२.] वत्सलातः न सुकुमारमतीनां काव्याभियोगानामत्र धीशब्दे न वा [

३.] त्वमुपमेयस्य रूप्यते । गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ॥ [२, २१] [

४.] शब्दो धर्मिवाची द्वितीयेनोपमानशब्देन तथाभूतेनानुपप [[1]

५.] स्वाभिधेयाविना भूतागुणवृत्ति तां नियमयति । अत एव च भेदेप्यभेदप्रतीतिरियं नापन्यायः [

६.] . आदयन्ति सम् . ××उभयानुयायिरूपकस्य च को विशेष इति तदत्यन्तमसम्बद्धम् न हि सम्- [

७.] वेशुः×××××त××××रेशु खड्गेषु को वा भवतां मुरारिः×× . इ रूपकोपगमात् उ [[2]

८.] मयूर व्यंसका दित्वादेवशब्दलोपी समासो रूपकत्वे । व्याघ्रादिद्×××××पी समासो[4] [

---

१. तुलनीय—उपमेयशब्दो धर्मिवाची द्वितीयेनोपमानशब्देन तथाभूतेनानुपपद्य मानसामानाधिकरण्यस्तयैवोपमानपदस्य स्वाभिधेयाविनाभूत गुणवृत्तितां नियमयति । ततश्च सामानाधिकरणण्यमप्युपपद्यते । अत एव च भेदेऽप्यभेदप्रतीतिरियं नापन्यायः । —हेमचन्द्र, विवेक, पृ० ३५० का. अ. सा. सं. में भी ऐसी ही परिभाषा है ।

२. यह इन्द्रवजा छन्द का एक भाग प्रतीत होता है ।

३. यह पाणिनिसूत्र २।१।७२ का सन्दर्भ देता है ।

४. तुलनीय—व्याघ्रादिद्वारेणेव शब्दलोपी समासो लुप्तोपमायां दृश्यते । —हेमचद्र, विवेक, पृ० ३५१ तथा पाणिनि—४.१. ४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका २३

(क)

१. उपमानमप्रसिद्धमुपमेयमिति केचित् एतच्चायुक्तं चन्द्रमुखादीनामन्योन्यमुप[1] [

२. पाण्डुना। नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ।। तेन प्राकरणिक [

३. साम्यं च यत्सहृदयानां हृदयहरं तदिह गृह्यतेलङ्कारे प्रकरणान्तरास[2] [

४. विशेषणमेतच्च न युक्तं मुखकमलादिषूपमाद्यु . य् . प्रसङ्गात्। न हि तत्र × ह [

५. × . उक्त × तदुच्यते विरुद्धेनेति (२, ३०) तेन पुरुष इव पुरुष इति सत्यपि पुरुषद्वयस्य पुरुष[3] [

६. × × × × । सर्वसाम्यं हि भावानां न सम्भवति तदर्थं × × शुर्ये[4] गुणलेशेनेति २, ३० यथेव [

७. × ×] यथं × × . आ तच्चेति श्लोकश्चायमसम्बद्धः यद्यु × × × × परिगणनपरस्तदाप्य् . [

८. × न शब्दयोर्विशेषणं निष्फलं सर्वं एव हि भावा भावान्तरेभ्यो व्यतिरेकिणः। न ह्यत्र यथेव [

(ख)

१. उप × वाचक परिगणनपरमेतन्न भवति किन्त्वेतदत्र विधीय[5] × . य् . ह्युपमाव [

---

१. प्रकरणान्तरासम्भवात् ?

२. तुलनीय—तत्कथमुच्यते प्रसिद्धमुपमानमप्रसिद्धमुपमेयमित्याशङ्क्याह, इत्यादि। हेमचन्द्र, विवेक, पृ० ३४१ यह एक वैचारिक भ्रान्ति है कि उपमान प्रसिद्ध होता है और उपमेय अप्रसिद्ध। यह सब कवि की योजना पर निर्भर करता है। महाभारत का पद्य ततः कुमुदनाथेन० आदि उसका उदारण है। अतः इससे आगे यह पाठ हो सकता है कि 'उपमा नोपमेयत्वात्'।

३. हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत. पृ० ३३९

४. शुर्ये—तुर्ये।

५. "विधीय" पाठ सन्दिग्ध।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२. · उप्रयोगे यत्तत्साम्यम् तदुभयानुयायित्वेन प्रतीयते श्रुत्या ल'×× .ी देव दत [

३. ×इति . य् . ××××××सामानाधिकरण्यात्तत्रैव प्रतीयते × त्र वैयधिकरण्यात् ×न्याय [

४. शत । यथेव शब्दयोरभिधाने वृत्तं[२] दर्शयति । इयम् तावच्चन्द्र- योपमोक्ता यत्र पुनर् इ [

५. ब्दाभ्यां समा भिहिता परा । यथा कमलपत्राक्षी शशाङ्कवदनेति च ॥ [२, ३२] यथेव [

६. मसादेः प्रतीयेत तदा साप्युपमावसेया समासशब्दश्चात्र संक्षेप- पर्यायः . आध्याये [

७. योपायं ददत्यर्थिभ्यो उत्तत्तार न चार्थिनो वसत्यन्तवरि स्रक्ष्यति तानपेत्य तथाहुङ्कारे[३] [

८. ××××××××सृजि निजालक्तकभ्रान्तिभाजः स्कन्धे विन्ध्याद्रिबुद्ध्या नि [[४]

कणिका २४

(क)

५. .

६.] दिव् . ××इत्याह । वतिनापि क्रिया [२, ३३] [

७.] यासाम्यमुच्यते अव्ययीभावादिव व् . [

८.] न्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते [२, ३४] [

(ख)

१.] स्तूपमा नामोपमा । अ [

२.] साम्यमुभयात्वानुयायित्वेन शक्यते [

---

१. श्रुत्या के बाद 'ल' पाठ सन्दिग्ध ।

२. अभिधानवृत्तम् ?

३. वदत्यर्थिभ्यो ?—प्रक्ष्यति ? । वसति>वासत्य् ? ।

४. हुङ्कारे न्यक्कृतोदनवति महति जिते शिञ्जितैर्नूपुरस्य श्लिष्यच्छृङ्गक्ष- तेपि क्षरदसृजि निजालक्तकभ्रान्तिभाजि । स्कन्धे विन्ध्यादि बुद्ध्या निकषति महिषस्याहितो सून हार्षीदज्ञानादेव यस्याश्चरण इति शिवं सा —बाण, चण्डीशतक, २ शिवा वः करोतु ॥

भाजः > भाजि ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३.] ×मेतत् ।। वक्ष्यमाणोदाहरणान्य् . [
४.] स्वादुपाकफला [२, ३६]

कणिका २५

(क)

] ×वादिशब्दे× [
] . अपर्यय . ×इ [

(ख)

] ह×ज्ञा [
] ।। साधुसाधारणा [२, ३५] [

कणिका २६

(क)

१.] स्वरूपाख्यापनेच्छा [
२.] णान्तरितमियं प्र× . इ [
३.] ××जालीं बिभ्राणमा×लरुचिप् . श् . [
४.] स्तरो वृधा[२] ।। [२, ३८] सामान्यगुणास् सर्वभावानां ह [
५.] पारो हेयोपादेयोपेक्ष्×[
६.] मानलक्षणा [
७.] × . क् . [

(ख)

२.] न् . [
३.] दाहरणं लक्ष् . [२]
४.] नोदिताः । सोदाहरण लक्ष्माण . [२, ४०] [
५.] स् सेन्द्रायुधो मेघ इवाबभासे ।। [२, ४१] स मारुता×[
६.] ह्वः[३] तं शशिभासं चन्द्रद्युति सलीलं सविलासम् [
७.] धनुर्मात्रं वा तत्प्रगृ [
८.] माह । शक्रचापगृ [२, ४२] [

---

१. मुधा पाठ भामह की मुद्रित प्रति में मिलता है ।
२. यहाँ से सात उपमादोषों का वर्णन प्रारम्भ होता है । (२।३९-६५)
३. यहाँ सम्भवतः 'अब्जः शङ्खः' ऐसा पाठ था जो पुस्तकस्थ 'अब्जः' की व्याख्या है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका २७

(क)

१. ××××××××××××प्र चोच्यते ।। सर्वं सर्वेण सारूप्यं नास्ति भावस्य कस्यचित् । [२, ४३] [

२. ×××तत्प्रतिकृत् . म् . . आ । वाप . श××योस्तु प्रकृत्यनुपमानात् । अत्र ही [

३. व् ग्रहः अत्रोच्यते । इति दूषणपा[1]नावप . रें[2] कस्येति अत्र विकल्पत्व ×[3] प्र×[

४. ×× पमेयविशेषणभूता×××××××× . तव्य . f ×× त्राद्यं पक्षमधिकृत्याह[

५. ××××× तरे ×××××××××××××× चकोर उपमाया [

६ एतदुक्तं भवति . ह् ××××××× ष ××××× माय ××× . यं विन्ध्य इति मुख [

७. दृष्टा×××××××××××××××××ननमद्युति/ यत्किञ्चित् कान्तिसामान्याच्छशि [२, ४४][

८. × न् . ××××××××××××××××. इ × ते । तथा ह्य् . ×× दानार्थायम . उ]

(ख)

१. किंच काव्यानि नेयानि लक्षणेन महात्मनाम् । दृष्टं वा सर्वसारूप्यं राजमित्रे यथोदितम् ।। [२, ४५] अ[

२. र्ययः पु××ह् . . य् . ××× . आ . इलक्षणमिति । तमेव लक्ष ×× घ् . न् . ××× नेन . श्रड्हुया [

३. रूप्यमुभयाननुया ×× दृश्य ×[4] रा राजमित्राख्ये काव्ये ययोदाहरणम् । सूर्यांशुसम्मी (लितलोचनेषु दीनेषु पद्मानिलनिर्मदेषु । साध्यः स्वगेहेष्विव भर्तृहीनाः)

४. केका विनेशुश्शिखिनां मुखेषु । ।। २, ४६ ।। अत्रादित्यकिरणानिलती × यनता दीनवं पद्मपात्र [

---

१. पा > सा या दा ? ।
२. रें > रं (परं) ? ।
३. विकल्पद्वय ।
४. उभयाननुयायित्वेन दृश्यते ? ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. ×श् . साधयो धारतामात्रमत्रोभयानुयायि । एताव् . ××ण् कवय उपमानान् . [

६. ×दोषः ॥ असम्भवोदाहरणमाह। निष्पेतुरास्यादिव तस्य दीप्ताः शरा धनुर्मण्डल [२, ४७][

७. शरा वारिधारा इवेति भिन्नक्रमेव शब्दमीलनं वा यथोपस्थितेव शब्दाभिसम्बन्धनं वा । ×× [

८. ×××××××××× चन्द्रोपमानोपमेयभाववाचकं किञ्चिदस्तीति प्रथम [

कणिका २८

(क)

१.] दर्शयितुमाह । [

२.] सम्भवलक्षणदोष उच्य [

३.] वीत शशलक्ष्मणः ॥ [२, ४९]

(ख)

६.] अत्र लिङ्ग [

७.] × वरख्यापनपरमुच्यते [

८.] यः एतत् त्रितयमप्युदाहर [

कणिका २९

(क)

१.] इव शब्दप्रयोगान्यथानुपपत्त्यानुमेयं सादृश्यमस्ति [

२.] विधानामपि दोषत्वं तथान्यानामित्युच्यते । कालपुरुषक [

३.][×× . भ् . . य् . ×] भाराद्बभौ भर्ते वयोस्[२] ×××× गाम्भीर्य × सारेण [

४.](मूर्ति): कौसुम्भरागरुचिरास्फुरदंशुकान्ता । विभ्राजसे मकरकेतनम [[3]

---

१. २९वीं कणिका में सात उपमादोषों का विवरण है ।

२. भाराद्बभौ आदि किसी पद्य का भाग है । स्रोत उपलब्ध नहीं । वयोस् ▷ क्ते ? ।

३. यह रत्नावली (२०) से उद्धृत है । सम्पूर्ण पद्य इस प्रकार है—प्रत्यग्र—मज्जनविशेषविविक्तमूर्त्तिः, कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता । विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती, बालप्रवालविटपप्रभवा लतेव ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५.] . ओ च ××× कभेदः यश्चाप्सरो विभ्रममण्डनानां सम्पादयित्री [[1]

६.] न्ध्या भ्रियतेपितु[2] धातुमत्तैव तेनोपमेयस्य कक ××। उपमा [

७.] सत्यमेविभक्तिविपरिणामवाक्यभेदाकांक्षा योग्यतासन्निधिः प्र × [

८.] लता यथा भ्राजते तथा (त्वं) भ्राजसे। यथान्यः कश्चिदकाल संध्यां विभर्ति तथा हिमवान् . × [

(ख)

१.] (यथापगाविगा) ह्या तथा त्वमस्यविगाह्य इति सम्बन्धनं न केनचिन् निवारयितुं शक्य . ×][3]

२.] वन्धः तच्चारुकाव्यं यत्र विभक्तिविपरिणामादिभिरभिसम्बद्धस्तन्न चारुनाप्य् . ×[

३.] भिप्रायः इत्य् . ×× चारु काव्यं न भवतीति दोष एत[4] इति तत्र हीनतायाम [

४.] र् . उदाहृियते ×××× त्वं × त् . . शङ्खवत्त्वं चोपमेयविशेषणं नैव सम्बध्यत इति [[5]

५.]×ते पुनर् या×××[6]×× (लि)ङ्गवचोभेदयो××विपरिणामस्याश्रये×यत्र[[6]

---

१. यह कुमारसम्भव (१/४) से उद्धृत है। सम्पूर्ण पद्य इस प्रकार है—यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां, सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति। बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम् ॥

२. (अकाल) संध्याभ्रियते, यह पाठ हो सकता है। 'पितु' का 'पि' पाठ 'धा' से सुधारा गया है।

३. यहाँ २/५३ की ओर संकेत है।

४. एत>एष।

५. शङ्खवत्त्वं शब्द सम्भवतः २, ५८ की ओर संकेत करता है—स पीतवासः० आदि। यह उपमानाधिकत्व का उदाहरण है। तुलनीय—मम्मट १०/१४२—अत्रोपमेयस्य शङ्खादेरनिर्देशेशशिनो ग्रहणमतिरिच्यत इत्यधिकपदत्वं।

६. यह २/५२ की ओर संकेत है—यत्र या येत्र।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६.]न् इत्यपरे त्××(मूर्त्यावाक्य् .) ×लिङ्ग×येत्युभयानु-
यायि××[1] न दोषः यथा चन्द्र इव मु[

७.](राज् . ई)××यादिषु बाहुल्येन पुन्नपुंसकयो . ×
क्यविशेषः यथा ।

८.] किञ्चिदुपदर्शितमधिकविपर्ययः पुनः अप्रोत्साह्यसा [

कणिका ३०

(क)

] तायां उपमा ×[

] पन् न घ [

] . इ [

(ख)

]×राज्ञा× . र् . [

] एव भामह [

कणिका ३१

(क)

]कृतचारुचन्द्र[

. . .

(ख)

. . .

७.] . य् . [

८.]र् . सा सम्प्रति ××××दि]

कणिका ३२

(क)

. . .

]शब्दाभिसम्बद्धप× [

] . इ [

. . .

(ख)

. . .

](न) पुंसकानिवद् . [

. . .

१. नुयायित्वेन—?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ३४

(क)

१.] हीनतायामिव गति×× . उ [

२.] धिक्यमुपमानानां [२, ६१] निबन्नन्ति कवयः यथा गायन्तु किन्नरगणाः सह[1] [

३.] यशस्ते तथा हे हंसास्तावदम्भोरुहकपिशर-जोरुषिताङ्गाः स[2] [

४.] व्या (लजा) लालिनील प्रोन्मीलनमेघमाला-मलिनसकलदि [

५.] पमानविशेषणानि इवशब्दप्रयोगान्यथानुपप-त्त्या ×नुश् . . उ [

६.] ह । इत्युक्त उपमाभेदो वक्ष्यते चापरः पुनः(१) उपमादेरल [२, ५] [

७.] तः . चि . उपमाभेदो[3] लक्ष्यते तेनैवं व्या-ख्याता उपमाभे [

८.] पमायाः क . यपार्थादि ।[4] सम्प्रति किं क्रियत इत्या (ह)×× इ [

---

१. गायन्तु किन्नरगणाः इत्यादि पद्य वल्लभदेव की सुभाषितावली में भी उद्धृत है । पद्य इस प्रकार है—गायन्तु किन्नरगणाः सह किन्नरीभिः, श्रीरामचन्द्रशिखरेषु हिमाचलस्य । शेषेन्दुकुन्ददलबालमृणालनालि नीहारहारहरहाससितं यशस्ते ।। इसका अन्तिम भाग नीहार के स्थान पर कर्पूर पाठ के साथ वामन में भी उद्धृत है । का . सू. वृ० ४-२-१८ यह शार्ङ्गधर पद्धति (१२४७) का पद्य है ।

२. हे हंसा आदि पद्य शार्ङ्गधरपद्धति (८०७) का है । वहां पाठ इस प्रकार है—भो हंसास्तावदम्भोरुह कुहररजो रञ्जिताङ्गाः सहेलं, हंसीभिः पद्मखण्डे मधुरमधुकरारावरम्ये रमध्वम् । यावन्तायं दुरन्तो हरगल-गरलव्यालजालालिनीला, प्रोन्मीलन्मेघमालामलिनसकलदिङ्मण्डलोऽभ्येति कालः ।।

३. तः कश्चिदुपमाभेदो
तेन तेनैवं—?

४. कस्यापार्थादि—?

. Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ख)

१.] दित्यर्थ × पुनः प्र × म्यो[1] वचनोनुप्रासादे . इ [

२. [तिरेको विभावना । समासातिशयोक्ती च षडलङ्कृतयोपराः [२, ६६] [

३.] द्दिष्टा एषां च प्रभेद सन्दर्शनार्थमाह । वक्ष्यमाणो (क्तिविष)[2] [२,६७] [

४.] स्सल वक्ष्यमाण विषयतया च द्विविधः शेषास्त्वलङ्काराः एकरूप [

५.] ति व्यक्तमर्थान्तरन्यासं स्पष्टमेव वक्ष्यति ग्रन्थकारः तथातिशयोक्तिर् अ . ए [

६.] तदुक्तं भवति यथायमाक्षेपो द्विप्रभेदो विषया × × दे × निवद्ध [

७. त्सया । आक्षेपमिति तं सन्तश्शंसन्ति द्विविधं यथा ॥ [२, ६८] यत्र काव्य अभिप्रेताः [

८.] त्राक्षेपोलङ्कारः × × द्विविधः [

कणिका ३५

(क)

१. यदेवास्तु वान्येन किमुक्तेनाप्रियेण ते ॥ [२, ६९] भवन्तं यदा न पश्या [

२. ण ते इत्यत्रानभिधानमेव मामपश्यन्ती म्रियते वश्यमियमिति [

३. न् न तवोद्धतिः (१)को वा हेतुरलं[3] सिन्धोर्विकारकरणं प्रति ॥ [२, ७०] व × [

४. धित्सयैं तद्विधानं प्रतिषेधयतीव को वा हेतुरित्यादिना । अथवात्रा × × × ह × × × . य् . [

५. निति विशेषः प्रतीयते । अर्थान्तरन्यासं व्याख्यातुमाह । उपन्यसनम [२, ७१]

६. क्ते यत् प्राकरणिकस्यार्थस्योपन्यसनं प्राकरणिकार्थाभिसम्बद्धं तत्रार्थान्तरस्यास [

---

१. प्रथम्य वा प्राथम्य ?

२. यहाँ वस्तुतः 'वक्ष्यमाणोक्त' ऐसा पाठ होना चाहिए ।

३. काव्यालङ्कार के कुछ संस्करणों में उपलब्ध 'सेतु' के स्थान पर यहाँ 'हेतु' पाठ है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. स्समर्थनीयः। समर्थकस्त्वप्रस्तुतः ननु च उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्यान्ये × × तस्य [

८. × × पूर्वोत्तरोपन्यासम्भेदात्। तत्र यदा समर्थकस्य पूर्वोपन्यास[

(ख)

१. × × (रागिणि नलिने) लक्ष्म (ीं) दिवसो निदधाति दिनकर प्रभावाम्। अनपेक्षि (त गुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम्[1]।) [

२. णिकं दिनकरव्यापारः स्वप्राकरणिकः यदा पुनः प्राकरणिक-मुपन्यस्य तस्यार्थान्तर [

३. तल्लक्षणादुदितादुक्तात् प्रस्तुतादन्यस्यार्थस्य य (उ) पन्यसन [

४. कानि भीमानि विविक्षोर्न तवव्यथा। साधु वासाधु वागामि पुंसामात्मैव शंसति [२, ७२] [

५. माह। यस्मादागामिनी शुभाशुभे प्रंसामात्मैवान्तःकरणमेव कथयति। अत्र पुरुष्. [

६. × × त्ममुख्यार्थे पुनरात्मशब्द आत्मन आत्म कथयीत × × × ह गरेरोद्धावात्सा [

७. शयितुमाह। हि शब्देनापि हेत्वर्थप्रथनादुक्तसिद्धये। अयमर्थान्तरन्यासः सुतरां व्यज्यते [२, ७३]

८. न भावस्य सिद्धिर्भवति तदर्थम अयमर्थान्तरन्यासः सुतरां व्यज्यते [२, ७३] [

कणिका ३६

(क)

१.] जातस्तरुरयं चोच्चैः पा [२, ८०] [

२.] क्यार्थपरिसमाप्ति [

३.] त्मसम × × [

४.] मुप [

(ख)

६.] अत्राप्युदाहरण [

---

१. यह पद्य हर्षचरित २, २. है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७.] सोक्तिस्वरूपविशेषण [

८.] वगमो . इ [

कणिका ३७

(क)

१.] . आन्त् × प्रत्ययः स्पष्टं पुनरिदमुदाहरणं समासोक्तेः उपोढ [१

२.] पुरोपि मोहाद्गलितं न रक्षितम् । अत्र शशि रजनीव्यापाण प्रेयः . प्र × × × सहसु × त [

३.] प्रवेशो × भिमतोस्य ग्रन्थकृतः तेनास्य ग्रन्थकारस्याभिप्रायेण व्यतिरेक् . [

४] इदं पुनरत्रार्थतत्त्वम् । येषामलङ्काराणां भङ्ग्यन्तरेण निबन्धन संभव × तेषाम् सा [

५.] × न्य × × × × लङ्कारविषयस्य सकलस्यापहारस्यात् । उच्च × ष्टव्याख्या [

६.] मन्यन्तेतिशयोक्तिन्तामलङ्कारतया यथा।। [२, ८१] लोकाति-क्रान्तगो [२

७.] योक्तिः स्यादेतत्परिहारार्थं निमित्तत इति । एतदुक्तं भवति निमित्तं किञ्चिदाश्रित्य य [

८.] रिण्या चन्द्रभासा तिरोहिताः। अन्वमीयन्त भृङ्गा-लीवाचासप्तच्छदद्रुमाः [२, ८२] अ [

(ख)

१.] परिज्ञायमानाः भृङ्गालीवाचा मधुकरपङ्क्तयः तेनान्व-मीयन्ता [

---

१. उपोढ़० आदि एक प्रसिद्ध पद्य है जो प्रायः समासोक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। ध्व . आ. में भी। पद्य ये है—उपोढ़रागेण विलोलतारकं तया गृहीतं शशिना निशामुखम् । यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद्गलितं न लक्षितम् ।। यह परम्परा में पाणिनि का माना जाता है। इस कवि के अनेक पद्य पी. पीटर्सन ने संगृहीत किये हैं। पिशेल ने वैयाकरण पाणिनि के साथ इस कवि की अभिन्नता प्रतिपादित की है। लुई रेणु ने इसकी रचनातिथि नवम शताब्दी मानी है जो कम से कम १०० वर्ष पूर्व आनी चाहिए। अन्तिम शब्द का एक पाठ रक्षितम भी मिलता है जो सम्भवतः मूल पाठ रहा होगा।

२. उच्च > तच्च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२.] च्युता स्यात्कणिनामिव । तथा शुक्लांशुकान्यासन्न[1]ङ्क्ष्वम्भसि योषिताम [२, ८३] अम्भसां यदि [

३.] शुक्लांशुकानि × × तान्तरीयाणि भवेयुः । अयमत्र × यः एव ता योषितः को स [

४.] न केनचिदपि × ससेति ।। बहुतरप्रयोगत्वमतिशयोक्तेः ख्यापयितुमाह । इत्येवमादि रु [

५.] धर्मातिशययोगतः ।। [२, ८४] अतिशयोक्ति-निबद्धा कविभिस्तत्र तत्र सर्वैव सातिशयोक्तिरिति [२, ८४] यथा [

६.] यशः पतेतां । तदोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्ता-लतमस्य ।।[2] तथा ध्यानामल्लि [

७] न्तनवसूतचूतकलिकाम . . र् . हितस्त्र . डनिः झङ्कारः प्रथमां गृहे गृहजने [

८] ज × . एप् . ङ्कलनरू × × तं नन[3] जटरयन्नालः ।। इत्यार्योति [

कणिका ३८

(क)

] × × एवं तर्हि सुवः . ऊ [

] पमानेन यत्तत्त्वमुपमे [२, १४] [

] किन्तदित्याह उपमानेनोप [

[रस्थितिः × ष् × × . इ . इ [

(ख)

] मानोपमेय [

] न्त इत्येवमादि स्वल

] पूर्वी वाचकशक्तिभेदाद् भ् .]

---

१. मुद्रित का. अ. में प्राप्त 'शुक्लांशुकानि स्युः' के स्थान पर यहाँ 'शुक्लांशु-कान्यासन्' पाठ मिलता है।

२. यह पद्य शिशुपालवध (३, ४) से उद्धृत है। पूर्वार्ध यह है—उभौ यदि-व्योम्नि पृथक् प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्। वामन ने भी ४-३-१० में इसे उद्धृत किया है।

३. नन या ननु ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

] वं विजयमन्यथा]
] यद्यप्ये [

कणिका ३९

(क)

१.] . ो या तदा ओष्ठ्यो वकारो यदा तु व्यालं सर्पं विना वा समेत्य . य् . [
२.] शत्रुघ्नस्त्वं क्षितौ जनकस्थितेः इति सुचरितैस्सूक्तिविभ्रा . य् . [
३.] दिशब्दद्वयविवक्षयायां लघुप्रयत्नतरोलङ्कारः नस्य लो [
४. [दृष्ट् . × पायात् कदम्बकुसुमस्तवक इव मुखानिवासु × [
५.] . य् . योन्तोदात्तमिति । तेनो × × × विषये धत्स . ए [
६.] द्वयी गतिः × × × . य् . त्प्रत्ययः × त्र वा × [
७.] स् . . उ [
८.] श्लेषः [

(ख)

१.] पो यद्गि [
२.] लङ्काराणां प्राकरणिक [
३.] सम्प्रत्यर्थं × × × × × × श्लोकद्वय × या या [
४.] इव । रत्नवत्त्वादगाधत्वात्स्वमर्यादाविलङ्घनात् । [३, १९-२०
५.] प्रतिपादकभावः किन्तु ताभ्यां प्राकरणिकाप्राकरणिक [
६.] र् . त् । यत्र तु शब्दानामत्यन्तसरूपाणामपि दन्त्यौष्ठ्यल-द्यु प्र [
७.] . न्तरप्रतिभा[२] । तयालङ्कारान्तरे वाक्यान्तरे वा प्रति-भोत्पद्यते × [
८.] गेनोद्दीपयन्ती स्मर । काञ्चीदाम नितम्बसङ्गि दधती स्य् . [३] [

कणिका ४०

(ख)

१.] उद्भवान्वद्भरूपाय . ह् नन . य् [

१. यह ३/१८ पर व्याख्यान है ।
२. थान्तरप्रतिभा ?
३. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२.] स् . भावं मृदुविकसत्कमलाकरण् किञ्चि [

३.] यदापि द्वयोर्बहूनां चाप्राकरणिक (त्वं) [

४.] स् सम्भवते । हृतं द्य . [

५.] × . त् . ग् . अत्र च लक्षणात्तुल्य-कार्यक्रिया ।। ३, २७

६. [कारादपेतस्येत्यादि ।।३, २६।। । अधिकार उपवर्णनावसरः कथञ्चि [

७.] क्षो वा अप्रत्येकमप्रस्तुतप्रशंसेति संज्ञा। स्तुतिग्रह् .×× लक्षि[1] [

८.]।। तथा हि स×तोपवर्णना (यांक) स्समुद्रस्वरूमुपवर्णयेत्। उपवर्ण[2] [

(ख)

१.] लङ्क्रियाका . य् . स्य सहृदयहृदयावर्जनलक्षणसहाप्रस्तुतप्रशंसा | अ[3]]

२.] ×विशेषभावाद्वा.ए×तावद् द्विविधः सारूप्याद् वाप्रस्तुतप्रशंसा [

३.] शंसावत् ग्रन्थकारस्तु यद्विशेषाभिधानप्रस्तुतं सामान्यप्रस्तुत[4] [

४.] काले परिणतं व्याधिकारि यन्न भवति [

५.] धान्योपवर्णनायां सकलसंसार[5] [

६.] इणुब्बकप्पियं जण् ण णि ऐघरि[6] [

---

१. स्तुतिग्रहणोपलक्षित ?

२. तथाहि आदि पंक्ति विवेक (हेमचन्द्र, विवेक, पृ० ३५८) में भी आयी है, अतः इसके बाद पूरा पाठ उसी के अनुसार इस प्रकार होना चाहिए—उपवर्णने वा शिष्ट विग्रहणमवश्यंभावि ।

३. तुलनीय, हेमचन्द्र, पृ० ३५६—सान्तरेण शब्दव्यापारेण गोचरीक्रियामाणः प्राकरणिको योऽर्थस्तेन सहाप्रस्तुतस्य कार्यकारणभावादौ सम्बन्धे सति सहृदयहृदयावर्जकमलङ्काररूपत्वमेतस्याः ।

४. सामान्ये—न्यो—? यह सम्भवतः भामह ३/३० पर व्याख्यान है ।

५. यहाँ सम्भवतः यह पूरा पाठ हो सकता—फलस्य दैवप्राधान्योपवर्णनायां सकलसंसारस्य दैवप्राधान्यं गम्यते ।

६. यह पद्य रुय्यक ने भी अ०स० १३३ में उद्धृत किया है। पूरा श्लोक इस प्रकार है—तण्णत्थि किंपि पहणो (यहाँ पैणु है) पकप्पियम् (यहाँ व्वकप्पियम् है) जं ण णिऐघरणिए । अणवर अगमणशीलस कालपहिअस्स पाहिज्जं ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७.] श्.त्.×पनपरेभ्योप्रस्तुतप्रशंसा। यत्रापि सारूप्य ××त्.×[

८.] त मारीचवधे रामशौर्योपवर्णनया केशरिहरणव्यापार[

कणिका ४१

(क)

१. . . .

२.] पार्थं काव्यमपगतार्थं निरर्थं××.य्.[

३.] द्धान्तं पुनस्.या××वक्ष्यति पदल [

४.] कवर्णानामिदानिसस्त्र×न्तिप [

५.].उ.य्.××कृत्य वर्णसङ्घात इत्य.]

६.] क्षाणां परस्परम्। निराका (४, ४)[

७.] कत्र पदार्थ.सर्वत्र××सं [

८.] ××मा | .××हुःये [

(ख)

१.] दा×संसर्ग××××××××××ः पदार्थवान् तेषामनेक[

२.] ×म् आह। बुद्धौ तु××××××त्वेपि प्रतिक्षणम् [४, ५] | यतःक [

३.].य्.ते। न चासौ वचसां सम्भवतीति ए[

४.] वर्णानुभावावस्था[

५.] धीरन्त्यशब्दविषया वृत्तशब्दाहित [४, ६] [

६]व स्मृतिभासीनि वाक्यमिष्यन्ति पुनः[

७.] क्षविशेषः अत्र दूषणावसरं दर्श [

८.].आदूषणसहस्रोपनिपातकदलित [

---

३. ४१वीं कणिका ४/१ पर व्याख्यान है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ४२

(क)

. . .

] गुणा [

] कृतात्मनां संस्कृतम [

] तत्कथादौ यदि म्. [

] उदाहरणं ×× [

. . .

(ख)

. . .

] तत्कृते.यु.त्. [

सविपर्यासक [

] . आद[1]नुपेतं मार्गं [

. . .

कणिका ४३

(क)

. . .

[×× पुनरुक्तं दे [

]×.यादि । इह××[

] भिद्यास्यत इत्. [४, १३][

] × । भ्याशो [४, १४] [

. . .

(ख)

. . .

] विरुद्ध्यत इ [

]××अस्थि[

]दैन्याग××स्तीवल[

]जां व्याख्यातुमाह य[

. . .

१. साद—?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ४४

(क)

१.]. ी याः राजानः पुरश्चिरकालप्रत्यासत्तिका × [

२.] इति । अपक्रस्य[2] व्याख्यातुमाह । यथोपदेशं (४, २०)[

३.] यथासंख्यं मासं ऋतुं[3] संवत्सर × ण्यानि विष [

४.] विपूर्वस्य वा कः करणव्य × × शब्दोत्र निपात × श्रय × [

५.] × × × णौ दघ् × × × × य् . . औ किरीटेन्दु [

६.] × × × पक्रमस्ये × × × हर × वर्णयन्ति सु × × × दृष्टो [

७.] शिष्टक्रम × × × (प) दार्थानां शब्दाभिधानवेला × उतवक्रमास् स् . [

८.] × स्य निवृत्तत्वे स्मरणक्रमो वलीयानित्यन् . × सा × × तत्र स्मृति [

(ख)

१.] × स्त्वं पश्चा × घनिपासु स्मृतिरिति न किञ्चिदत्र विरुद्धं | अथ पुन [

२.] गेन | शब्दहीनसन्दर्शनार्थमाह | सूत्रकृत्पदकारेष्टेत्यादि [४, २२] | सूत्रकृत् . [

३.] ख्यानवाक्यमुच्यते × . रतां च बाहुल्यादेवमुक्तं | × ×[4] कृतां प[

४.] × × ज्ञात्वे पुरुषस्वभाववशादेषु साधुशब्देष्वप्य् . × × × तेषामप्रयोग [

---

१. ४४वीं कणिका अहक्रम और शब्दहीन दोषों पर चर्चा है ।

२. अपक्रस्य सम्भवतः लेखन सम्बन्धी त्रुटि हो सकती है । अपक्रमम् या अपक्रमस्य स्वरूपम् ।

३. ऋतुं<न्तुं ।

४. उक्तं के बाद दो अक्षर लुप्त हैं । प्रथम सम्भवतः ए अथवा ओ स्वर से युक्त था, द्वितीय कोई संयुक्ताक्षर हो सकता है जिसका निम्न भाग ष् हो ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५.] भो यद्वृत्तमस्मिन् गृहे । सौभाग्यव्ययशङ्क[1] [
६.] ह..त्रशसौ पथानशप्यमि वंशत [
७. क्तं सूत्रकृत्पदकारेष्टप्रयोगाद्योऽन्यथा भवेत् [४, २२]
८.] व्याकरणमनि × × × ×सैव य [

कणिका ४५

(क)

१.] . अपि न वत्सलतामुपै [
२.] . ावत्सेशं प्रत्यव्यमि [
३.] वहन्ती नौभिः क्रीनुता [
४.] सलिले वहन्ती नौभिः क्रीनु [
५.] . इत् . चाहमनुगृहीत् . [
६.] . ि . इ [

(ख)

. . .

४.] मात्रार्थंप्रतीयत्[3] [५, १][
५.] किमिति सुगतमि × × [
६.] प्रतीत्याह प्रायेण [५, २][
७.] मार्गप्रवर्तनार्थं स् . [
८.] .मात्र प्रदर्शनं प्रयो[

कणिका ४६

(क)

. . .

३.] स्माभिर्व्याख्याता . वि [
४.] तद्धमोऽपि न सेत्स्यतीति [५, १५] एतदुक्तं न त्या[
५.] यति यत्र प्रमाणान्तरप्र . इ × × न्येध . इ [

---

१. यह एक पद्य का भाग है जो सुभाषितावली में भी आया है। पद्य इस प्रकार है—काले नीलवलाहके सतडिति प्रीतिप्रदे बर्हिणामाश्चर्यं कथयामि वः शृणुत भो यद्वृत्तमस्मिन् गृहे। सौभाग्यव्ययशङ्कयैकभवने कान्ता-प्रियाभ्यामहो मानिभ्यां वत रात्रिमेव सकलां चीर्णं प्रवासिव्रतम।

२. ४५वीं कणिका चतुर्थ अध्याय का अन्तिम अथवा पञ्चम अध्याय का प्रथम टिप्पण है।

३. तन्मात्रार्थंप्रतीतये—?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६,] र्शयितुमाह स्वसिद्धान्तविरुद्धत्वात् [५, १७][
७.] ×रं प्रजानानास् स् . आसमन×धाम[
८. र्थं तस्मात्सर्वागमविरोधिनी यथा शुचि सुनुस्त्रैणी[1] । स्त्रीस[

(ख)

१.] × : प्रमाणप्रवाह इष्यत एवेति सामान्यप्रमाणप्रतिक्षे[
२.] प् . तमेतदन्यत्रासमाभिः प्रसिद्ध [
३.] प्रत्यक्षबाधिनी दर्शयितुमाह प्रत्य[५, २०][
४.] स्ति ऊप उष्णश्चन्द्रमा[2] इति [५, २०] हेतुलक्ष [
५.] माह धर्मधर्मिसमुदायस्साध्यधर्मश्चात्र [
६.] सिद्ध इत्यादि धर्मिणि [

कणिका ४७

(क)

१. पक्षानुपादान इत्यादि [५, २३] । यद्यत्र परपक्षप्रहाण् . × क्रियेते तत्र द . सि [
२. नित्यः शब्दः कृतकत्वात् अयं शब्दादिव्यक्ति×××प्रत्यन्यतरा-सिद्ध [
३. ऋष्टो यो धर्मस्तदनुगमेन यस्सदृशः पक्षस्समपक्षस्तत्र च यस्स-नित्युक्तरिति ।[
४. ×तत्र च जातः प्रत्याख्यानान्न कश्चित्केनचित्सदृशस्तत्कथ-मुच्यते साध्यधर्मानुगमत् . [५, २४][
५. ××पचर्यत [५, २४] इति सामान्यमिह संवृतिपद्धि[3] नाभिप्रेतं यय् . साध्य [

---

१. यथा शुचिस्तनुः स्त्रैणी—?

२. कूप उष्णः क्षपाकरः—?

३. संवृतिपद्—यह एक प्रसिद्ध बौद्ध विचार का निर्देश है—अर्थक्रियासमर्थं यत्तदत्र परमार्थसत् । अन्यत्संवृत्तिसत्प्रोक्तं ते स्वसामान्यलक्षणे ॥

प्रमाणवार्त्तिक, III, ३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६. × . य् . च् . . य् . . य् . साधरणदि[1]स्सपक्ष एक इव एकार्थ-क्रियाकारीत्येवोपचर्यत इति व्या [

७. ×× । सपक्षेण यो विसदृशस्साध्यधर्मानाश्रय स विपक्षस्त् . × ×व्यावृ ×तु हेतुस्स् . [

८. ××दर्शयितुमाह इति द्वयैकानुगतिव्यावृत्ती लक्ष्मसाधुता [५, २५] इति सा(प्ये) का भङ्ग्या ×[

(ख)

१. ×××वृत्तिनिष्पत्ती ते लक्ष्मणो लक्षणस्य साधुता तदुक्तं भवति भावता ×[

२. ××कलक्षणं पुनर्यत्र साध्याभावो हेत्वभावः ख्यापित इति ॥ दृष्टान्तं लक्षयितु[

३. × भूते तृतीया साध्यसाधनधर्मयोगी यस्सिद्धैत्यर्थविशेषसाध्य-धर्म दृष्टान्त [

४. ××× .य्.दृष्टान्तः दृष्टाभासः पुनस्साध्यसाधनयोः प्रत्येकं पुनस्समुदाय ×[

५. स्य दर्शयितुमाह साध्येन लिङ्गानुगति [५, २७] इत्यादि यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानसादौ[2][

६. सलिलादावित्येवं द्विधान्यैर् दृष्टान्तलक्षणमुक्तं दूषणानि दर्श-यितुमाह दू [५, २८][

७. नेष्यत इति प्रस्तावे[3] दूषणलक्षण ×स ××××× न्ति तत्किमिव [

८. प्रतिज्ञादीनि दुष्टानि यश्च प्रति ×××× . य् . ते तत्र ××: य् . [

कणिका ४८

(क)

] दूषणाभासा इति [५, २९][

---

१. साधरणादि > साधारणदि—? यहाँ कणिका अत्यन्त भ्रष्ट है। 'साधा-रणादिस्' के स्थान पर 'साधणदिस्' अधिक लगता है पर उससे कोई अर्थ की सङ्गति नहीं लगती।

२. इससे आगे हो सकता—यत्र नाग्निर्न तत्र धूमो यथा सलिलादाव्—?

३. ये शब्द ४, २ पर विवरण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

] यस् . ात् सप्रपञ्च [

. . .

(ख)

. . .

] यथा [

] स्त्रि × × य दर्शय् . [

. . .

कणिका ४९

(क)

. . .

४.] काव्य [

५.] पादिष्टं यथाभिहितमिति व्यर्थं [

६.] तज्ज्ञैः काव्यप्रबोधनार्थम् [

७.] काश्रयं काव्यमागमास्तत्त्वशरि[1] × [५, ३३] [

८.] काव्यमिति नात्र विसे [

(ख)

१.] . याना × × × × नेनेद [

२.] ति । हेतुना दृष्टान्तेनानन्य [

३.] . आवतरति तेनेन प्रः [

४.] . यादि साधर्म्यसमाद्या जा [

५.] न कृत इति । अन्य × वन [

कणिका ५०

(क)

१.] न संशयज्ञानविपर्यय [५, ५२] [

२. × × × ताः त्रय इमे दोषाः ये पुनरज्ञानसंशयज्ञानविपर्ययाश्च् . त् . [

३. वश्यानुपाद्यत्वात् तत्करणविरोधः एषामुदाहरणमित्याह । काशा हर काशा हर[2] [५, ५३] [

---

१. तत्त्वशंसि—?

२. 'काशाहर' की पुनरुक्ति लिपिकर्त्ता की त्रुटि हो सकती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. तित्वं यथा शरारिणामेवं कुरुरादीनामप . य् . नैक × × × . काराणां रक्तनयन . [

५. काव्यदृष्टान्तलक्षणार्थमाह । उक्तस्यार्थस्येत्यादि [५, ५५] उपन्यस्तस्य वस्तुनः प्रतिविम्वप्र [

६. मानमेवास्त्वित्यस्योपमाने[1]ऽन्तर्भावमन्यना न × वः प्राह अपरिहारः न हेत्वनभिधानक्व [५, ५६][

७. यामिवाचिप्रयोगश्च तद्दृष्टान्तेनास्ति इति नोपमायाम् . × न्तर्भावोस्याशङ्कनीयः वस्तुनि [

८. . यानोपमानुप्रवेशः यथा तनुरियं क्व[2]विलोचनहारिणी × × ग × गवचत [

(ख)

१. × . इ . आमप्यस्यान्तर्भावो नास्ति । उपमानोपमेयभावादिवत् × × × स्याप्यत्रापि [

२. साधनयोर्वृत्तिरुक्ता तत्र हि नेष्यत इति [५, ५६] तत्र ह्य . प् . × × . य् . सर्व × × × व्याप्यस्त् . य् . [

३. त्पुनरुपमानलक्षणं सर्वत्रास्त्येव किं पुनः कारणं सा × साध्यसाधनो × × × उपमा [

४. . इ | एतदुक्तं भवति उपमाने[3] कुत्सितसाध्यसाधन]

५. शययोगादित्सुरिवेति तदा क्लिष्टं कार्यं × × × शः × × मानमुदाहरणं तदा [

६. वृद्धानुशिष्टत्वादिति [५, ५७] हेतुपूर्वकस्त् . × × य × तिवृद्ध × × कृतयुगे भव × [

७.] द्धागुण . आ × × . य्. सम्यग्दर्शयितुमुपक्रमे [

८.] व्यक्ति [

कणिका ५१

(क)

१.] (स्व) राणां व्यञ्जनानां च द्विवि [

२. प्रवृत्तस्य ग्रहशब्दस्या [

---

१. पमानं, पमानो अथवा पमाने—?

२. 'तनुरियं क्व' द्रुतविलम्बित छन्द के भाग हैं ।

३. तु > क्ता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. यं रत्नं क्रियत इत्याह[1] [
४. हर्षाय भवति यू. [
५. प्रवाहदर्शनाद्वेति [
] द]

. . .

(ख)

. . .

४.] × . क् . शब्दशब्दाप्र . [
५.]समुदायः कथमर्थवान्[2] स्यात् । क्रम[
६.] कदेशकालत्वात् पद् . [
७. कृतोवगन्तुं | दारुणि भ[
८. इत्यादि | यस्माद् वर्णानां व[

कणिका ५२

(क)

१.]न्येवंविधश्शब्दप्रयोगो नेष्यते कीदृक् तर्हि शब्दः प्रयोज्य इत्याह | क्र(मागतं) [६, २८][
२.]× : क्रमस्तेनागतं शब्दं प्रयुञ्जीत क्रमपरिज्ञानञ्च द्विविधं साक्षाद्वा[
३.] क्षय् . च स एव कविप्रवाह अनिदंप्रथम(तया) प्रवृत्तेः यस्य पुनः कस्यचि[
४.] वाङ्मत्वेनास्मृतिपर्यंयस्मृतीयं भव ××× तदनुरोधेन शब्द[
५.] श्रुतिसुखं प्रयुञ्जीत यद्यपि श्रुतिकष्ट×××××× जिह्लदादयस्[3][
६.]×मुखेष्वत्यन्तादरख्यापनार्थमिदमुक्तं श्रुतिसुखमित्य् . ××मतिय×[
७.]तप्रतीतिकारणशाठ्यं तदापि क्लिष्टदोषे××××× शब्दाश्र×[

---

१. क्रियत>कृयत ।
२. अर्थवन् या अर्थवान् ?
३. अजिह्लदादयस्—से १/५३ की ओर संकेत ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८.]र्णेपि वाक्यपादपूरणार्थं प्रयुञ्जान दृश्य × × × × ×णार्थं . इ [

(ख)

१.] लङ्कारं स्वरव्यञ्जेन चा—ति[1] । अयं स्तुत्य × × × × × × लङ्कारेभ्य [

२.] न् . केत्यन्तं चारवः के च न चारव इति दर्शयन्नाह सिद्धो यश्चोप [६, २९][

३.] × यः मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरि . य् . ति इत्यादयः । अन [

४.] योगः कार्यः न तु योगविभागजम् [६, २९] इति योग-विभागदे शिष्टैस्सि[2] [

५.] . ी यान्यतरस्यामि[3]त्यत्र योगविभागो द्वितीयार्थः | विना वातं विना वर्षं वि[4] [

६.]वृद्धिपक्षम् [६, ३१] इत्यादिना सङ्क्रमे गुणवृद्धिप्रतिषेध-विषये मृजेः स्वरादौ [

७.] पतन्तो वाष्पबिन्दव इति [६, ३१] "सरूपाणामेकशेष एकविभक्ताव्"[5] इत्य् . [

८.] वश्च भवानी च दवो[6] वरुणश्च वरुणानी वरुणानीति[7] तदाह ॥ सा [६, ३२][

---

१. स्वरव्यञ्जनचारुतेति ।

२. योगविभागादि शिष्टैस् अथवा योगविभागादेः शिष्टैस्—?

३. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् पा० २, ३, ३२

४. विनावातमादि पद्य काशिका २, ३, ३२ में उद्धृत है । पद्य इस प्रकार है-विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना । विना हस्तिकृतान् दोषान् केनेमौ पातितौ द्रुमौ ॥

५. पा० १, २, ६४

६. दवो अथवा भवौ

७. वरुणानीति—वरुणाविति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ५३

(क)

१.] यभा × × कृनातिभावेन[1] न युज्यते प्रयोज्यो यथा-सङ्गीति [

२.] यथा × × × × ना । ण्यासश्रन्थो युजि[2]क्रितादःकन्त-वोज × पास[3] [

३.] × × माणन्तात् × × . इति णिप्रत्ययः । यथा पौरन्दरी × × तेन रक्तिमि[4] [

४.] कर्दमाट् ठगिति × × प्रत्ययौ तावस्कृतौ यथा माहारजनो लाक्षिकः । कुमुद[5] [

५.] लाक्षिकश्शास्त्रिकः । 'तस्मै हितम्'[6] इति प्रकरणे सर्वाण् णस्य वादनमि [

६.] पृथ्वादिभ्य इमनिज्वेति[7] प्रत्ययोभिमतः यथा पटिमा लघिमा × [

७.] यस्येति देति लोपव्यतिचेति लोपव्यतिरिक्तेरि[8] [

८.] रीनितम्बस्वयमिति[9] । मतुप्प्रकरणे[10] × × . आदय-स्तथा [

---

१. भ्रष्ट पाठ (कृनातिभावेन) ?

२. ण्यासश्रन्थो युच् . पा० ३, ३, १०७ ।

३. अन्त में—उपासनेति च युचं नित्यमासेः प्रयोजयेत् । ६, ५०

४. तेन रक्तं रागात्, पा० ४, २, १

५. पा० ४, २, ८७ ।

६. पा० ५, १, ५ ।

७. पा० ५, १, १२२ ।

८. भ्रष्ट पाठ ?

९. भ्रष्ट पाठ—तु० ६/५५ । जानुदघ्नीसरिन्नारीनितम्बद्वयसं सरः । पा० ५, २, २७ । प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ।

१०. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्, पा० ५, २, ११४ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ख)

१.]। माली मायी "अदम्यस्ताद्"[1] इति झेरदादेशः सम्मतः। रु . f [

२.] ×: प्रयोग इष्टस्तथा "विदेः शतुर्वसुर्[2]" इत्यनेन सूत्रेण घः प्र [

३.] × कैः सम्प्रति साधवोऽपि ये न प्रयोक्तव्यास्तान् दर्शयितु-माह [

४.] ति वनं (वनय) लोचन इति [६, ६०] नैकत्रौकारभूयस्त्वम् [६, ६१] इत्युपलक्षण प [

५.] . आन्तात् सप्तम्येकवचनमुक्त्वा। "झयो हनेऽन्यतरस्यामिति[3]" सावर्ण्यकृत्वाह च [

६.] पद्धतिशब्दः प्रयुज्यत उपलक्षण परं चैतत्तद् . × × योपि प्रयोगो [

७.] तं न शक्यत उत्तमध्यमाधमैस्साधुशब्दैर्विभज्य अशेषण् कथयि-तुम् ।× [

८.] दरेणेत्याह। विद्यानामित्यादि [६, ६३] एतदुक्तं भवति। बहूप [

कणिका ५४

(क)

. . .

] व्य [

] अयमत्र वाक्यार्थः। नित्यस्य शक्तौ [

] विरोधादिति। सम्प्रति काव्यन्याय [

] य . ानि [

(ख)

] × × f . ष्यत अतच्च वस्तुमर्थविचा [

] . ा च। अत एवेदमाह असरं लक्षतेन्य [

] . ा वाश्र × × f. धा [

. . .

१. पा० ७, १, ४।

२. पा० ७, १, ३६।

३. पा० ८, ४, ६२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ५५

. . .

] पानलम्भितस्य [

कणिका ५६

(क)

] प्राग् . [

. . .

(ख)

. . .

] य . समास इव प [

कणिका ५७

(क)

] व्यतिरिक्ते शास्त्राश्रय् . [

. . .

कणिका ६१

] तः गतास्सहकारा [

. . .

कणिका ६२

] त् सर्वत्र × [

] पदस्य [

. . .

कणिका ६४

] : फुल्लः कुसु [

] हा [

कणिका ६८

] . लङ्कार . र् . [

. . .

१. ते>तो ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ६९

(क)

. . .

] ×. यदृच्छा[1] [

] सङ्ग्रहः स्यात्। तदीदमाह[2] [

] × वाः शुरसेनादय् . [

] मियत्ता परिच्छेदो [

] विचारं रक्षमा [

. . .

(ख)

] : प्र [

] आदित्यपक्षिविशेसे [

] स्यत इति तद्विषयो य [

] . लक्षणमस्ति तत्र ल [

कणिका ७०

(क)

] नुयायी तत्र देवदत्तशब्दा इ [

] ए . याकरणा [

. . .

(ख)

] य बिम्याद् दिवस × काशिक f [

कणिका ७१

. . .

] पाषाणविशेष [

] × : प्रतिदि × [

] ता [

. . .

कणिका ७२

(क)

] किरातपस् . [

१.

१. यह सम्भवतः ६।२१-२२ पर विवरण है।

२. तदिदमाह — ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२.] ढ़ मन्द × : भ [
३.] ष [

(ख)

६.] वि [
७.] रि शून्यंमक्ष [
८.] तिकांक्षितं द [

कणिका ७३

. . .
[. इमा र्यस्थे [
] × घविशेषण [
. . .

कणिका ७४

. . .
] × य् . . य् . [
] . ाजन्यन्यस्त × [
] शिष्या क्रमस्ता [
] f . . ी यते × [

कणिका ७५

(क)

] मवकृत्तिका [
] णि समीक्ष् . [
. . .

(ख)

. . .
] वह [
] नुन्न विना [

कणिका ७६

(क)

. . .
] दह्यीयते [
] नर्याम् [
. . .

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कणिका ७९

. . .

] परिपातु [

] णमति द्व [

. . .

कणिका ८०

(क)

. . .

] रूपण् . स् . [

] एव वेदसु [

. . .

(ख)

. . .

] मेव [

] . ी परिदि [

] : प्रसिद्धाय [

. . .

कणिका ८३

(क)

] सिद्धं । अथ पु [

] × दि × [

(ख)

] तत्र स्मृति [

कणिका ९४

(क)

१.] च्चाल [

२.] × तुनि f . [

३.] . द्धं | तस्मा × × [

. . .

५.] बहुप्रु ं र [

६.] प्रवृत्तिभाज [

७.] . ी | अ | ु न् . [

८.] सम्बन्धः × त् . [

९.] ममित्यप्र × [

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ख)

५.] ×न्यपागस् . उ [
६.] योगादिशि [
] र् यश [

कणिका ९५

(क)

१.] f . [
२.] ङ्ग × कृत्य [
३.] . यायते [

(ख)

६.] वर्णभेदा [
७.] × ङ्कनयो अवश्यंचैत [
८.] . य् . न्य . य् . × त् . दर्श श्लेष × स् . [

कणिका ९६

(क)

] विरे [
] कृ [
] पविष्टा × द् दोह [
] कालना प्राक् तु ति . इ [
] यं । किमर्थं [
] क [

(ख)

] मं [
] घं । साढ़ [
] दाश काकली संज्ञा [,
] त् . । योपि मन्यते क [
] गा × × स्यापि [
] स्यास्त् [

कणिका ९७

१.] . । मध्यान्त उदात्त × च . यि × चारुत्वम् । अ [
२.] × × प्र × द्धाय म् . [
३.] म्भि × × व् . ललिताद् . × तेजांसि [

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४.] असं × × जपप्रदानविषयतायां तु सु [
५.] पनयन्ति घनाः पुनः कृतो मूयः आ [
६.] जलधा अति [
७.] ि . ×स्ये× [

कणिका ९८

(क)

] व् . ष् . य् . य् . ष् × . य् . [
] र्थलक्षणमाश्रयद्वयमलङ्कारे प्य् . [
] . े × प्रसिद्धो वेद यथा पुरुषाणां . े [

(ख)

] . य् . × × ब्दन्तर . य् . नु [
] षा चारुत्वकृता प्रत्यासत्त्यां श्रु . [
] नां े . [

कणिका १०३

(क)

] . य् . त् . . य् र्थे [
] स सङ्केपे [

. . .

(ख)

. . .

] लोकः काल् . [
] अन्ताच्च तादृ [

. . .

(स्वर कहीं-२ मात्रारूप भी हो सकते हैं।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ख)

५.] ×न्यपागस् . उ [
६.] योगादिशि [
] र् यश [

कणिका ९५

(क)

१.] f . [
२.] ङ्ग × कृत्य [
३.] . यायते [

(ख)

६.] वर्णभेदा [
७.] ×ङ्कनयो अवश्यंचैत [
८.] . य् . न्य . य् . × त् . दर्श श्लेष × स् . [

कणिका ९६

(क)

] विरे [
] कृ [
] पविष्टा × द् दोह [
] कालना प्राक् तु ति . इ [
] यं । किमर्थ [
] क [

(ख)

] मं [
] धं । साढ़ [
] दाश काकली संज्ञा [,
] त् . । योपि मन्यते क [
] गा × × स्यापि [
] स्यास्त् [

कणिका ९७

१.] . । मध्यान्त उदात्त × च . यि × चारुत्वम् । अ [
२.] × × प्र × द्वाय म् . [
३.] म्भि × × व् . ललिताद् . × तेजांसि [

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४.] असं × ×जपप्रदानविषयतायां तु सु [
५.] पनयन्ति घनाः पुनः कृतो भूयः आ [
६.] जलधा अति [
७.] f . ×स्ये× [

कणिका ९८

(क)

] व् . ष् . य् . य् . ष् × . य् . [
] र्थलक्षणमाश्रयद्वयमलङ्कारे ष्य् . [
] . े × प्रसिद्धो वेद यथा पुरुषाणां . े [

(ख)

] . य् . × ×ब्दन्तर . य् . नु [
] षा चारुत्वकृता प्रत्यासत्त्यां श्रु . [
] नां े . [

कणिका १०३

(क)

] . य् . त् . . य् र्थे [
] स सङ्केपे [
. . .

(ख)

. . .
] लोकः काल् . [
] अन्ताच्च तादृ [
. . .

(स्वर कहीं-२ मात्रारूप भी हो सकते हैं।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-६

भामह विवरण में उपलब्ध काव्यालङ्कार के पाठ

१/१. प्रणम्य सार्वं (कणिका १, भाग क)

१/२. मोक्षेषु वैचक्षण्यं (१, ख)

१/६. ह्रासाश्रयाः कथाः। लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्याः काव्यहेतवः ॥ (१०, क)

१/११. विलक्ष्मणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते ॥ (१०, ख)

१/१२. दण्डनाय वा। कुकवित्वं पुनस्साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥ (१०, ख)

१/२६. जातः कथञ्चन ॥ (११, क)

१/३२. थक्। गतानु (१३, क)

१/३३. कवंश्यादि वैदर्भमिति कथ्यते। (१४, क)

१/३३. कामं तथास्तु प्रायेण संज्ञे (१४, क)

१/३५. लम्। गौडीयमपि (१४, ख)

१/४०. क्लिष्टं व्यवहितम् (१५, क)

१/४०. ह्रु् (१६, क)

१/४१. रूढं वाच्येर्थे (१६, ख)

१/४२. वः। तत्रा[1]भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः ॥ (१६, ख)

२/८. लाटीयमप्यनुप्रासमिहेच्छन्त्यपरे यथा। दृष्टिं दृष्टिसुखां धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोदितः ॥ (१६)

२/११. घुना साघुना तेन राजता राजतामृता। सहितं सहितं कर्त्तुं (२०, क)

२/१३. । मुनीनपि हरन्त्येते रमणी येषु सङ्गता ॥ (२१, ख)

२/१६. नानाघात्वर्थगम्भीरा (२३, क)

२/२०. शास्त्रवत्। उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥ (२२, ख)

---

१. तथा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२/२१. त्वमुपमेयस्य रूप्यते । गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तदविदुः (२२, ख)

२/३०. विरुद्धेन (२३, क)

२/३२. गुणलेशेन (२३, क)

२/३२. व्दाभ्यां समा भिहिता परा । यथा कमलपत्राक्षी शशाङ्क-वदनेति च । (२३, ख)

२/३३. वतिनापि क्रिया (२४, क)

२/३४. न्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते (२४, क)

२/३६. स्वादुपाकफला (२४, ख)

२/३६. साधुसाधारणा (२५, ख)

२/३८. स्तरो वृथा (२६, क)

२/४०. नोदिताः । सोदाहरणलक्ष्माणः (२६, ख)

२/४१. स् सेन्द्रायुधो मेघ इवाबभासे ।। (२६, ख)

२/४२. शक्रचापग्र (२६, ख)

२/४३. सर्वं नर्वेण सारूप्यं नास्ति भावस्य कस्यचित् । (२७, क)

२/४४. ननमद्युति । यत्किञ्चित्कान्तिसामान्याच्छशि (२७, क)

२/४५. किंच काव्यानि नेयानि लक्षणेन महात्मनाम् । दृष्टं वा सर्वसारूप्यं राजमित्रे यथोदितम् (२७, ख)

२/४६. सूर्यांशुसम्मी (लितलोचनेषु दीनेषु पद्मानिलनिर्मदेषु । साध्व्यः स्वगेहेष्विव भर्तृहीनाः) केका विनेशुश्शिखिनां मुखेषु ।। (२७, ख)

२/४७. निष्पेतुरास्यादिव तस्य दीप्ताः शरा धनुर्मण्डल (२७, ख)

२/६१. धिक्यमुपमानानां (३४, क)

२/६५. इत्युक्त उपमाभेदो वक्ष्यते चापरः पुनः (।) उपमादेरल (३४, क)

२/६६. तिरेको विभावना । समासातिशयोक्ती च षडलङ्कृतयो-पराः ।। (३४, ख)

२/६७. वक्ष्यमाणो (क्तिविप) (३४, ख)

२/६८. त्सया । आक्षेपमिति तं सन्तश्शंसन्ति द्विविधं यथा ।। (३४, ख)

२/६९. यदेवास्तु वान्येन किमुक्तेनाप्रियेण ते ।। (३५, क)

२/७०. न्न तवोद्धतिः(।) को वा हेतुरलं सिन्धोर्विकारंकरणं प्रति ।। (३५, क)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२/७१. उपन्यसनम (३५, क)

२/७२. कानि भीमानि विवक्षोर्न तव व्यथा । साधु वासाधु वागामि पुंसामात्मैव शंसति ॥ (३५, ख)

२/७३. हि शब्देनापि हेत्वर्थप्रयनादुक्तसिद्धये । अयमर्थान्तरन्यासः सुतरां व्यज्यते (३५, ख)

२/८०. जातस्तरुरयं चोच्चैः पा (३६, क)

२/८१. मन्यन्तेऽतिशयोक्तिन्तामलङ्कारतया यथा (३७, क)

२/८२. रिण्या चन्द्रभासा तिरोहिताः । अन्वमीयन्त भृङ्गालीवाचा सप्तच्छदद्रुमाः ॥ (३७, क)

२/८३. च्युता स्यात्फणिनामिव । तथा शुक्लांशुकान्यासन्नङ्गेष्वम्भसि योषिताम् ॥ (३७, ख)

२/८४. इत्येवमादिरु धर्मातिशययोगतः (३७, ख)

३/१४. पमानेन यत्तत्त्वमुपमे (३८, क)

३/१९-२०. इव । रत्नवत्त्वादगाधत्वात्स्वमर्यादाविलङ्घनात् । (३९, ख)

३/२७. तुल्यकार्यक्रिया (४०, क)

३/२९. कारादपेतस्य (४०, क)

४/४. क्षाणां परस्परम् । निराका) (४१, क)

४/५. बुद्धौ तु×××××××त्वेपि प्रतिक्षणम् । (४१, ख)

४/६. धीरन्त्यशब्दविषया वृत्तशब्दाहित (४१, ख)

४/१३. भिधास्यत (४३, क)

४/१४. भ्याशो (४३, क) — ?

४/२०. यथोपदेशं (४४, क)

४/२२. सूत्रकृत्पदकारेष्टप्रयोगाद् योऽन्यथा भवेत् । (४४, ख)

५/१. मात्रार्थप्रतीयत्[1] (४५, ख)

५/२. प्रायेण (४५, ख)

५/१५. तद्धर्मोऽपि न सेत्स्यति (४६, क)

५/१७. स्वसिद्धान्तविरुद्धत्वात् (४६, क)

५/१८. सर्वागमविरोधिनी । यथा शुचिः सुतुस्त्रैणी[2] (४६, क)

५/२०. प्रत्य
स्ति ऊप उष्णश्चन्द्रमा[3] (४६, ख)

---

१. तन्मात्रार्थप्रतीतये ।
२. यथा शुचिस्तनुः स्त्रैणी ।
३. कूप उष्णः क्षपाकरः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५/२३.	पक्षानुपादान	(४७, क)
५/२४.	साध्यधर्मानुगमत् पचर्यंत	(४७, क)
५/२५.	इति द्व्यैकानुगतिव्यावृत्ती लक्ष्मसाधुता	(४७, क)
५/२७.	साध्येन लिङ्गानुगति	(४७, ख)
५/२८.	दू	(४७, ख)
५/२९.	दूषणाभासा	(४८, क)
५/३३.	काश्रयं काव्यमागमास्तत्त्वशरि[1]	(४९, क)
५/५२.	न संशयज्ञानविपर्यय	(५०, क)
५/५३.	काशाहर	(५०, क)
५/५५.	उक्तस्यार्थस्य	(५०, क)
५/५६.	न हेत्वनभिधानक्ृ	(५०, क)
५/५६.	साधनयोर्वृत्तिरुक्ता तत्र हि नेष्यत	(५०, ख)
५/५७.	वृद्धानुशिष्टत्वात्	(५०, ख)
६/२८.	क्र (मागतं श्रुतिसुखं	(५२, क)
६/२९.	सिद्धो यश्चोप	(५२, ख)
६/२९.	न तु योगविभागजम्	(५२, ख)
६/३१.	वृद्धिपक्षम्	(५२, ख)
६/३१.	पतन्तो वाष्पबिन्दवः	(५२, ख)
६/३२.	सा	(५२, ख)
६/६०.	ति वनं (वनय) लोचन	(५३, ख)
६/६१.	नैकत्रौकारभूयस्त्वम्	(५३, ख)
६/६३.	विद्यानाम्	(५३, ख)

१. शंसिनः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-७

काव्यालङ्कारपदानुक्रमकोश

अ—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४६)।
अकवित्वम्—कवित्व का न होना (१/१२)।
अकवेः शास्त्रवेदनम्—अकवि का शास्त्रज्ञान (१/३)।
अकृतबुद्धिभिः—सीमित बुद्धि वालों से (५/६६)।
अक्षराः—वर्ण (२/७)।
अग्राम्यम्—ग्राम्यदोष से रहित (१/३५)।
अग्राम्यशब्दम्—ग्राम्य शब्दों से रहित (१/१६)।
अच्युतोत्तरे—रामशर्मा रचित काव्य जिसमें हीनकोटि के यमक (प्रहेलिकाएँ) वर्णित हैं (२/१६)।
अज्ञानकृत्—काव्यहेतु के तीन दोषों में से एक (५/५३)।
अञ्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५१)।
अतद्गुणक्रियायोगात्—जो उपमेय में वस्तुतः नहीं हैं, ऐसे गुण और क्रिया से युक्त (२/६१)।
अतिशय—अतिरञ्जना (२/६१)। अतिशयवान्—(२/५०)।
अतिशयार्थत्वम्—अतिरञ्जित अर्थ से योग (२/५०)।
अतिशयोक्ति—एक अलङ्कार (२/६६, ८१, ८४)।
अद्भुतार्थ—भाविक अलङ्कार के निष्पादक हेतुओं में से एक (३/५४)।
अद्रिच्छित्—पर्वत को छेदने वाला (कार्तिकेय) (१/४६)।
अद्विदृक्—जिसके दो नेत्र नहीं हैं (षडानन होने के कारण बारह नेत्र हैं) (कार्तिकेय) (१/४६)।
अधिकता—उपमानाधिक्य दोष (२/६१)।
अधिकत्वात्—विपर्यय नामक उपमादोष का एक प्रकार (२/५२)।
अनन्वयम्—एक अलङ्कार (३/३,४५)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनपायी—अविनाशी (६/१४)।
अनलङ्कृतकान्तम्—अलङ्काररहित होकर भी रमणीय (३/५१)।
अनाकुलम्—अक्लिष्ट (१/२५, ३५)।
अनिबद्धम्—विधा के आधार पर काव्य का एक भेद, मुक्तक (१/१८, ३०)।
अनुप्रास—एक अलङ्कार (२/४, ५, ७)।
अनुमा—कल्पना (४/४३)। अनुमान प्रमाण—(५/५, ५६)।
अनुमानम्—प्रमाण का एक प्रकार (५/ १, ५०, ६/७, ११)।
अन्तविषयं दीपकम्—दीपक अलङ्कार का एक प्रकार (२/२५)।
नान्यप्रत्ययशब्दा—दूसरे के विश्वास से प्रयुक्त शब्दों वाली (वाणी) (६/५)।
अन्यविद्याकरेणुभिः—अन्य विद्यारूपी हथिनियों के द्वारा (६/२)।
अन्यसारस्वताः—अन्य कवि के काव्य का अनुवाद करके अपनी कृति के रूप में प्रस्तुत करने वाले कवि (६/६)।
अन्यापोहः— अन्य का निराकरण (३/४१, ६/१६)।
अन्यार्थम्—काव्य का एक दोष (१/३७, ४०)।
अन्योक्तानुवादिनः—अन्य के द्वारा उक्त कथन का अनुवाद करने वाले कवि (६/६)। देखें अन्यसारवताः
अन्वयव्यतिरेकौ—हेतु के दो प्रकार (५/४८, ५१)।
अपक्रमम्—काव्य का एक दोष (४/१, २०)।
अपभ्रंशः—भाषा की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१६)।
अपभ्रंशभाक्—अपभ्रंश भाषा से युक्त (१/२८)।
अपरवक्त्रम्—कथा में प्रयुक्त होने वाला एक छन्द (१/२६, २८)।
अपवादविधिज्ञाने—निषेध और विधि के ज्ञान (६/१८)।
अपह्नुति—एक अलङ्कार (३/२, २१)।
अपार्थम्—काव्य का एक दोष (४/१, ३, ८, ६/२५)।
अपुष्टार्थम्—अर्थ के गौरव से रहित (१/३४)।
अपृथक्कृतसाध्यः—जिसका पृथक् निर्देश नहीं किया गया (५/५०)।
अपेतार्थम्—अर्थरहित (४/३)।
अपेशलम्—असुन्दर (५/६२, ६/२५)।
अपोहेषु—(जात्यादियों के) निषेध होने पर (५/७, ८)।
अप्रयुक्तम्—पूर्व कवियों के द्वारा अप्रयुक्त पद (६/२४)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अप्रस्तुतप्रशंसा—एक अलङ्कार (३/२, २६)।
अभिधा—नाम (३/२१)। कथन (३/२५)।
अभिधानम्—नाम (१/४१)। शब्द (१/५६)। कथन (२/८६)।
अभिधानार्था—शब्दों के अर्थ (१/६)।
अभिधास्यते—कहेगा (४/१३)।
अभिधीयते—कहा जाता है (२/३३, ३७, ४२, ६५, ३/८, १४)।
अभिधेयम्—अर्थ (१/१०)। अभिधेयैः—(२/१७)।
अभिधेयवान्—अर्थ से युक्त (६/८)।
अभिधेया—कही जानी चाहिए (४/३५)।
अभिनेयार्थम्—काव्य का अभिनेय प्रकार, रूपक (१/१८, २४)।
अभिन्नार्थम्—जिसका अर्थ अभिन्न हो, पुनरुक्त (४/१२)।
अभिहितः—कहा गया (२/६३)। अभिहिता—(२/८८)।
अभ्यस्तात्—पा०व्या० में एक संज्ञा, द्विप्रयुक्त (६/५८)।
अमेधसः—अल्पबुद्धि (५/२)।
अमेधोभिरसूयितम्—अल्प बुद्धि वालों के द्वारा निन्दित (६/२)।
अयुक्तिमत्—काव्य का एक दोष (१/३७, ४२)।
अर्थज्ञानफलाः—अर्थज्ञानरूप फल वाले (६/१८)।
अर्थदीपनात्—अर्थ को प्रकाशित करने से (२/२६)।
अर्थदुष्टम्—काव्य का एक दोष (१/४७, ५०)।
अर्थनिश्चयम्—वास्तविकता का निर्णय (३/४४)।
अर्थपुनरुक्तम्—अर्थ की पुनरुक्ति (४/१५)।
अर्थप्रतीतये—अर्थ की प्रतीति के लिए (५/१, ६/८)।
अर्थबाधिनी—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/४२)।
अर्थम्—अर्थ (१/२५, ३८, २/५०, ५६, ७६, ८५, ३/१७, ५३, ४/३, ६/१६, २२)। अर्थान् (६/६३)। अर्थेन (२/४६, ६/१५)। अर्थात् (५/१०, ४५)। अर्थस्य (२/७१, ७५, ६३)। अर्थेषु (६/७)।
अर्थवान्—अर्थ से युक्त (४/३, ६/६)।
अर्थव्युत्पत्ति—अर्थसौन्दर्य (१/१५)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थसिद्धये—साध्य की सिद्धि के लिए (५/४८)।
अर्थसंश्रया—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/३७)।
अर्थान्तरन्यासः—एक अलङ्कार (२/६६, ७१, ७३)। वती ३/४१)।
अर्थापह्नवात्—अर्थ का अपह्नव (निषेध) होने से (३/२१)।
अर्थाभिधायिनः—अर्थ का कथन करने वाले (६/१३)।
अर्थोपदेशकृत्—अर्थ का (प्रधानतया) उपदेश करने वाला (१/२१)।
अर्थ्यम्—अर्थ से युक्त (१/१९, ३५, ६/२८)।
अलङ्करिष्णुना—अलङ्कृत करने वाले के द्वारा (४/४९)।
अलङ्कारतया—अलङ्कार के रूप में (२/८१, ८६, ३/५५)।
अलङ्कारः—काव्यसौन्दर्य का उपादान (१/१३, १४, २/८५, ८८, ९३, ३/४, ४९, ६/२८, ३०, ५८)। अलङ्काराय (५/६६)। अलङ्कारात् (२/६५)।
अलङ्कारवत्—अलङ्कार से युक्त (१/३५)।
अलङ्कारविधिः—अलङ्करण प्रकार (२/९६, ३/५८)।
अलङ्कुरुते—अलङ्कृत करता है (५/६४)।
अलङ्कृतयः—अलङ्कार (२/६६)।
अलङ्कृता—अलङ्कृत की गयी (वाणी) (३/५८)।
अलङ्कृति—अलङ्कार (१/१४, ३/५१, ६/४६, ६५)।
अलुग्विषयम्—अलुक् का विषय (६/३४)।
अवक्रोक्ति—वक्रोक्ति से हीन (१/३४)।
अवस्तुकम्—निर्विषयक (५/८)।
अवाचकम्—काव्य का एक दोष (१/३७, ४१)।
अविनश्वरम्—नित्य (५/१७)।
अविनाभावि—नियत (५/३१)।
अविवक्षितसामान्या—जिसमें सामान्यधर्म विवक्षित न हो (२/९१)।
अश्मकवंश—वैदर्भ काव्य का नाम (१/३३)।
असधर्मणाम्—असमान धर्म वाले (२/८९)।
असम्भव—एक उपमादोष (२/३९, ४८, ५०)। असम्भवात् (२/४८) असम्भविना २/४९)।
असादृश्यविवक्षातः—अन्य उसके सदृश नहीं है, ऐसी विवक्षा से (३/४५)।
असाधारणविषयत्वम्—व्यक्ति जिसका विषय है (प्रत्यक्ष) (५/८)।
असाधीयः—दोष से युक्त (१/५८)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असाधु—अमङ्गल (२/७२)।
असाध्वपि—सदोष भी (१/५५, ५७)।
असाध्वी—दोषवती (१/३९)।
असितर्तितुक्—अग्नि के पुत्र (कार्तिकेय) (१/४६)।
असुनिर्भेद—अभेद्य (जिसका अर्थ करना कठिन है) (५/६२)।
असंस्कृता—प्राकृत १/२८)।
अस्वर्थम्—असुन्दर अर्थ (५/६७)।
अहृद्यम्—अरुचिकर (५/६२)।
आकुलम्—कठिन (५/६७)।
आक्षप—एक अलङ्कार (२/६६, ६९, ६८)।
आख्यायिका—विधा की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१८, २५)।
आगमः—धर्मशास्त्र (४/४८)। शास्त्र (५/३३)।
आगमविरोधि—एक काव्यदोष (४/२)।
आचिख्यासोपमा—कुछ आचार्यों के मत में उपमा का एक भेद (२/३७)।
आत्मा—अन्तःकरण (२/७२)। आत्मतत्त्व (५/१५)।
आदियमक—यमक का एक भेद (२/९, १०)।
आदिविषयं दीपकम्—दीपक का एक भेद (२/२५)।
आधिक्यम्—अधिकता (२/५९, ६१)।
आप्तश्रावकासिद्धेः—प्रामाणिक आचार्यों के द्वारा सिद्ध न होने से (४/२२)।
आवली—यमक का एक भेद (२/९)।
आशीः—एक अलङ्कार (३/५५)।
आश्रयसौन्दर्यात्—दोष के गुणरूप हो जाने का एक हेतु, आश्रय के सुन्दर होने से (१/५५)।
इनच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५६)।
इनि—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५७)।
इमनिच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५४)।
इष्ट—इच्छित (तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त) (१/३६, २/५०, ३/१५, ६/४८, ५१, ५४)। इष्टौ (६/५५)। इष्टस्य (२/६८)।
इष्टकार्यान्युपगमम्—इष्टकार्य का सङ्कल्प (५/३५)।
इष्ट्या—भाष्य के द्वारा (६/२९)।
इष्णुच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४८)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ईयसुन्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५४)।
उक्तविषयः—आक्षेप अलङ्कार का एक भेद (२/६७)।
उच्छ्वासवती—उच्छ्वासों से युक्त (१/२८)।
उत्पाद्यवस्तु—कथावस्तु की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१७)।
उत्प्रेक्षा—एक अलङ्कार (२/५०, ८८, ९१)। **उत्प्रेक्षया** (३/४७)।
उत्प्रेक्षावयव—एक अलङ्कार (३/४, ४७)।
उदात्तम्—एक अलङ्कार (३/१, ११, १२)।
उदात्तार्थ—भाविक अलङ्कार के निष्पादक हेतुओं में से एक (३/५४)।
उदात्तार्था—उदात्त अर्थ से युक्त (आख्यायिका) (१/२५)।
उपमा—एक अलङ्कार (२/४, ३०, ४९, ५० ९१, ३/१७, २१, ३५, ५/५६)। **उपमासु**—(२/४३)। **उपमादेः**—(२/६५)।
उपमादोषाः—उपमा के दोष (२/४०)।
उपमानवतः—उपमानयुक्त अर्थ (उपमेय) का (२/७५)।
उपमानाधिक्यत्वम्—एक उपमादोष (२/३९)।
उपमानासादृश्य—एक उपमादोष (२/३९)।
उपमानेन—उपमान के साथ (२/२१, ३०, ६२, ३/१४, १५, ३५, ४३), **उपमानानाम्** (२/६१)।
उपमानोपमेयता/त्वम् पर्याय से उपमान और उपमेय होना (३/३७, ४५)।
उपमाभेदः—उपमा के भेद (२/६५)।
उपमारूपकम्—एक अलङ्कार (३/३, ३५)।
उपमीयते—उपमित किया जाता है (२/४४,५६)।
उपमेयस्य—उपमेय का (२/२१, ३०, ३/१४, १५, ३५)। **उपमेये** (२/९)।
उपमेयोपमा—एक अलङ्कार (३/३, ३७)।
उपसंख्यानात्—वार्त्तिक से (६/२९)।
ऊर्जस्वी—एक अलङ्कार (३/१, ७)।
ऋजु—सरल, सत्काव्य का एक गुण (१/३४)।
ऋषभ—सङ्गीत के सात स्वरों में से एक (४/३४)।
एकदेशविवर्ति—रूपक का एक भेद (२/२२)।
एकवस्तुनिबन्धनम्—एक अर्थ का बोधक (४/४)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकार्थम्—एक काव्यदोष (४/१, १२, १५)।
ओजः—काव्य में पदों की समस्त स्थिति (२/२)।
ओजस्वी—ओज गुण से युक्त (२/१८)।
औपम्यम्—उपमा (२/४६)।
कणभक्षः—वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक आचार्य, कणाद (५/१७)।
कथा—विधान की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/६, १८, २८)। कथायाः (३/५४)।
कलाः—सङ्गीतकाव्यादि चतुःषष्टि कलायें (१/६, ४/३३, ५/४)। कलासु (१/२, ४/३५)।
कलाविरोधि—एक काव्यदोष (४/२)।
कलाश्रय—कथावस्तु के आधार पर काव्य का एक भेद (१/१७)।
कल्पना—नाम, जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का व्यक्ति में आरोप (५/६)।
कल्पनादुष्ट—एक काव्यदोष (१/४७, ५२)।
कल्पनापोढम्—कल्पनारहित (५/६)।
कवयः—कवि (१/३७)। कविना (२/८५)। कवेः (१/२७, २/६०, ४/४६, ५/४)। कवीनाम् (६/२३)।
कामबाधिनी—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/४३)।
कारणम्—उत्पत्ति का हेतु (५/३१)।
कालः—समय (४/३०)।
कालविरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ३०)।
काव्यक्रिया—काव्यनिर्माण (१/१०)।
काव्यप्रयोगेषु—काव्यप्रयोगों में (५/३३)।
काव्यम्—काव्य (१/५, ११, १६, १८, २/३, ८७, ५/३३, ६२, ६७, ६/४)। काव्यमयम् (१/६)। काव्यानि (२/२०, ४५)। काव्येषु (१/५६, ५/३१, ४७)।
काव्यलक्षणः—काव्यनिर्माणरूप (१/८)।
काव्यलक्ष्म—काव्यस्वरूप (६/६४)।
काव्यशरीरस्य—काव्यशरीर की (१/२३)।
काव्यसंश्रयम्—काव्यसम्बन्धी (५/३०)।
काव्यहेतवः—काव्य के कारण (१/६)।
काव्याङ्गम्—काव्य का अङ्ग (५/४)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काव्यालङ्कारः—ग्रन्थ का नाम (१/१)।
कीर्ति —यश, काव्य का प्रयोजन (५/६३)। कीर्तिम् (१/२, ७, ८)। कीर्तेः (५/६१)। सुकीर्तिम् (५/६८)।
कुकवित्वम्—दुष्ट काव्य का निर्माण (१/१२)।
कुरच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४८)।
कूटस्थ—नित्य (६/११, १४)।
कृती—विद्वान् (२/४६)। कृतिनः (१/५३, ४/४०)। कृतिभिः (२/८३)। कृतिनाम् (२/१८)। कृतात्मनाम् (४/५१)। सुकृती (१/७)।
कोपबाधिनी—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/४४)।
कोमलम्—काव्य का एक गुण (१/३४)।
क्तिन्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४८)।
क्रमः—उपदेश के अनुसार निर्देश (४/२०)।
क्रमवृत्तिषु—क्रमशः उच्चार्यमाण (४/५)। क्रमवृत्तित्वात् (६/६)।
क्रमागतम्—सत्काव्य का एक गुण (६/२८)।
क्रिया—शब्द का एक प्रकार (३/१४, ६/२१)। क्रिये (३/३६)। क्रियायाः (२/७७, ३/२५)।
क्रियासाम्यम्—क्रिया की समानता (२/३३)।
क्लिष्टम्—एक काव्यदोष (१/३७, ४०)।
क्षणनश्वराः—क्षणिक (४/६)।
गतानुगतिकन्याय—लोकव्यवहार का एक न्याय, भेड़चाल (१/३२)।
गद्यम्—काव्य का एक भेद (१/१६, २५)।
गाथा—प्राकृत पद्य (१/३०)।
गिरः—वाणियाँ (२/७)। गिराम् (२/६६, ३/५८)।
गुणः - गुण, काव्यगुण (२/३५, ३/१४, ५३, ६/२१)। गुणाः (५/६०)। गुणस्य (३/२५)। गुणानाम् (२/२१)।
गुणलेशेन—लेशमात्र गुण से (२/३०)।
गुणसाम्यप्रतीतितः—गुणसाम्य की प्रतीति से (२/३४)।
गुणसाम्यविवक्षया—गुणसाम्य की विवक्षा से (३/२७)।
गुणातिशययोगतः—गुणातिशय के योग से (२/८४)।
गुणान्तरसंस्थितिः—दूसरे गुण की स्थिति (२/२३)।
गुरुमर्थम्—अर्थगौरव को (२/६२)।
गुरोः (वर्णस्य)—दीर्घ (वर्ण की) (४/२६)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गूढशब्दाभिधानम्—एक काव्य दोष (१/४५)।
गेयम्—गाने योग्य (१/३४)।
गौडीयम्—काव्यरचना का एक मार्ग (१/३२, ३५)।
ग्राम्यम्—एक काव्यदोष (१/५६, ६/२५)।
ग्राम्यानुप्रास—अनुप्रास की एक वृत्ति (२/६)।
ङीप्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५१)।
चतुर्वर्ग—धर्मार्थकाममोक्ष, काव्य का प्रयोजन, महाकाव्य का विषय (१/२१)।
चारु—सुन्दर (२/६६)। चारवः (२/७)। चारोः (३/५१)। चारुता (१/३६)।
चित्रार्थ—भाविक अलङ्कार के निष्पादक हेतुओं में से एक (३/५४)।
चेतःसंमोहकारिणम्—मन में भ्रम उत्पन्न करने वाले (६/२४)।
छन्दः—छन्द (१/६, ४/२४)।
छन्दोवत्—वैदिक नियमों के अनुसार (६/२७)।
छान्दसम्—वैदिक रूप (६/२७)।
जाति—शब्द का एक प्रकार (६/२१)।
ज्ञानम्—बोध (४/१७)।
ठक्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५१, ५२)।
ठन्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५७)।
ड्मतुप्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५२)।
ण—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५३)।
णिच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४४)।
णिनि—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४६)।
तत्त्वम्—तादात्म्य (२/२१)।
तत्त्वदृशाम्—तत्त्वज्ञों के (४/५१)।
तत्त्ववृत्ति—यथार्थ का बोधक (५/८)।
तत्त्वदर्शिनः—तत्त्वदर्शन का आग्रही (५/३३)।
तत्पुरुषम्—समास का एक भेद (६/३८)।
तदर्थविरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३)।
तद्(दृष्टान्त)आभः—दृष्टान्ताभास, दृष्टान्तहीननामक अनुमानविषयक दोष (५/२६)।
तद्(कला) विरोधकरम्—एक काव्यदोष (४/२, ३३)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद् (लोक) विरोधकरम्—एक काव्यदोष (४/२, ३६)।
तद् (आगम) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ४८)।
तद् (काल) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ३१)।
तद् (देश) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, २६)।
तद् (न्याय) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ३६)।
तद् (स्वसिद्धान्त) विरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, १७)।
तन्त्रान्तरसाधितम्—पाणिनि व्यतिरिक्त व्याकरण से साधित (६/२७)।
ताच्छील्यविषयम्—ताच्छील्य [स्वभाव] विषय वाले (६/४६)।
ताच्छील्यादिषु—स्वभाव आदि में (६/४८)।
तुल्यकार्यक्रियायोगात्—समान कार्य तथा क्रिया का योग होने से (३/२७)।
तुल्ययोगिता—एक अलङ्कार (३/२, २७)।
तुल्यश्रुतीनाम्—सुनने में समान (२/१७)।
त्रिरूपाल्लिङ्गतः—त्रिविध हेतु से (५/११)।
त्रिलक्ष्म—तीन लक्षणों वाला (हेतु) (५/४७)।
त्रिवर्गोक्ति—त्रिवर्गनिरूपक (४/३६)।
दण्डनीतिम्—दण्डनीति को (४/३६)।
दघ्नच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५५)।
दीपकम्—एक अलङ्कार (२/४)।
[अर्थं] दीपनात्—(अर्थ को) प्रकाशित करने से (२/२६)।
दुरुक्तम्—सदोष उक्ति (१/५४)।
दुर्बोधम्—जिसका अर्थज्ञान कठिन है, काव्य में अप्रयोगयोग्य (६/२५)।
दुर्मेधसः—अल्पबुद्धि (२/२०)।
दुष्टम्—सदोष (४/२, ५/१)।
दूषणाय—दोष प्रकट करने के लिए (४/५१)।
दृष्टान्तः—उदाहरण (५/२६, २७, ५५, ५८)।
दृष्टान्तहीन—एक अनुमान विषयक दोष (४/२)। [देखें—तद् (दृष्टान्त) आभः)।
देवादिचरितशंसि—कथावस्तु की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१७)।
देशविरोधि—एक काव्यदोष (४/२, २६)।
दोषदृष्टि—दोषविवेचन (६/६५)।
दोषाणाम्—दोषों का (५/३२)।
द्रव्य—पदार्थ [५/३४]। शब्द का एक भेद (६/२१)।
द्विगु—समास का एक उपभेद (६/३८)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गूढ़शब्दाभिधानम्—एक काव्य दोष (१/४५)।
गेयम्—गाने योग्य (१/३४)।
गौडीयम्—काव्यरचना का एक मार्ग (१/३२, ३५)।
ग्राम्यम्—एक काव्यदोष (१/५६, ६/२५)।
ग्राम्यानुप्रास—अनुप्रास की एक वृत्ति (२/६)।
ङीप्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५१)।
चतुर्वर्ग—धर्मार्थकाममोक्ष, काव्य का प्रयोजन, महाकाव्य का विषय (१/२१)।
चारु—सुन्दर (२/६६)। चारवः (२/७)। चारोः (३/५१)। चारुता (१/३६)।
चित्रार्थ—भाविक अलङ्कार के निष्पादक हेतुओं में से एक (३/५४)।
चेतःसंमोहकारिणम्—मन में भ्रम उत्पन्न करने वाले (६/२४)।
छन्दः—छन्द (१/६, ४/२४)।
छन्दोवत्—वैदिक नियमों के अनुसार (६/२७)।
छान्दसम्—वैदिक रूप (६/२७)।
जाति—शब्द का एक प्रकार (६/२१)।
ज्ञानम्—बोध (४/१७)।
ठक्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५१, ५२)।
ठन्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५७)।
ड्मतुप्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५२)।
ण—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५३)।
णिच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४४)।
णिनि—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/४६)।
तत्त्वम्—तादात्म्य (२/२१)।
तत्त्वदृशाम्—तत्त्वज्ञों के (४/५१)।
तत्त्ववृत्ति—यथार्थ का बोधक (५/८)।
तत्त्वशंसिनः—तत्त्वदर्शन का आग्रही (५/३३)।
तत्पुरुषम् समास का एक भेद (६/३८)।
तदर्थविरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३)।
तद्(दृष्टान्त)आभः—दृष्टान्ताभास, दृष्टान्तहीननामक अनुमानविषयक दोष (५/२६)।
तद्(कला) विरोधकरम्—एक काव्यदोष (४/२, ३३)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद् (लोक) विरोधकरम्—एक काव्यदोष (४/२, ३६)।
तद् (आगम)विरोधि—एक काव्यदोष /४/२, ४८)।
तद् (काल) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ३१)।
तद् (देश) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, २९।
तद् (न्याय) विरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ३९)।
तद् (स्वसिद्धान्त) विरोधिनी--प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, १७)।
तन्त्रान्तरसाधितम्—पाणिनि व्यतिरिक्त व्याकरण से साधित (६/२७)।
ताच्छील्यविषयम्—ताच्छील्य [स्वभाव] विषय वाले (६/४६)।
ताच्छील्यादिषु—स्वभाव आदि में (६/४८)।
तुल्यकार्यक्रियायोगात्—समान कार्य तथा क्रिया का योग होने से (३/२७)।
तुल्ययोगिता—एक अलङ्कार (३/२, २७)।
तुल्यश्रुतीनाम्—सुनने में समान (२/१७)।
त्रिरूपाल्लिङ्गतः—त्रिविध हेतु से (५/११)।
त्रिलक्ष्म—तीन लक्षणों वाला (हेतु) (५/४७)।
त्रिवर्गोक्ति—त्रिवर्गनिरूपक (४/३९)।
दण्डनीतिम्—दण्डनीति को (४/३९)।
दघ्नच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५५)।
दीपकम्—एक अलङ्कार (२/४)।
[अर्थं] दीपनात्—(अर्थ को) प्रकाशित करने से (२/२६)।
दुरुक्तम्—सदोष उक्ति (१/५४)।
दुर्बोधम्—जिसका अर्थज्ञान कठिन है, काव्य में अप्रयोगयोग्य (६/२५)।
दुर्मेधसः—अल्पबुद्धि (२/२०)।
दुष्टम्—सदोष (४/२, ५/१)।
दूषणाय—दोष प्रकट करने के लिए (४/५१)।
दृष्टान्तः—उदाहरण (५/२६, २७, ५५, ५८)।
दृष्टान्तहीन—एक अनुमान विषयक दोष (४/२)। [देखें—तद् (दृष्टान्त) आभः)।
देवादिचरितशंसि—कथावस्तु की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१७)।
देशविरोधि—एक काव्यदोष (४/२, २९)।
दोषदृष्टि—दोषविवेचन (६/६५)।
दोषाणाम्—दोषों का (५/३२)।
द्रव्य—पदार्थ [५/३४]। शब्द का एक भेद (६/२१)।
द्विगु—समास का एक उपभेद (६/३८)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विपदी—अभिनेयार्थ का एक प्रकार (१/२४)।
द्वयसच्—पा०व्या० में एक प्रत्यय (६/५५)।
धर्मनिबन्धनी—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/३३, ३६)।
धर्मविरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/४१)।
धर्मशास्त्राणि—लोकमर्यादा के विधायक शास्त्र (४/४८)।
धर्मार्थकामकोपानाम्—प्रतिज्ञा के चार प्रकारों का (५/३५)।
धर्मार्थकाममोक्षेषु—काव्य के प्रयोजन (१/२)।
धातूणादिगणग्राहम्—धातुपाठ, उणादि और गणपाठ रूपी ग्राहों वाला (व्याकरणशास्त्र) (६/१)।
धीरैरालोकितप्रान्तम्—बुद्धिमानों ने जिनके किनारों को देख लिया है (व्याकरणशास्त्र) (६/२)।
धैवतम्—सङ्गीत के सात स्वरों में से एक (४/३४)।
ध्वनिः—शब्द का श्रोत्रग्राह्य (वैखरी) रूप (३/२२, ५/१९, ६/१७, १९) ध्वनौ (५/१६)।
नपुंसक—पुंस्त्रीभिन्न लिङ्ग (६/३८)।
नभःकुसुमम्—आकाशपुष्प (असम्भव वस्तु) (६/१२)।
नाटकम्—अभिनेयार्थ काव्य का एक प्रकार (१/२४)।
नादात्—ध्वनि से (६/१४)।
नानाधात्वर्थगम्भीरा—अनेक धात्वर्थों से गूढ़ (प्रहेलिका) (२/१९)।
नानार्थवन्तः—भिन्न अर्थों वाले (२/७)।
नान्तरीयार्थदर्शनम्—(वस्तुओं के) नित्यसम्बन्ध का अनुभव (५/११)।
नामजात्यादियोजना—नाम, जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का व्यक्ति में आरोप (कल्पना) (५/६)।
नाम्ना—संज्ञा के द्वारा (३/१४)।
नायक—सम्पूर्ण काव्यशरीर में व्याप्त पात्र (१/२०, २२, २६, २९)।
नित्य—अविनश्वर (५/३१, ६/१५)।
निदर्शनम्—निर्देश (५/५५)।
निदर्शना—एक अलङ्कार (३/२, ३३)।
निदर्शनैः—उदाहरणों से (२/२६, ९६)।
निन्दोपमा—कुछ आचार्यों के अनुसार उपमा का एक भेद (२/३७)।
निबन्धान्—रचनाओं को (१/१०)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निमित्ततः—किसी कारण से (२/८१)।
निराकांक्षम्—आकांक्षा रहित, वाक्य का विशेषण (४/४)।
नेयार्थम्—एक काव्यदोष (१/३७, ३८)।
न्यायः—त्रिवर्गनिरूपक शास्त्र एवं दण्डनीति (४/३६, ५/४) सिद्धान्त (६/६)। न्यायतः—सिद्धान्त से (५/१०)। न्यायनिर्णयः—न्याय का निरूपण (३/६५)। न्यायलक्षणम्—न्याय का स्वरूप (५/३०)।
न्याय्यम्—न्यायसङ्गत (१/२५, २/६१) न्याय्या (६/६)। न्याय्ये (४/४६)।
न्यासकारमतेन—न्यासकार के मत से (६/३६)।
पक्षः—धर्मी (५/२२, २३)।
पञ्चभिः सन्धिभिः—पाँच सन्धियों (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, उपसंहृति) से (१/२०)।
पञ्चमः—सङ्गीत के सात स्वरों में से एक।
पदकार—(कात्यायन) (४/२२)।
पदम्—सुप्तिङन्त शब्द (४/३, ५/११)। पदानि (२/१) पदेन (३/३६)।
पदानाम्—(४/४)।
पदवाक्ययोः—पद और वाक्य में (४/३)।
पदवृत्ति—समास (१/२५)।
पदावर्त्तम्—पद रूपी आवर्त्त वाला (व्याकरणशास्त्र) (६/१)।
पद्यम्—काव्य का एक भेद (१/१६)।
परप्रत्ययतः—दूसरे के प्रामाण्य से (६/४)।
परमार्थतः—वास्तविक रूप से (६/११)। पारमार्थिकान् (६/१५)।
परिवृत्ति—एक अलङ्कार (३/३, ४१)।
पर्यायोक्तम्—एक अलङ्कार (३/१, ८)।
पाणिनीयम्—पाणिनि का (६/६३)।
पादाभ्यासम्—यमक का एक भेद (२/६)।
पारायणरसातलम्—पारायण (भाष्य) रूप रसातल वाला (६/१)।
पुनरुक्तम्—एक काव्यदोष (४/१२, १४)।
पूर्वापरार्थव्याघातात्—पूर्व और अपर अर्थ के व्याघात से (४/६)।
पूर्वार्थानुगतः—पूर्व अर्थ से सम्बद्ध (२/७१)।
प्रसादवत्—प्रसाद से युक्त (२/३)। प्रसादि (२/१८)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिज्ञा—पक्ष का निर्देश करने वाला वाक्य (५/१२)। प्रतिज्ञाम् (५/३५, ३८)। प्रतिज्ञया (५/२८)। प्रतिज्ञायाः (५/४०)। प्रतिज्ञाय (५/३६, ३७, ३९, ४१)।

प्रतिज्ञाहीनम्—एक काव्यदोष (४/२)।

प्रतिज्ञाहेत्वादिहीनम्—प्रतिज्ञा, हेतु तथा दृष्टान्त से हीन, काव्यदोष (५/१)।

प्रतिभावतः—(काव्य) प्रतिभा से युक्त व्यक्ति का (१/५)।

प्रतिवस्तूपमा—एक अलङ्कार (२/३४)।

प्रतीतशब्दम्—प्रसिद्ध शब्दों वाला, यमक का एक गुण (२/१८)।

प्रतीतार्थम्—जिसका अर्थ ज्ञात हो जाये (२/३)।

प्रमाणम्—प्रामाणिक (५/६९, ६/१५, ६३)।

प्रमाणविषयौ—प्रमाणबोधक (६/५५)।

प्रमाणानि—ज्ञान के साधन (५/१८)। प्रमाणान्याम् (५/५)।

प्रत्यक्षम्—एक प्रमाण (५/५, ६, ८, ६/११)।

प्रत्यक्षबाधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, २०)।

प्रत्यक्षाः—इन्द्रियों के समक्ष उपस्थित (३/५३)।

प्रबन्धविषयम्—प्रबन्धकाव्यविषयक (३/५३)।

प्रशंसोपमा—कुछ आचार्यों के अनुसार उपमा का एक भेद (२/३७)।

प्रसन्नम्—प्रसाद गुण युक्त (१/३४)।

प्रसादम्—काव्य में पदों की असमस्त तथा प्रतीतार्थ स्थिति (२/१, ३)।

प्रसिद्धधर्मा—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, १९)।

प्रहेलिका—नाना घात्वर्थों से गूढ़ बन्ध (२/१९)।

प्राकृतम्—भाषा की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१६)।

प्रीति—काव्य के प्रयोजनों में से एक, आनन्द (१/२, ३/५)।

प्रेयः—एक अलङ्कार (३/१, ५)।

बहुपूरण—पादपूरक शब्दों से युक्त, काव्य का एक दोष (५/६७)।

भामहेन—भामह के द्वारा (६/६४, ६६)।

भाविकत्वम्—अलङ्कारों में पठित प्रबन्धविषयक गुण (३/४, ५३)।

भाव्यर्थशंसि—भावी घटनाओं की सूचक (१/२६)।

भिन्नवृत्तम्—एक काव्यदोष (४/१, २६)।

भूष्यन्ते—सजाये जाते हैं (५/६६)।

मतिः—प्रतीति (२/६०)।

मतुप्प्रकरणे—मतुप्प्रकरण में (६/५६)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मदनाश्रया—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/३८)।
मधुरम्—असमस्त एव श्रुतिमधुर काव्यबन्ध (२/३)।
मध्यमग्रामः—सङ्गीत में स्वरो के समूह की एक विशेष स्थिति (४/३४)।
मध्यमोत्पीडितर्षभः—मध्यम के द्वारा ऋषभ को दबाना (४/३४)।
मध्यविषयम्—दीपक अलङ्कार का एक भेद (२/३५)।
मध्यान्तयमक—यमक का एक प्रकार (२/६, १०)।
मनीषिभिः—विद्वानों के द्वारा (६/५७)।
महताम्—महान् चरित्रों का (१/१६)।
महत्—आकार में बड़ा (१/१६)।
महाकाव्य—विधा की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१६)।
महात्मनाम्—महाकवियों के (२/४५)।
माधुर्य—असमस्त व श्रुतिसुखद काव्यबन्ध (२/१)।
मालोपमा—कुछ आचार्यों के अनुसार उपमा का एक प्रकार (२/३८)।
मेधावी—भामह से पूर्ववर्ती एक आचार्य (२/८८)। मेधाविना (२/४०)।
यतिः—छन्द में प्रयुक्त शब्दों में विराम की स्थिति (४/२४)।
यतिभ्रष्टम्—एक काव्यदोष (४/१, २४)।
यथान्यायम्—न्यायशास्त्र के अनुसार (५/१)।
यथासंख्यम्—एक अलङ्कार (२/८८, ८६)।
यथेवशब्दौ—सादृश्यवाचक शब्द (२/३१)। यथेवशब्दाभ्याम् (२/३२)।
यथोपपत्ति—यथासम्भव (२/४३)।
यदृच्छा—कुछ आचार्यों के अनुसार शब्द का एक भेद (६/२१)।
यमक—एक अलङ्कार (२/४, १७, १८)।
यमकव्यपदेशिनी—यमक नाम मात्र वाली (२/१६)।
युक्तिः—तर्कशास्त्र (१/६)।
युच्—पा० व्या० में एक प्रत्यय (६/४८, ५०)।
योगविभागजम्—पा० सूत्रों को तोड़कर सिद्ध किया गया शब्द (६/२६)।
रक्किलगोमिसूनुना—रक्किलगोमि के पुत्र (भामह) के द्वारा (६/६४)।
रत्नाहरणे—इस नाम के काव्य में (३/८)।
रस—काव्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व (३/६)।
रसवत्—एक अलङ्कार (३/१, ६)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिज्ञा—पक्ष का निर्देश करने वाला वाक्य (५/१२)। प्रतिज्ञाम् (५/३५, ३८)। प्रतिज्ञया (५/२८)। प्रतिज्ञायाः (५/४०)। प्रतिज्ञाय (५/३६, ३७, ३९, ४१)।

प्रतिज्ञाहीनम्—एक काव्यदोष (४/२)।

प्रतिज्ञाहेत्वादिहीनम्—प्रतिज्ञा, हेतु तथा दृष्टान्त से हीन, काव्यदोष (५/१)।

प्रतिभावतः—(काव्य) प्रतिभा से युक्त व्यक्ति का (१/५)।

प्रतिवस्तूपमा—एक अलङ्कार (२/३४)।

प्रतीतशब्दम्—प्रसिद्ध शब्दों वाला, यमक का एक गुण (२/१८)।

प्रतीतार्थम्—जिसका अर्थ ज्ञात हो जाये (२/३)।

प्रमाणम्—प्रामाणिक (५/६९, ६/१५, ६३)।

प्रमाणविषयौ—प्रमाणबोधक (६/५५)।

प्रमाणानि—ज्ञान के साधन (५/१८)। प्रमाणान्याम् (५/५)।

प्रत्यक्षम्—एक प्रमाण (५/५, ६, ८, ६/११)।

प्रत्यक्षबाधितौ—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, २०)।

प्रत्यक्षाः—इन्द्रियों के समक्ष उपस्थित (३/५३)।

प्रबन्धविषयम्—प्रबन्धकाव्यविषयक (३/५३)।

प्रशंसोपमा—कुछ आचार्यों के अनुसार उपमा का एक भेद (२/३७)।

प्रसन्नम्—प्रसाद गुण युक्त (१/३४)।

प्रसादम्—काव्य में पदों की असमस्त तथा प्रतीतार्थ स्थिति (२/१, ३)।

प्रसिद्धधर्मा—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, १९)।

प्रहेलिका—नाना धात्वर्थों से गूढ़ बन्ध (२/१९)।

प्राकृतम्—भाषा की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१६)।

प्रीति—काव्य के प्रयोजनों में से एक, आनन्द (१/२, ३/५)।

प्रेयः—एक अलङ्कार (३/१, ५)।

बहुपूरण—पादपूरक शब्दों से युक्त, काव्य का एक दोष (५/६७)।

भामहेन—भामह के द्वारा (६/६४, ६६)।

भाविकत्वम्—अलङ्कारों में पठित प्रबन्धविषयक गुण (३/४, ५३)।

भाव्यर्थशंसि—भावी घटनाओं की सूचक (१/२६)।

भिन्नवृत्तम्—एक काव्यदोष (४/१, २६)।

भूष्यन्ते—सजाये जाते हैं (५/६६)।

मतिः—प्रतीति (२/६०)।

मतुप्प्रकरणे—मतुप्प्रकरण में (६/५६)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मदनाश्रया—प्रतिज्ञा का एक प्रकार (५/३८)।
मधुरम्—असमस्त एव श्रुतिमधुर काव्यबन्ध (२/३)।
मध्यमग्रामः—सङ्गीत में स्वरो के समूह की एक विशेष स्थिति (४/३४)।
मध्यमोत्पीडितर्षभः—मध्यम के द्वारा ऋषभ को दबाना (४/३४)।
मध्यविषयम्—दीपक अलङ्कार का एक भेद (२/३५)।
मध्यान्तयमक—यमक का एक प्रकार (२/६, १०)।
मनीषिभिः—विद्वानों के द्वारा (६/५७)।
महताम्—महान् चरित्रों का (१/१६)।
महत्—आकार में बड़ा (१/१६)।
महाकाव्य—विधा की दृष्टि से काव्य का एक भेद (१/१६)।
महात्मनाम्—महाकवियों के (२/४५)।
माधुर्यं—असमस्त व श्रुतिसुखद काव्यबन्ध (२/१)।
मालोपमा—कुछ आचार्यों के अनुसार उपमा का एक प्रकार (२/३८)।
मेधावी—भामह से पूर्ववर्ती एक आचार्य (२/८८)। मेधाविना (२/४०)।
यतिः—छन्द में प्रयुक्त शब्दों में विराम की स्थिति (४/२४)।
यतिभ्रष्टम्—एक काव्यदोष (४/१, २४)।
यथान्यायम्—न्यायशास्त्र के अनुसार (५/१)।
यथासंख्यम्—एक अलङ्कार (२/८८, ८६)।
यथेवशब्दौ—सादृश्यवाचक शब्द (२/३१)। यथेवशब्दाभ्याम् (२/३२)।
यथोपपत्ति—यथासम्भव (२/४३)।
यदृच्छा—कुछ आचार्यों के अनुसार शब्द का एक भेद (६/२१)।
यमक—एक अलङ्कार (२/४, १७, १८)।
यमकव्यपदेशिनी—यमक नाम मात्र वाली (२/१६)।
युक्तिः—तर्कशास्त्र (१/६)।
युच्—पा० व्या० में एक प्रत्यय (६/४८, ५०)।
योगविभागजम्—पा० सूत्रों को तोड़कर सिद्ध किया गया शब्द (६/२६)।
रक्किलगोमिसूनुना—रक्किलगोमि के पुत्र (भामह) के द्वारा (६/६४)।
रत्नाहरणे—इस नाम के काव्य में (३/८)।
रस—काव्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व (३/६)।
रसवत्—एक अलङ्कार (३/१, ६)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रसवत्त्वे—रस से युक्त होने पर भी (५/६२)।
राजमित्रे—इस नाम के काव्य में (२/४५, ३/१०)।
रामशर्मा—भामह से पूर्ववर्ती एक कवि और आलङ्कारिक (२/१९)।
रामशर्मणः (२/५८)।
रासक—अभिनेयार्थ का एक प्रकार (१/२४)।
रूपक—एक अलङ्कार (२/४, २१, २२)। रूपके (३/१५)। रूपकादिः (१/१३, १४)। रूपकार्थेन—रूपक के अर्थ से युक्त (३/४७)।
लक्षणम्—परिभाषा (३/१५)। लक्षणेन (२/४५)।
लघोः (वर्णस्य)—लघु वर्ण का (४/२६)।
लाटीयम्—अनुप्रास अलङ्कार का एक प्रकार (२/८)।
लिङ्गत्रय—तीनों लिङ्ग (पुं., स्त्री. नपुं.) (६/४६)।
लिङ्गभेद—उपमा का एक दोष (२/३९, ५२)।
लिङ्गानुगति—साधन की स्थिति (५/२७)।
लेशः—कुछ आचार्यों के अनुसार एक अलङ्कार (२/८६)।
लोक—लोकव्यवहार (१/९)। जड़चेतन जगत् (४/३६, ४६)। लोकस्य (६/१३)।
लोकविरोधि—एक काव्यदोष (४/२, ३६)।
लोकसीमा—लोकमर्यादा (४/४८)।
लोकस्वभावेन—लोकव्यवहार से (युक्त) (१/२१)।
लोकाश्रयम्—लोकव्यवहार को आधार बनाकर चलने वाला (५/३३)।
ल्युट्—पा० व्या० में एक प्रत्यय (६/५०)।
वक्त्रम्—कथा में प्रयुक्त होने वाला एक छन्द (१/२६, २८)।
वक्र (उक्ति)—वैचित्र्ययुक्त कथन (१/३०)।
वक्रवाचाम्—वैचित्र्ययुक्त वाणी वाले (६/२३)।
वक्राभिधेयशब्दोक्ति—वैचित्र्ययुक्त अर्थ तथा शब्दों वाली उक्ति (१/३६)। वक्रार्थशब्दोक्ति (५/६६)।
वक्रोक्ति—वैचित्र्ययुक्त कथन (२/८५, ८६)।
वक्ष्यमाणविषयः—आक्षेप का एक प्रकार (२/६७)।
वचस्—शब्द (३/१७)।
वचोभेदः—उपमा का एक दोष (२/३९, ५२)।
वति—पा० व्या० में एक प्रत्यय (२/३३)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वरच्—पा० व्या० में एक प्रत्यय (६/४८)।
वर्णभेदात्—वर्ण भिन्न हो जाने के कारण (६/२०)।
वर्णसङ्घातः—वर्णसमूह (४/३)।
वर्णाः—वर्ण (६/१३, २०)। वर्णानाम् (६/८, ९)। वर्णेषु (४/५)।
वाक्—वाणी (६/५)।
वाक्यम्—पदों का समूह (४/४, ६, १८)।
वागलङ्कृतिः—वाणी के अलङ्करण (२/९६)
वाग्विदग्धता—वाणी का वैदुष्य (१/४)।
वाचः—वाणियाँ (५/६४)। वाचाम् (१/१४, ५/६६)।
वाचां दोषम्—वाणी के दोष (१/४७)।
वाचामलङ्कारः—वाणी के आभूषण (२/४)।
वाचामलङ्कृतयः—वाणी के आभूषण (५/६९)।
वाच्यः—कहा जाना चाहिए (२/५९, ५/४, ६/२०)।
वाच्येऽर्थे—वाच्य अर्थ में (१/४१)।
वार्त्ता—वक्रोक्तिरहित साधारण वाक्य (२/८७)।
विज्ञान—ज्ञान (६/१९)।
विधिः—नियम, विषय, रचना (२/५७, ६०, ४/५१।)
विनश्वर—अनित्य (६/१५)।
विपक्ष—पक्ष से विसदृश (५/२१, २५)।
विपर्ययः—एक उपमादोष (२/३९, ५२)।
विपर्ययकरम्—उलटफेर करने वाला (४/९)।
विपर्ययकृत्—विपरीत ज्ञान को उत्पन्न करने वाला (५/५३)।
विभावना—एक अलङ्कार (२/६६, ७७)।
विभाव्यते—रमणीय बनाया जाता है (२/८५)।
विरुद्धपदम्—काव्य का एक दोष (५/६७)।
विरुद्धार्थम्—पूर्व और अपर अर्थों में विरोध होना (४/९)।
विरोधम्—एक अलङ्कार (३/२, २५)।
विशेषाभिधित्सया—विशेषता को व्यक्त करने की इच्छा से (२/६८)।
विशेषोक्ति—एक अलङ्कार (३/२, २३)।
विसन्धि—एक काव्यदोष (४/१, २८)।
वैदर्भम्—कुछ आचार्यों के अनुसार काव्य का एक मार्ग (१/३१, ३२, ३३, ३५)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यञ्जनचारुता—व्यञ्जनों के (सुष्ठु) प्रयोग से निष्पन्न सौन्दर्य (६/२८)
व्यतिरेकः—एक अलङ्कार (२/६६, ७५)।
व्यतिरेकिणोः—परस्पर भिन्न (२/३१)।
व्यर्थम्—एक काव्यदोष (४/१,६)।
व्याकरणार्णवम्—व्याकरण रूप समुद्र (६/३)।
व्याजस्तुति—एक अलङ्कार (३/२, ३१)।
वृत्तम्—कथावस्तु (१/१७, २६)।
श—पा० व्या० में एक प्रत्यय (६/४६)।
शब्दः—शब्द, शब्दानुशासन (१/६, १०, २५, ४/६, ५/४, १७, ३४, ६/७, ८, १६, २१, २८)। शब्देन (२/७३)। शब्दैः (१/५०)। शब्दानाम् (४/२४)। शब्दता (६/७)। शब्दरत्नम् (६/३)।
शब्दन्याय—भाषा सम्बन्धी नियम (१/३८)।
शब्दपुनरुक्तम्—पुनरुक्त का एक प्रकार (४/१३)।
शब्दविषया—शब्द से सम्बन्धित (४/६)।
शब्दशुद्धिः—शब्दों का साधुत्व (६/६६)।
शब्दहीनम्—एक काव्यदोष (४/१, २२)।
शब्दानाकुलता—भाविक का आधायक एक तत्त्व (३/५४)।
शब्दाभिधेयालङ्कार—शब्द और अर्थ के अलङ्कार (१/१५)।
शब्दार्णवस्य—शब्द (व्याकरण) रूपी समुद्र का (६/६२)।
शब्दार्थभेदतः—शब्द और अर्थ के भेद से (४/१२)।
शब्दार्थौ—शब्द और अर्थ (१/१६)।
शय्या—अभिनेयार्थ काव्य का एक प्रकार (१/२४)।
शाब्दीकल्पना—शब्द सम्बन्धी धारणा (६/११)।
शाखवर्धनस्य—भामह से पूर्ववर्ती एक कवि (२/४७)।
शालातुरीय—पाणिनि के (६/५२)।
शास्त्रम्—आगम (१/१५, ४/३६, ५/३)। शास्त्रात् (५/२)। शास्त्रेषु (५/३२)।
शास्त्रगर्भेषु—शास्त्राश्रित (५/३०)।
शास्त्रवत्—शास्त्र के समान (२/२०)।
शास्त्राश्रयम्—शास्त्राश्रित (१/१७)।
शिष्टप्रयोगमात्रेण—विद्वानों के द्वारा प्रयुक्त होने मात्र से (६/३६)।
शिष्टैः—विद्वानों के द्वारा (६/२७)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुद्धदृष्टान्तम्—जहाँ केवल दृष्टान्त मे साध्यसाधन की प्रतीति हो जाये (५/५८)।
शोभते—सुन्दर लगता है (१/५४)।
शोभाम्—सौन्दर्य को (१/५५, ५६)।
शृङ्गारः—एक रस (३/६)।
श्रव्यम्—श्रुतिसुखद (१/२५, २/३)।
श्रुतिकष्टम्—काव्य का एक दोष (१/४७, ५३)।
श्रुतिदुष्टम्—काव्य का एक दोष (१/४७, ४६)।
श्रुतिपेशलम्—श्रुतिमधुर (१/३४)।
श्रुतिसुखम्—जो सुनने में सुखकर प्रतीत हो (६/२८)।
शिष्टम्—एक अलङ्कार (३/१, १४)।
श्लिष्टस्यार्थेन—श्लेष के अर्थ से (३/४७)।
श्लेषात्—श्लेष रहने से (३/१७)।
श्लोक—संस्कृत में निबद्ध पद्य (१/३०)।
सङ्कलनाप्रज्ञा—सङ्कलनशील बुद्धि (४/३३)।
सङ्क्रम—गुणवृद्धि विकल्प (६/३१)।
सत्कवित्वेन—उत्तम काव्यत्व से (१/४)।
सत्कवीनाम्—श्रेष्ठ कवियों के (६/६४)।
सदर्थम्—अर्थसौष्ठव से सम्पन्न (१/३१)।
सदाश्रयम्—सत्पुरुषाश्रित (१/१६)।
सदृशे सिद्धः—हेतु के तीन लक्षणों में से एक (५/२१, २४)।
सन्दष्टक—कुछ आचार्यों के अनुसार यमक का एक भेद (२/१०)।
सन्दृयोः—हेतु के तीन लक्षणों में से एक (५/२१, २२)।
सन्धा—प्रतिज्ञा (५/३२, ४५)। सन्धाम् (५/४२)।
सन्निबन्धविधायिनाम्—श्रेष्ठ काव्यरचना करने वालों का (१/६)।
सन्निवेशविशेष—दोष के गुणरूप हो जाने का एक हेतु, सुन्दर निवेश की विशेषता (१/५४)।
समयः—सङ्केतनिर्धारण (६/१३)।
समस्तपादयमकम्—यमक का भेद (२/६)।
समस्तवस्तुविषयम्—रूपक का एक भेद (२/२२)।
समस्तार्थम्—समास से युक्त (२/३)।
समाधौ—समाधान के (२/७७)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समानवस्तुन्यासेन—समान वस्तु के विन्यास से (२/३४)।
समासवन्ति—समास से युक्त (२/१)
समासाभिहिता—समास के द्वारा अभिहित (उपमा) (२/३२)।
समासेन—संक्षेप से (२/६५, ५/१)।
समासोक्ति—एक अलङ्कार (२/६६, ७६)।
समाहितम्—एक अलङ्कार (३/१, १०)।
समुदायार्थशून्यम्—समुदाय के अर्थ से रहित (४/८)।
समुद्ग—कुछ आचार्यों के अनुसार यमक का एक प्रकार (२/१०)।
सरूपवर्णविन्यासम्—समान रूप वाले वर्णों का प्रयोग (२/५)।
सरूपशेषम्—समान रूप वाले अनेक शब्दों में से एक शेष (६/३२)।
सर्गबन्ध—महाकाव्य की प्रथम विशेषता (१/१८, १६)।
सर्वज्ञम्—शिव को (१/१)।
सर्वशास्त्रविरुद्धत्वात्—सभी शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण (५/१७)।
सर्वसारूप्यम्—सम्पूर्ण सादृश्य (२/४५,६०)।
सर्वागमविरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, १८)।
सषड्जम्—षड्ज (सङ्गीत के सात स्वरों में से एक) सहित (४/३४)।
सस्न्देहम्—एक अलङ्कार (३/३,४३)।
ससंशयम्—एक काव्य दोष (४/१, १८)।
सहितौ—सहित भाव से युक्त (१/१६)।
सहोक्ति—एक अलङ्कार (३/३, १७, ३६)।
संक्षिप्तार्थतया—अर्थ की संक्षिप्तता के कारण (२/७६)।
संख्यानम्—यथासंख्य का अपर नाम (२/८८)।
संज्ञा—नाम (१/३३)।
संशयज्ञानकृत्—हेतु के दोषों में से एक (५/५३)।
संशयम्—अनिश्चित ज्ञान (४/१७)।
संसृष्टि—एक अलङ्कार (३/४, ४६, ५२)।
संस्कृतम्—भाषा की दृष्टि से काव्य का एक भेद, आख्यायिका का माध्यम (१/१६, २५)। संस्कृता (१/२८)।
साङ्केतिकानर्थान्—साङ्केतिक अर्थों को (६/१४)।
सादृश्यम्—समानता (२/३१, ६२, ६४)।
साधवः—समर्थ (६/२३)।
साधीयः—दोष रहित (१/५८)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधु—सुन्दर, अच्छी तरह, मङ्गल (१/५६, ५९, २/१६, ७२, ५/६१)।

साधुकाव्यनिबन्धनम्—सुन्दर काव्य का निर्माण (१/२)।

साध्यधर्मानुगमतः—साध्य धर्मों के विद्यमान होने से (५/२४)।

सापेक्षाणाम्—परस्पर साकांक्ष (पदों) का (४/४)।

सामान्यविषयत्वम्—जाति रूप विषय वाला (अनुमान) (५/५)।

सामान्यात्—सजाति होने से (५/२४)।

साम्यम्—समानता (२/३०, ३५)।

सारूप्यम्—सादृश्य (२/४३)।

सार्वम्—सर्वहितकारी (१/१, ६/५३)।

सालङ्कारम्—महाकाव्य के स्वरूपाधायक गुणों में से एक (१/१९)।

सिद्धान्तविरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३, १७)।

सुधियः—विद्वान् (२/६)। सुधियाम् (१/४५, २/२०)।

सुपां तिङाञ्च व्युत्पत्तिम्—सुबन्त और तिङन्तों के सौन्दर्य को (१/१४)।

सुप्तिङन्तम्—संज्ञारूप और क्रियारूप (४/३)।

सुमेधसः—विद्वान् (२/१)। सुमेधोभिः (२/१८)। सुमेधसाम् (५/४७)।

सुश्लिष्टपदसन्धि—जिसके पदों की सन्धियों सुश्लिष्ट हों (२/१८)।

सूक्ष्म—कुछ आचार्यों के अनुसार एक अलङ्कार (२/८६)।

सूत्रकृत्—पाणिनि (४/२२)।

सूत्रज्ञापकमात्रेण—सूत्र से ही यदि किसी नियम का ज्ञापन हो रहा हो (६/३७)।

सूत्राम्भसम्—सूत्र रूपी जल वाले (६/१)।

सोच्छ्वासा—उच्छ्वासों में विभक्त (१/२५)।

सौशब्द्यम्—सुन्दर पद विन्यास (१/१५)।

स्कन्धक—अभिनेयार्थ का एक प्रकार (१/२४)।

स्त्रीपुंसयोः—स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग में (२/५७)।

स्थास्नुजङ्गम्—जड़ और चेतन (४/३६)।

स्फोटवादिनाम्—स्फोटवादियों (वैयाकरणों) का (६/१२)।

स्वपक्षपरपक्षयोः—वादी और प्रतिवादी को (५/२२)।

स्वभाव—वस्तु का उसी रूप में रहना (२/९३)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वभावोक्ति—कुछ आचार्यों के अनुसार एक अलङ्कार (१/३०, २/९३)।

स्वभिधानम्—आसानी से उच्चारण करने योग्य (२/१८)।

स्वभिनीतता—(कथा की) सुन्दर अभिनेयता (३/५४)

स्वःक्षितां पतिः—देवताओं के स्वामी (१/४६)।

स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रम्—काव्य के मधुर रस में मिश्रित (५/३)।

हितप्रकरणे—तस्मै हितम् इस सूत्र के अधिकार में (६/५३)।

हिमापहामित्रधर—मेघ (१/४१)।

हीनता—एक उपमादोष (२/३९)।

हीनत्वात्—विपर्यय नामक उपमादोष का एक प्रकार (२/५२)।

हेतु—कारण(२/८६, ३/१७, ३/५४, ५/२१, ४७, ५०, ५२, ५६)।

हेतुन्याय—अनुमान पद्धति (५/२)।

हेतुविरोधिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१३)।

हेतुहीन—एक काव्यदोष (४/२)।

हेत्वपवादिनी—प्रतिज्ञा का एक दोष (५/१५)।

हेत्वर्थ—कारणभूत अर्थ (२/७३)।

हेत्वादिना—हेतु आदि के द्वारा (५/२८)।

हेत्वाभास—हेतु का दोष (५/२१, २३)

Acc. 23049
23041

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्यानिधि प्रकाशन

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक
डी० ब्लाक, गली नं० १०
(समीप श्रीमहागौरी मन्दिर)
खजूरी खास, दिल्ली-११००९४

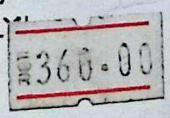

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu